Published by
K Mittra,
at The Indian Press, Ltd
Allahabad

Printed by
A Bose,
at The Indian Press, Ltd ,
Benares-Branch

सुंदरसार

अर्थात्

कविवर स्वामी सुंदरदासजी कृत समस्त ग्रंथों
से उत्तमोत्तम अंशों का संग्रह

"हंस और ज्ञानी गुणी लहैं दूध अरु सार"

संग्रहकर्त्ता

पुरोहित हरिनारायण, बी० ए०

"यत्सारभूतं तदुपासितव्यं"

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

द्वितीय संस्करण] १९२८

ॐ तत्सत्

भूमिका

भाषा पद्यात्मक साहित्य में सूरदासजी और तुलसीदासजी के पीछे शांतरस वा वेदांत पर लिखनेवाले कवियों में स्वामी सुंदरदासजी सुविख्यात और अग्रगण्य हैं। इनके रचित अनेक ग्रंथों में से "सुंदरविलास" (जिसका ठेठ नाम "सवैया" है) स्यात् किसी भी हिंदी-प्रेमी से छिपा नहीं है। इनके अन्य ग्रंथ भी, जिनकी संख्या ४० से अधिक है, एक से एक बढ़कर हैं। 'ज्ञानसमुद्र', 'अष्टक', 'साखी', 'पद' तथा भिन्न काव्यभेदों की रचनाएँ बहुत चित्ताकर्षक, उपयोगी और नीति ज्ञान के अनोखे विचारों से भरी हैं।

इनके ग्रंथो के जितने मुद्रित संस्करण हमारे देखने में आए हैं वे प्रायः सब ही अपूर्ण और अशुद्ध हैं। आनंद की बात है कि चिरकाल की खोज से हमको स्वामीजी की संकलित की और लिखाई हुई संवत् १७४२ की एक हस्तलिखित पुस्तक प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त हमने, निज की अभिरुचि वश, बहुत सी अन्य हस्तलिखित तथा मुद्रित प्रतियों का भी संग्रह किया। उक्त प्राचीन पुस्तक के आधार पर और अन्य प्रतियों के मिलान से हमने समस्त ग्रंथों का एक शुद्ध और पूर्ण संस्करण संपादन किया है जो शीघ्र मुद्रित होगा। इस समु-

च्चय का ग्रंथभार अनुष्टुप गणना से ८००० से अधिक है, और टीका, टिप्पणी, भूमिका, जीवनचरित्र, चित्रादि और परिशिष्टों सहित दुगुने से भी अधिक होगा।

बहुत दिन से हमारा यह भी विचार था कि समुच्चय ग्रंथ को पढ़ने में पाठकों को बहुत समय और परिश्रम अपेक्षित होगा। यदि अधिक प्रचलित, अधिक रोचक, उपयोगी और व्यवहार में आए हुए छंदों का एक पृथक् संग्रह हो जाय, तथा इस संपूर्ण ग्रंथ के आधार पर प्रायः प्रत्येक अंग का कुछ अंश उदाहरण के ढंग पर दिया जाय, एवं छोड़े हुए अंशों का व्योरा वा सार भी लिखा जाय तो पढनेवालों के लिये एक बड़े काम की लघु पाठ्य पुस्तक हो जायगी, और "सुंदर" रूपी ज्ञानमंदिर मे पहुँचानेवाली एक सुलभ और सुगम सोपान बन जायगी। सौभाग्य से "मनोरजन पुस्तक-माला" का उदय हुआ। उसके सुयोग्य सपादक बाबू श्याम-सुंदरदासजी बी० ए० की सम्मति से यह 'सार' संगृहीत हुआ, और उनकी अनुमति से इस "सुंदर" मणि का 'मनका' इस माला में पिरोया जाने से मन का रंजन करनेवाला हुआ।

इस 'सार' में सुंदरदासजी के प्राय. समस्त ग्रंथों के वे विशेष अंश इस उत्तमता से छाँटकर रखे गए हैं कि जो पाठकों को साहित्य के नाते ही से रुचिकर नहीं होंगे किंतु उपदेश और ज्ञान ध्यानादि के प्रकरण में भी बहुत लाभकारी जँचेंगे। उन अशों को विशेष करके ले लिया है जो प्रस्ताविक

वा सिद्धांत के ढंग पर बोले जाते हैं, कंठस्थ किए जाते हैं, पुस्तकों में उद्धृत हुए वा होते हैं वा गाए जाते हैं। इनके भजन ही नहीं वरन् छंद, अष्टक आदि भी गाए जाते हैं।

समस्त ग्रंथों का चतुर्थांश के लगभग इस 'सार' में आ गया है। सब छंदों की संख्या ३७०० से अधिक है, और इस छाँट में ६०० से अधिक आ चुके हैं, जैसा कि नीचे लिखी संख्याओं से ज्ञात होता है—

ग्रंथ विभाग	पूर्ण संख्या	'सार' में आई हुई संख्या	उद्धृतांश
१—ज्ञानसमुद्र	३१४	१४७	१/२
२—लघुग्रंथावली और फुटकर छंदादि	१३४७	३५१	१/४
३—सवैया (सुंदरविलास)	५६३	२५२	१/२
४—साखी	१३५१	१३३	१/१०
५—पद (भजन)	२१२	४०	१/५
सर्व	३७८७	९२३	१/४

'लघुग्रंथावली' * में "सर्वांगयोग" से लगाकर "पूर्वी

---

* "लघुग्रंथावली"—यह नाम हमारा रखा हुआ है। सुंदरदास जी ने प्रत्येक को 'ग्रंथ' ऐसा लिखा है, 'ज्ञान समुद्र' को भी 'ग्रंथ' ही लिखा है। परंतु उसको पृथक् कर आदि में उन्होंने रखा, सो ही क्रम हमने रखा और अन्य ग्रंथों को इस एक विभाग में लिया है कि सुविधा रहे। उपर्युक्त पाँच विभाग 'विभाग' रूपेण हमने दिखा दिए हैं।

भाषा बरवै" तक ३७ ग्रंथ हैं, और फुटकर छंद और 'देशाटन के सवैया' भी हैं। इनमें से एक तो षट्पदी और तीन अष्टक ('रामजी,' 'नाम' और 'पंजाबी') संपूर्ण ही रखे गए हैं। "सवैया" अधिक उत्तम होने से उसमें से अनुमान से आधी संख्या के छंद लिए गए हैं। अन्य ग्रंथों के अंश रोचकता, उपयोगिता, और ज्ञानांश की प्रचुरतादि के आधार पर उतने ही लिए गए हैं कि जितने उचित समझे गए। प्रत्येक ग्रंथ के लिये हुए छंदों की सख्याएँ छपे अंशों से जानी जा सकती है। हमको इस बात का आग्रह नहीं कि यावत् उत्तम उत्तम अंश इस 'सार' में आ गए हैं। निःसंदेह बहुत से उत्तम छद रह भी गए होंगे। परंतु यह सब पाठकों के रुचिभेद के अनुसार समझा जा सकता है। सार के संग्रह में जितना होना चाहिए उसको लेने का यथाशक्य प्रयत्न किया गया है।

उद्धृत ग्रंथांशों के कहीं कहीं आदि में कहीं कहीं बीच में आवश्यकतानुसार छोटी छोटी व्याख्याएँ, विवेचनाएँ वा 'नोट' दिए गए हैं जो कहीं भूमिका का और कहीं त्यक्तांश के सार का काम दे सकेंगे। कठिन वा अव्यवहृत वा गूढ़ शब्दों वा वाक्यों के अर्थ अथवा आशय टिप्पणियों (फुटनोटों) में संख्या दे देकर लिख दिए गए हैं। "ज्ञानसमुद्र" और "सवैया" के भूमिका संबंधी 'नोट' उनके पहिले नहीं लिखे गए इस कारण यहाँ देते हैं—

(१) 'ज्ञानसमुद्र'

सुंदरदासजी कृत यह 'ज्ञानसमुद्र' अध्यात्म-विद्या (परमात्म विज्ञान, ब्रह्म-विद्या वा परा-विद्या) और तदुपयोगी साधनों को बतानेवाला, भाषाछंदबद्ध, गुरु शिष्य संवाद रूप, एक स्वल्प संहिता ग्रंथ है। वेदांत में योग भक्ति और सांख्य का जोड ऐसी चतुराई से लगाया गया है कि कोई प्रसंग भेद का विवाद नहीं उठता। सिद्धांत में वेदांत ही सर्वोच्च माना जाकर अन्यों को क्रमगत साधन वा मार्गीभूत प्रयत्न दिखाया है। इसको अनेक भाँति के छंदों में इसलिये रचा है कि एक तो मुमुक्षुओं को रुचिकर हो दूसरे यह दिखाना है कि शृंगार और वीर रसादि ही का काव्य के भूषणों में अधिकार नहीं है वरन् शांतादि रसों का भी है। वेदांत को मानों काव्य के ढंग पर रचकर दिखाया है। 'जाति जिती सब छंदन की' इस कहने से यावन्मात्र छंदों से प्रयोजन नहीं है किंतु प्रशस्त छंदों से अभिप्राय प्रतीत होता है। क्योंकि ग्रंथ में केवल ३४ प्रकार के छंद आए हैं। सबही छंद अत्यंत मधुर और रोचक हैं। सर्वत्र ही रचना सरल, सुबोध, सुखावह, ललित, सारगर्भित और ओजस्विनी है। मुमुक्षु जनों, साधुओं और ज्ञानप्रेमियों के लिये यह ग्रंथ बड़े ही काम का है। इसके कई एक छंद प्रमाणवत् बोले जाते हैं। और अनेक छंद वा समग्र उल्लास को लोग कंठस्थ रखते हैं। 'ज्ञानसमुद्र' ऐसा नाम स्वामीजी ने ठीक सोचकर ही रखा है।

भाषा बरवै" तक ३७ ग्रंथ हैं, और फुटकर छंद और 'देशाटन के सवैया' भी हैं। इनमें से एक तो षट्पदी और तीन अष्टक ('रामजी,' 'नाम' और 'पंजाबी') संपूर्ण ही रखे गए हैं। "सवैया" अधिक उत्तम होने से उसमें से अनुमान से आधी संख्या के छंद लिए गए हैं। अन्य ग्रंथों के अंश रोचकता, उपयोगिता, और ज्ञानांश की प्रचुरतादि के आधार पर उतने ही लिए गए हैं कि जितने उचित समझे गए। प्रत्येक ग्रंथ के लिये हुए छंदों की संख्याएँ छपे अंशों से जानी जा सकती है। हमको इस बात का आग्रह नहीं कि यावत् उत्तम उत्तम अंश इस 'सार' में आ गए हैं। निःसंदेह बहुत से उत्तम छंद रह भी गए होंगे। परंतु यह सब पाठकों के रुचिभेद के अनुसार समझा जा सकता है। सार के संग्रह में जितना होना चाहिए उसको लेने का यथाशक्य प्रयत्न किया गया है।

उद्धृत ग्रंथांशों के कहीं कहीं आदि में कहीं कहीं बीच में आवश्यकतानुसार छोटी छोटी व्याख्याएँ, विवेचनाएँ वा 'नोट' दिए गए हैं जो कहीं भूमिका का और कहीं त्यक्तांश के सार का काम दे सकेंगे। कठिन वा अन्यवहृत वा गूढ़ शब्दों वा वाक्यों के अर्थ अथवा आशय टिप्पणियों (फुटनोटों) में संख्या दे देकर लिख दिए गए हैं। "ज्ञानसमुद्र" और "सवैया" के भूमिका संबंधी 'नोट' उनके पहिले नहीं लिखे गए इस कारण यहाँ देते हैं—

(१) 'ज्ञानसमुद्र'

सुंदरदासजी कृत यह 'ज्ञानसमुद्र' अध्यात्म-विद्या (परमात्म विज्ञान, ब्रह्म-विद्या वा परा-विद्या) और तदुपयोगी साधनों को बतानेवाला, भाषाछंदबद्ध, गुरु शिष्य संवाद रूप, एक स्वल्प संहिता ग्रंथ है। वेदांत में योग भक्ति और सांख्य का जोड़ ऐसी चतुराई से लगाया गया है कि कोई प्रसंग भेद का विवाद नहीं उठता। सिद्धांत में वेदांत ही सर्वोच्च माना जाकर अन्यों को क्रमगत साधन वा मार्गीभूत प्रयत्न दिखाया है। इसको अनेक भाँति के छंदों मे इसलिये रचा है कि एक तो मुमुक्षुओं को रुचिकर हो दूसरे यह दिखाना है कि शृंगार और वीर रसादि ही का काव्य के भूषणों में अधिकार नहीं है वरन् शांतादि रसों का भी है। वेदांत को मानों काव्य के ढंग पर रचकर दिखाया है। 'जाति जिती सब छंदन की' इस कहने से यावन्मात्र छंदों से प्रयोजन नहीं है किंतु प्रशस्त छंदों से अभिप्राय प्रतीत होता है। क्योंकि ग्रंथ में केवल ३४ प्रकार के छंद आए हैं। सबही छंद अत्यंत मधुर और रोचक हैं। सर्वत्र ही रचना सरल, सुबोध, सुखावह, ललित, सारगर्भित और ओजस्विनी है। मुमुक्षु जनों, साधुओं और ज्ञानप्रेमियों के लिये यह ग्रंथ बड़े ही काम का है। इसके कई एक छंद प्रमाणवत् बोले जाते हैं। और अनेक छंद वा समग्र उल्लास को लोग कंठस्थ रखते हैं। 'ज्ञानसमुद्र' ऐसा नाम स्वामीजी ने ठीक सोचकर ही रखा है।

नमें ज्ञान के विषय कूट कूटकर भरे हैं। प्रथम उल्लास के वें छंद (इदव) में समुद्र का रूपक भी बाँधा है। प्रारम से समारोह और उठाव से तो प्रतीत होता है कि इस ग्रंथ को बहुत कुछ बड़ा बनाना अभिप्रेत होगा, परंतु साधुओं की सुविधा वा हीनता पर दृष्टि कर बहुत विस्तार नहीं किया गया। इसके पाँच उल्लास (वा लहरें) हैं, अर्थात् यह पाँच अध्यायों में विभक्त है, जिनका विवरण इस प्रकार है—

प्रथमोल्लास में—शिष्य और गुरु के लक्षण। गुरु कैसा मिलना चाहिए। शिष्य किस प्रकार अधिकारी होकर गुरु से ज्ञान प्राप्त करे, अपनी शंकाओं और भ्रमों को कैसे मिटाने में बद्धपरिकर रहे। गुरु किस मार्ग वा रीति से शिष्य को ज्ञान-भूमि में प्रवेश करावे, इत्यादि।

द्वितीयोल्लास में—नौ प्रकार की (अर्थात् नवधा) भक्ति तथा परा भक्ति का उत्तम वर्णन है तथा भक्ति के भेद सहित विधियों का भी सार दिया है। यह अनेक भक्तिग्रंथों का सारोद्धार प्रतीत होता है। परा भक्ति का निरूपण देखने ही योग्य है। इसको उत्तमोत्तम कहा जाय तो यथार्थ है। 'मिलि परमातम सों आतमा पराभक्ति सुंदर कहै' यह भक्ति की महान् गति है।

तृतीयोल्लास में—अष्टांग योग और उसकी संक्षिप्त विधि का वर्णन है। "हठ प्रदीपिका" आदि ग्रंथों तथा स्वानुभव से इसका निर्माण होना प्रत्यक्ष है। इसके छंदों पर बृहत्

व्याख्या की अपेक्षा होती है परंतु सार ग्रंथ में यह संभव नहीं। राजयोग के लाभ और संबंध को भी इसमें दिखाया है। 'सर्वांगयोग' नामी स्वामीजी का रचा लघु ग्रंथ इसके साथ पढ़ना लाभदायक होगा। निर्विकल्प समाधि के आनद और योगी की अवस्था आदि का वर्णन अवश्य पठनीय है।

चतुर्थोल्लास में—सांख्य शास्त्र और उससे मुक्ति के मिलने का प्रकार वर्णित है। प्रकृति-पुरुष-भेद, सृष्टिक्रम और चेतन पुरुष से उसका प्रादुर्भाव कैसे होता है, जड़ से चेतन पुरुष को किस प्रकार भिन्न समझकर कैवल्य प्राप्त करना, यह वर्णन अत्यत गंभीर और संग्रह करने योग्य है। पंचीकरण का कुछ प्रसग कहकर चारों अवस्थाओं का भेद बताया गया है और उनके सम्यक् ज्ञान से निज स्वरूप जानने की सूक्ष्म विधि बताई गई है।

पंचमोल्लास में—अद्वैत ब्रह्म वर्णन का प्रकार है। चारों अवस्थाओं से परे तुरियातीत का जो संकेत सांख्य के अंग में दिया उस ही के संबध से प्रागभावादि चार अभावों का दिग्दर्शन कर अत्यंताभाव द्वारा निर्गुण निराकार शुद्ध चेतन का स्वरूप वा लक्षण बताने की चेष्टा की गई है। 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वाक्य की यथार्थता और वैदिक 'नेति नेति' का सार बताते हुए निरुपाधि जीव कैसे शुद्ध ब्रह्म है, और उस अवस्था की प्राप्ति में कैसा वैलक्षण्य है, और मोक्ष का वास्तविक स्वरूप क्या है, इत्यादि बातें बड़े चमत्कार से बताई गई हैं। यह उल्लास पाँचों में अत्यंत श्रेष्ठ है।

इसमें ज्ञान के विषय कूट कूटकर भरे हैं। प्रथम उल्लास के ७ वें छंद (इदव) में समुद्र का रूपक भी बांधा है। प्रारंभ के समारोह और उठाव से तो प्रतीत होता है कि इस ग्रंथ को बहुत कुछ बड़ा बनाना अभिप्रेत होगा, परंतु साधुओं की सुविधा वा हीनता पर दृष्टि कर बहुत विस्तार नहीं किया गया। इसके पाँच उल्लास (वा लहरें) हैं, अर्थात् यह पाँच अध्यायों में विभक्त है, जिनका विवरण इस प्रकार है—

प्रथमोल्लास में—शिष्य और गुरु के लक्षण। गुरु कैसा मिलना चाहिए। शिष्य किस प्रकार अधिकारी होकर गुरु से ज्ञान प्राप्त करे, अपनी शंकाओं और भ्रमों को कैसे मिटाने में बद्धपरिकर रहे। गुरु किस मार्ग वा रीति से शिष्य को ज्ञान-भूमि में प्रवेश करावे, इत्यादि।

द्वितीयोल्लास में—नौ प्रकार की (अर्थात् नवधा) भक्ति तथा परा भक्ति का उत्तम वर्णन है तथा भक्ति के भेद सहित विधियों का भी सार दिया है। यह अनेक भक्तिग्रंथो का सारोद्धार प्रतीत होता है। परा भक्ति का निरूपण देखने ही योग्य है। इसको उत्तमोत्तम कहा जाय तो यथार्थ है 'मिलि परमातम सों आतमा पराभक्ति सुदर कहै' यह भक्ति की महान् गति है।

तृतीयोल्लास में—अष्टांग योग और उसकी संक्षिप्त विधि का वर्णन है। "हठ प्रदीपिका" आदि ग्रंथों तथा स्वानुभव से इसका निर्माण होना प्रत्यक्ष है। इसके छंदों पर बृह

व्याख्या की अपेक्षा होती है परंतु सार ग्रंथ में यह संभव नहीं। राजयोग के लाभ और संबंध को भी इसमें दिखाया है। 'सर्वांगयोग' नामी स्वामीजी का रचा लघु ग्रंथ इसके साथ पढ़ना लाभदायक होगा। निर्विकल्प समाधि के आनंद और योगी की अवस्था आदि का वर्णन अवश्य पठनीय है।

चतुर्थोल्लास में—सांख्य शास्त्र और उससे मुक्ति के मिलने का प्रकार वर्णित है। प्रकृति-पुरुष-भेद, सृष्टिक्रम और चेतन पुरुष से उसका प्रादुर्भाव कैसे होता है, जड़ से चेतन पुरुष को किस प्रकार भिन्न समझकर कैवल्य प्राप्त करना, यह वर्णन अत्यंत गंभीर और संग्रह करने योग्य है। पंचीकरण का कुछ प्रसंग कहकर चारों अवस्थाओं का भेद बताया गया है और उनके सम्यक् ज्ञान से निज स्वरूप जानने की सूक्ष्म विधि बताई गई है।

पंचमोल्लास में—अद्वैत ब्रह्म वर्णन का प्रकार है। चारों अवस्थाओं से परे तुरियातीत का जो संकेत सांख्य के अंग में दिया उस ही के संबंध से प्रागभावादि चार अभावों का दिग्दर्शन कर अत्यंताभाव द्वारा निर्गुण निराकार शुद्ध चेतन का स्वरूप वा लक्षण बताने की चेष्टा की गई है। 'अहं ब्रह्मास्मि' इस वाक्य की यथार्थता और वैदिक 'नेति नेति' का सार बताते हुए निरुपाधि जीव कैसे शुद्ध ब्रह्म है, और उस अवस्था की प्राप्ति में कैसा वैलक्षण्य है. और मोक्ष का वास्तविक स्वरूप क्या है, इत्यादि बातें बड़े चमत्कार से बताई गई हैं। यह उल्लास पाँचों में अत्यंत श्रेष्ठ है।

प्रमाण है। यद्यपि इसमें शांतरस प्रधान है तो भी अन्य रसों की छाया दीख जाती है। ऐसा कोई सा ही छंद होगा जिसके पढने से प्रसाद गुण का आस्वाद न मिलता हो और उसमें स्वामीजी की मंद मुसक्यान न झलकती हो। विचार को ऐसा वाणी-वेष दिया गया है कि छंदों को पढ़ते ही तात्पर्य मानो रूप धारण किए सामने खड़ा हो जाता है।

सुंदरदासजी के अन्य ग्रंथों की अपेक्षा इस सुंदर-विलास में धर्म, नीति, उपदेश, प्रस्ताविक बातें भी बड़े मारके की मिलती हैं और यह ग्रंथ सुरम्य और रंजनकर्त्ता है जिसको पढ़ते पढ़ते चित्त नहीं अघाता।

इस 'सार' में पाठ वही रखा गया है जो असल प्राचीन लिखित पुस्तक में था। हमारी समझ में पुरानी चाल की हिंदी को ही नहीं उसकी लिखावट के नमूनों को भी ज्यों का त्यों रखना ही पुरातत्व के सिद्धांत के अनुसार है। हमने उसे निबाहने का प्रयत्न किया है। आशा है इसको पाठक अनुचित न कहेंगे। चित्रकाव्यों में से केवल दो ही छंद चित्रों सहित और विपर्यय अंग में से चार छद ही टीका सहित लिए गए हैं।

सुंदरदासजी की भाषा की "भूमि" तो व्रजभाषा है, पर उसमें खडी बोली और रजवाड़ो का मेल है। हमारी जान में इनकी भाषा अन्य कवियों से, आजकल की दृष्टि से देखें तो, बहुत शुद्ध और स्फीत तथा 'बा-मुहाविरे' है। इस हिसाब से भी सुंदरदासजी बहुत से कवियों से बढ़ चढ़कर हैं और

इनकी भाषा की उत्कृष्टता भी इनकी ख्याति और लोकप्रियता का एक दृढ़ कारण है।

अब हम ग्रंथकर्त्ता का संक्षिप्त जीवनवृत्तांत (अपने संग्रह के आधार पर) देने से पहले इतना ही कह देना अलम् समझते हैं कि इनके संबंध में जितना कुछ लोगों ने लिखा है उसमें अनेक बातें भ्रममूलक हैं। औरों की तो क्या चलाई जाय "मिश्रबंधुविनोद" तक में सुंदरदासजी को "दूसर" लिखा है और उसमें इनके ग्रंथों के नामों को बहुत गडबड़ कर दिया है। देखो "विनोद" प्रथम भाग पृष्ठ ४१४—१५। कदाचित् "विनोद" के कर्ताओं को इनके ग्रंथ सांगोपांग संपूर्ण नहीं मिले इससे वे उनका न तो यथार्थ स्वरूपज्ञान ही बता सके और न ठीक पर्यालोचना कर समालोचना की कसौटी पर लीक लगा सके। आश्चर्य है कि इतने बड़े महात्मा और कवि को "तोष" की श्रेणी में रखने ही को उन्होंने बहुत समझा। हम यहाँ इसका कुछ विस्तार न कर इतना ही कहेंगे कि इनका स्थान सूरदास, तुलसीदास और कबीर के पीछे वेदांत और शांत रस के उत्कृष्ट कवियों में सर्वोच्च कहना उचित है।

संक्षिप्त जीवनी

सुंदरदासजी का जन्म विक्रमी संवत् १६५३ में, चैत्र शुक्ला नवमी को द्यौसा* नगरी में हुआ था। इनके पिता

---

१ द्यौसा राज्य जयपुर की आमेर से भी पहले की [illegible]

साह 'परमानंद' 'बूसर' गोती खंडेलवाल महाजन थे, इनकी माता 'सती देवी' आमेर* के 'सोंकिया' गोत के खंडेलवालों की बेटी थीं। इनके जन्म के सबंध में एक कथा प्रसिद्ध है। दादूजी जब आमेर में विराजते थे तो एक दिन उनका एक प्रिय शिष्य 'जग्गा' रोटी और सूत माँगने को शहर में गया था, और फकीरी बड़ हाँकता था कि 'दे माई सूत ले माई पूत'। 'लड़की सती' घर में सूत कात रही थी। फकीर की यह बोली सुन कुतूहल वश सूत की कुकड़ी ले कहने लगी 'लो बाबा जी सूत' तो साधु ने कुकड़ी लेकर उत्तर में कह दिया 'हो माई तेरे पूत' और वह आश्रम को लौट आया। दादूजी ने यह बात समाधि में जान ली। जग्गा को आते ही कहा—भाई तुम ठगा आए। जिसके भाग्य में पुत्र न था, उसको पुत्र का वचन दे आए। अब वचन सत्य करने को जाओ। जग्गा के होश उड़ गए। उसने कहा जो आज्ञा, परंतु चरणों ही में आया रहूँ। दादूजी ने कहा ऐसा ही होगा। लड़की के घरवालो को कह आओ कि जहाँ इसका विवाह हो कह दे कि इसके एक पुत्र होगा जो ज्ञानी और

शहर जयपुर से पूर्व दिशा में १६ कोस पर है। रेल का स्टेशन और निजामत भी इसी नाम की हैं।

* आमेर—प्रसिद्ध पुरानी राजधानी। जयपुर शहर से ४ कोस उत्तर को। यहाँ मावठा तालाव के पास दादूजी का स्थान भी अद्यापि है।

पंडित होगा परंतु वह बालपन ही में वैरागी हो जायगा। जग्गा ने ऐसा ही किया। लड़की सती के विवाह के कई वर्ष पीछे जग्गा ने शरीर त्याग दिया। द्यौसा में परमानंद के घर पुत्र-जन्म का आनंद हुआ। इस पुत्र के होने का वरदान स्वयं दादूजी ने भी प्रथम बार, जब वे द्यौसा पधारे थे, परमानंद और सती को दिया था और वही बात कह दी थी जो जग्गा के हाथ पहले सती के घरवालों को आमेर में कहलाई थी। इन बातों का उल्लेख राघवदासजी ने अपने भक्तमाल में भी किया है—

"दिवसा है नग्र चोपा वूसर है साहूकार,
सुंदर जनम लियौ ताही घर आइकैं।
पुत्र की है चाहि पति दई है जनाइ त्रिया,
कह्यो समझाइ स्वामी कहीं सुखदाइकैं॥"
स्वामी सुख कही सुत जनमैगो सही पै,
वैराग लेगो वही घर रहै नहिं माइ कैं।
एकादस वरष में त्याग्यौ घर माल सब,
वेदांत पुरान सुने वानारसी जाइ कैं" ॥ ४२१ ॥

संवत् १६५९ में दादूजी जब दूसरी बार द्यौसा में पधारे तब सुंदरदासजी सात वर्ष के हो गए थे। माता पिता भक्ति-पूर्वक दर्शनों को आए और उन्होंने सुंदरदासजी को उनके चरणों में रख दिया। स्वामीजी ने बालक के सिर पर हाथ रखकर बहुत प्यार से कहा कि 'सुंदर तू आ गया'। कोई

कहते हैं स्वामीजी ने कहा यह बालक बड़ा सुंदर है। निदान "सुंदरदास" तब ही से नाम हुआ और वे उसी दिन से दादूजी के शिष्यों में हो गए।

दादूजी की "जन्म परचयो" में दादूजी के शिष्य जनगोपाल ने इस प्रसंग को लिखा है—

"पुनि धोसा महिं कियो प्रवेसू। षेमदास अरु साधो जैसू॥
बालक सुंदर सेवक छाजू। मथुरा बाई हरि सों काजू॥"

(विश्राम १४)

स्वयं सुंदरदासजी ने 'गुरु संप्रदाय' ग्रंथ में लिखा है—

"दादूजी जब धौसा आए। बालपने मँह दर्शन पाए॥"

संवत् १६६० में दादूजी का 'नारायणे' ग्राम में परमपद हुआ, उस समय अन्य शिष्यों के साथ सुंदरदासजी भी वहाँ थे। दादूजी के उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र गरीबदासजी ने पिता और गुरु का बड़े समारोह से 'महोच्छा' (महोत्सव = नुकता) किया जिसमें सब ही शिष्य सेवक और भक्त व्यवहारी आदि इकट्ठे हुए थे। सुंदरदासजी ने अपनी प्रतिभा का परिचय इस छोटी सी अवस्था में ही दे दिया था। जब सभा एकत्रित हुई तो एक प्रस्ताव पर गरीबदासजी ने सुंदरदासजी की ठठोली की जिसको अपमान समझकर भरी सभा में इस बालकवि ने गरीबदासजी को यह उत्तर सुनाया—

"क्या दुनिया असतूत करैगी क्या दुनिया के रूसे से।
साहिब सेती रहो सुरषरू आतम बष से ऊसे से॥

क्या किरपन मूँजो की माया नाँव न होय नपूँसे से।
कूड़ा वचन जिन्होंने भाष्या बिल्ली मरै न मूसे से॥
जन सुंदर अलमस्त दिवाना सब्द सुनाया धूँसे से।
मानूं तो मरजाद रहैगी नहिं मानूँ तो घूँसे से॥"

सुंदरदासजी कुछ दिन द्यौसा में ही रहे, फिर 'डोडवाणे' और 'फतहपुर' मे दादूशिष्य 'प्रागदास जी बीहाणी' के पास रहे। उपरांत द्यौसा आए। द्यौसा में टहलडो पहाड़ी पर रहने-वाले दादूशिष्य 'जगजीवणजी' की सत्संगति से सुंदरदासजी को काशी पढ़ने का चसका लगा और उनके साथ संवत् १६६३ में (ग्यारह वर्ष की अवस्था में) वे काशी चले गए। काशी में सं० १६८२ तक वे रहे, बीच बीच में इधर आते भी रहे। काशी में रहकर व्याकरण साहित्यादि पढ़कर सांख्य वेदां-तादि को उन्होंने खूब पढ़ा और वहाँ तथा अन्य स्थानों में रहकर योग पढ़ा और साधन भी किया। परंतु इन्हें काव्य साहित्य का सदा प्रेम बना रहा और बढ़ता रहा। छंद अलं-कार रस और काव्य के संस्कृत और हिंदी में भी ग्रंथ उन्होंने पढे। तथा देशी विदेशी कवियों से उनका समागम रहा।

काशी से १६८२ में लौटकर वे जयपुर राज्यांतर्गत उस फतहपुर (शेखावटी) नगर में आए जहाँ उक्त प्रागदासजी रहते थे। यहाँ उन्होंने तप किया, योग का प्रगाढ़ साधन, दादूवाणी के रहस्यों को संग्रह किया जिसकी कथा वे प्रायः किया करते और श्रोताओं को मुग्ध करते रहते थे। यहाँ

पर फतहपुर के नवाब भाषा के कवि और प्रेमी 'अलफखाँ' आदि से समागम होता रहा। ये सुंदरदासजी पर बड़ी श्रद्धा रखते थे और इनसे कई बार करामात के परिचय पा चुके थे।

फतहपुर के "केजड़ीवाल" गोत के महाजनों ने सुंदरदासजी के निवास के लिये पक्का स्थान और उसके नीचे एक तह-खाना, जिसको गुफा कहते हैं, और आगे एक कूप बना दिया था जो अब तक विद्यमान हैं।

सुंदरदासजी को पर्य्यटन से बड़ा प्रेम था। वे कभी फतहपुर में रहते और कभी बाहर फिरा करते और प्रसंग प्रसंग और अवसर अवसर पर छंदरचना और ग्रंथरचना करते रहते। प्रायः समस्त उत्तर भारत और गुजरात, काठियावाड़ और कुछ दक्षिण के विभाग, पंजाब आदि देशों में वे घूमे थे। काशी तो उनका विद्याद्वार ही ठहरा। परिष्कृत हिंदी और पूर्वी भाषा की रचना यहीं के फल हैं। गुजरात में भी वे बहुत रहे थे। गुजराती यहीं उन्होंने सीखी थी। पंजाब में वे कई बार गए और पंजाबी भाषा में उन्होंने छंदरचना तक की। लाहौर में छज्जू भक्त के चौबारे में वे ठहरा करते थे। "कुरसाना" ग्राम आपको बहुत प्रिय था, 'सवैया' की अधिक रचना का यहीं पर होना कहा जाता है। इनके रचे "दशों दिशा के सवैये" पर्य्यटन का और इनकी शुचिप्रियता और शुद्ध रुचि का दिग्दर्शन कराते हैं, यथा—

(१) पंजाब का—

"हिक्क लाहोर दानीर भी उत्तम, हिक्क लाहोर दा बाग सिराहे"।

(२) गुजरात का—

"आभड छोत अतीत सौं कीजिए बिलाइ रु कूकर चाटव हाँडी"।

(३) मारवाड़ का—

"व्रिच्छ न नीर न उत्तम चीर, सुदेसन में कत देस है मारू"।

(४) फतहपुर का—

"फूहड नारि फतेपुर की"।

(५) दक्षिण का—

"राँधत प्याज बिगारत नाज, न आवत लाज करैं सब भच्छन"।

(६) पूर्व देश का—

"ब्राह्मण छत्रिय वैस रु सूदर, चारूँ ही वर्ण के मंछ बघारत"।

(७) मालवा, उत्तराखंड और अपने प्रिय 'कुरसाने' ग्राम की तो उन्होंने बड़ी ही प्रशंसा की है। कुरसाना तो इनको अत्यंत प्रिय था, आपने लिखा है—

"पूरब पच्छिम उत्तर दच्छिन देश बिदेश फिरे सब जानें।
केतक द्यौस फतेपुर माहिं सुकेतक द्यौस रहे डिडवानें॥
केतक द्यौस रहे गुजरात उहाँ हुँ कछु नहिं आन्यौ है ठानें।
सोच बिचारि कै सुंदरदास जु याहि तें आन रहे कुरसानें॥"

यात्रा में वे सब प्रकार के मनुष्य और अनेक मतमतांतर-वादियों (वैष्णव, जैन, मुसलमानादि) से संवाद और प्रेमालाप किया करते थे। बहुत से विद्वान कवि लोग आपके मित्र और सेवक थे। जहाँ जहाँ दादूजी पधारे थे उन सब

स्थानों की इन्होंने यात्रा की, अपने सब विद्यमान गुरुभाइयों से मिले जिनमें प्रागदासजी, रज्जबजी, मोहनदासजी आदि से इनकी बड़ी प्रीति थी। देशाटन से सुंदरदासजी की जानकारी बहुत बढ़ी थी और उनकी ग्रंथ-रचना पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा था। जो ओजस्विता, उदारता, उच्चता, क्षमता और स्पष्टता उनके लेख में है वह इस यात्रा और संसार के ज्ञान से सब अधिक हुई थी।

संवत् १६८८ में प्रागदासजी का परलोकवास हुआ। उसके पीछे सुंदरदासजी का चित्त फतहपुर में अधिक नहीं लगा। प्रायः बाहर 'रामत' करने को वे चले जाया करते थे। कभी कुरसाने, कभी 'मोराँ,' कभी आमेर, कभी साँगानेर में, कभी और कहीं, समय समय पर ग्रथ रचते रहे। सं० १६९१ में 'पंचेंद्रिय चरित्र' और सं० १७१० में 'ज्ञान-समुद्र' समाप्त हुआ। अन्य ग्रंथों में रचना काल नहीं लिखा, इससे रचना का समय निश्चित नहीं होता। परतु सुंदर-दासजी की रचना कभी थकी नहीं, यों तो अंत समय तक छद कहते रहे परंतु यह निश्चय है कि सं० १७४३ के पीछे किसी ग्रंथ की तो रचना हुई नहीं यों प्रस्ताव वश वे कुछ कुछ बनाते रहे। सं० १७४३ से पहले अपने रचित ग्रंथों का संग्रह अपने सामने उन्होंने कर लिया था, जिनका क्रम उनके सामने लिखाई पुस्तक के अनुसार वही है जो इस "सार" मे है, तथा उनके समग्र ग्रंथो के संपादन में हमने रखा है।

अपने रचित ग्रंथों के संग्रह की प्रतियाँ लिखवा लिखवाकर अपने शिष्य और मित्रों को वे दिया करते थे। इनके जीवन-काल में ही इनकी ख्याति बहुत हो चुकी थी।

अंतावस्था

संवत् १७४४ के लगभग सुंदरदासजी फतहपुर में प्रायः रहे। सं० १७४५ के पीछे 'रामत' करते हुए साँगानेर गए (जो जयपुर से ४ कोस दक्षिण की ओर नदी किनारे छोटा सा सुंदर नगर है)। यहाँ दादूशिष्य 'रज्जबजी' तथा उनके शिष्य 'मोहनजी' आदि से सत्संग रहा करता था। परंतु यहाँ सुंदरदासजी ऐसे रुग्ण हुए कि अंततोगत्वा उनका परम-पद यहीं कार्तिक सुदि ८ सं० १७४६ में हुआ। अंत समय में ये साखियाँ आपने उच्चारण की थीं—

"मान लिए अंतःकरण जे इंद्रिनि के भोग।
सुंदर न्यारौ आतमा लग्यौ देह कौं रोग ॥ १ ॥
वैद्य हमारे रामजी औषधि हू हरि नाम।
सुंदर यहै उपाय अब सुमरण आठौं जाम ॥ २ ॥
सुंदर संशय को नहीं बड़ौ महुच्छव एह।
आतम परमातम मिल्यौ रहो कि विनसौ देह ॥ ३ ॥
सात बरष सौ में घटै इतने दिन की देह।
सुंदर आतम अमर है देह पेह की पेह ॥ ४ ॥"

इनकी समाधि साँगानेर में 'धाभाई जी के बाग' से उत्तर की ओर है। एक छोटी सी गुमटी में सफेद पत्थर पर इनके

श्रौर इनके छोटे शिष्य नारायणदासजी के चरणचिह्न श्रौर यह चौपाई खुदी हुई है—

"संवत् सत्रासै छीश्राला। कातिक सुदी अष्टमी उजाला॥
तीजे पहर भरसपति वार। सुंदर मिलिया सुंदर सार॥"

शिष्य श्रौर थाँभा

सुंदरदासजी दादूदयाल के सबसे पिछले श्रौर अल्पवयस्क शिष्य थे परंतु कीर्ति में सबसे बड़े श्रौर सबसे पहले। दादूजी की बाबत शिष्यों ने (जिनमें सुंदरदासजी एक हैं) अपने थाँभा स्थापन किया, वाणियाँ बनाईं श्रौर शिष्य भी किए। सुंदरदासजी अधिकतर फतहपुर में रहे, श्रौर यहाँ इनका मकान आदि भी रहा, इस कारण यहाँ इनका प्रधान थाँभा गिना जाता है, श्रौर इसही से वे सुंदरदास "फतहपुरिया" भी कहलाते हैं। इनका नाम "प्रणाली" में इस प्रकार लिखा है।

"वीहाणी पिरागदास डीडवाणों है प्रसिद्ध।
सुंदरदास बूसर सु फतेपुर गाजही॥"

श्रौर राघवीय भक्तमाल में भी—

"प्रथम गरीब मिसकीन बाई द्वै सुंदरदासा"

दादूजी के 'सुंदरदास' नामी दो शिष्य थे। बड़े तो बीकानेर राज्यघराने के थे जिनकी संप्रदाय में नागा जमात है श्रौर दूसरे हमारे इस चरित्र के नायक हैं। सुंदरदासजी के अनेक शिष्यों में पाँच प्रधान श्रौर स्थानधारी हुए।

यथा—"बूसर सुंदरदास के शिष्य पाँच प्रसिद्ध हैं।" (राघव-भक्तमाल)।

टिकैत दयालदास १। श्यामदास २। दामोदरदास ३। निर्मलदास ४। नारायणदास ५। इनमें से नारायणदास सं० १७३८ ही में रामशरण हो गए थे, और इनके शिष्य रामदास को फतेहपुर का स्थान मिला। शेष ४ अन्य स्थानों में जा बसे।

सुंदरदासजी के स्मारक चिह्न

सुंदरदासजी के हाथ की लिखी वा लिखाई पुस्तकें उनके थाँभाधारियों के पास विद्यमान हैं। उनकी समाधि साँगानेर में है। उनके स्थान, गुफा और कूप फतहपुर में हैं। उनके पलँग, चादर, टोपा, रूमाल आदि अनेक पदार्थ भी विद्यमान हैं तथा उनके चित्र भी रचित हैं।

ज्ञान और साहित्य में सुंदरदासजी का स्थान

वेदांत विद्या, भक्तिमय ज्ञान को सुमधुर सरल और उच्च-काव्य में नाना प्रकार से रचना करने और अद्वैत ब्रह्म-विद्या के प्रचार करने और पहुँचवान होने के कारण दादूपंथियों ने इनको "द्वितीय शंकराचार्य" करके कहा है—

"संकराचारय दूसरौ दादू के सुंदर भयो" (राघवीय भक्तमाल)

दादूजी के शिष्यों में इस उत्कृष्ट रीति की कविता करने-वाला ज्ञानी दूसरा नहीं हुआ। यों तो शेष ५ शिष्यों ने

उत्तम उत्तम रचनाएँ की हैं परंतु सुंदरदासजी सर्व सम्मति से सर्वोत्तम माने जाते हैं* ।

विचारने की बात है कि भाषा साहित्य में सूरदास तुलसीदास आदि के पीछे पराभक्ति और अद्वैत ज्ञान का कवि सुंदरदासजी के पल्ले का कौन सा है ? नाना प्रकार के काव्य भेदों में इस ढंग की ईश्वर संबंधी रचना किसने की ? यह विषय साहित्यपारंगत और वेदांत और भक्ति मार्गगामियों को विचारणीय है । और वह समय निकट है कि जब सुंदरदासजी का साहित्य में यह स्थान विद्वान् स्वयं निश्चित करेंगे ।

जयपुर । मार्गशीर्ष १५
संवत् १९७२ वि०

विनीत संग्रहकर्त्ता
पुरोहित हरिनारायण

---

* इस ग्रंथ के आदि में स्वामी सुंदरदासजी के
जिससे यह लिया गया वह 'मोर' नामी ग्राम के साधु
दासजी के थांभे के हैं, प्राप्त हुआ था । यह 'मोर
पुर के जिले मालपुर में है और वहाँ वे साधु रहा
स्वर्गवासी मिश्र लाला आनंदीलालजी दूधी राजस

सूचीपत्र

तम उत्तम रचनाएँ की हैं परंतु सुंदरदासजी सर्व सम्मति । सर्वोत्तम माने जाते हैं* ।

विचारने की बात है कि भाषा साहित्य में सूरदास तुलसीदास आदि के पीछे पराभक्ति और अद्वैत ज्ञान का कवि सुंदरदासजी के पल्ले का कौन सा है ? नाना प्रकार के काव्य भेदों में इस ढंग की ईश्वर संबधी रचना किसने की ? यह विषय साहित्यपारंगत और वेदांत और भक्ति मार्गगामियों को विचारणीय है। और वह समय निकट है कि जब सुंदरदासजी का साहित्य में यह स्थान विद्वान् स्वयं निश्चित करेंगे।

जयपुर। मार्गशीर्ष १५ }
संवत् १९७२ वि० }

विनीत संग्रहकर्त्ता
पुरोहित हरिनारायण

---

* इस ग्रंथ के आदि में स्वामी सुंदरदासजी के चित्र का फोटो है। जिससे यह लिया गया वह 'मोर' नामी ग्राम के साधुओं से, जो सुंदरदासजी के थांभे के हैं, प्राप्त हुआ था। यह 'मोर' ग्राम राज्य जयपुर के जिले मालपुर में है और वहाँ वे साधु रहा करते हैं हमा स्वर्गवासी मित्र लाला आनंदीलालजी दूणी राजमहलवालों की कृपा से चित्र मिला था।

सूचीपत्र

सुंदरसार

---

(१) अथ ज्ञानसमुद्र-सार

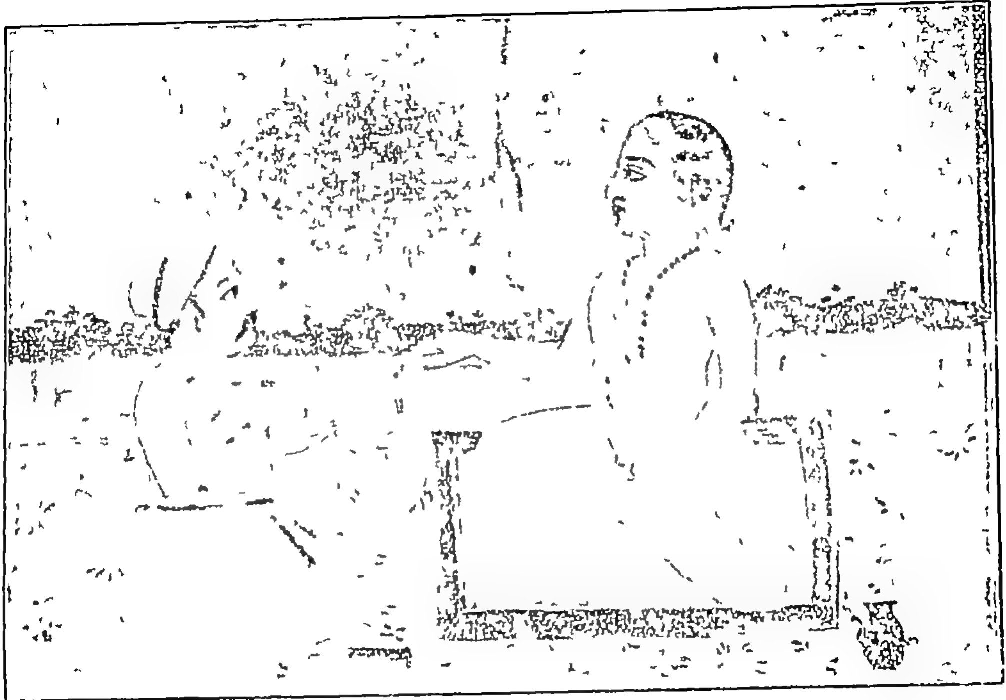
[नोट—ग्रंथकर्त्ता श्री स्वामी सुंदरदासजी अद्वैत निर्गुण-मार्गियो की शैली से आदि मे मंगलाचरण करके ग्रंथ के विषय प्रयोजन आदि को वताते है और ग्रंथनाम की सार्थकता समुद्र के रूपक से, निवाहते हैं। इस ज्ञानसमुद्र की भूमिका-संबंधिनी कुछ बातें पूर्व मे ग्रंथ-भूमिका में लिख आए है सो उन्हें वहाँ देखना चाहिए। ग्रंथ के प्रारंभिक उपयोगी छंद यहाँ लिखे जाते हैं]

(१) गुरु-शिष्य-लक्षण-निरूपण

मंगलाचरण। छप्पय छंद

प्रथम वंदि[1] परब्रह्म परम आनंद स्वरूपं[2]।
दुतिय वंदि गुरुदेव दियौ जिहिं[3] ज्ञान अनूपं॥
त्रितिय वंदि सब संत जोरि कर तिनके आगय[4]।
मन वच काम प्रणाम करत भय भ्रम सब भागय॥

१—वंदना अर्थात् नमस्कार करके। २—संस्कृत रीति से द्वितीया वा कर्म्म विभक्ति का प्रयोग केवल छंद की सुमिष्टता बढ़ाने को है, कुछ 'अनूपं' के साथ अनुप्रास के लिये नहीं। ३—जिसने। ४—आगे।



कविवर श्रीस्वामी सुवरदास जी ।

सुंदरसार



(१) अथ ज्ञानसमुद्र-सार

[नोट—ग्रंथकर्त्ता श्री स्वामी सुंदरदासजी अद्वैत निर्गुण-मार्गियो की शैली से आदि मे मंगलाचरण करके ग्रंथ के विषय प्रयोजन आदि को बताते है और ग्रंथनाम की सार्थकता समुद्र के रूपक से, निबाहते है। इस ज्ञानसमुद्र की भूमिका-संबंधिनी कुछ बातें पूर्व मे ग्रंथ-भूमिका में लिख आए है सो उन्हें वहाँ देखना चाहिए। ग्रंथ के प्रारंभिक उपयोगी छंद यहाँ लिखे जाते हैं]

(१) गुरु-शिष्य-लक्षण-निरूपण

मंगलाचरण। छप्पय छंद

प्रथम वंदि[1] परब्रह्म परम आनंद स्वरूपं[2]।
दुतिय वंदि गुरुदेव दियौ जिहिं[3] ज्ञान अनूपं॥
त्रितिय वंदि सब संत जोरि कर तिनके आगय[4]।
मन वच काम प्रणाम करत भय भ्रम सब भागय॥

१—वंदना अर्थात् नमस्कार करके। २—संस्कृत रीति से द्वितीया वा कर्म्म विभक्ति का प्रयोग केवल छंद की सुमिष्टता बढ़ाने को है, कुछ 'अनूपं' के साथ अनुप्रास के लिये नहीं। ३—जिसने। ४—आगे।

इहिं भाँति मंगलाचरण करि सुंदर ग्रंथ बखानिए।
तहँ विघ्न न कोऊ उप्पजय यह निश्चय करि मानिए॥ १॥

[तीन को नमस्कार करने में अद्वैतपक्ष से प्रतिकूलता प्रतीत होती है। इसी लिये ग्रंथकर्त्ता इस दोष के परिहार निमित्त स्पष्टीकरण देते हैं।]

दोहा छंद

ब्रह्म प्रणम्य[1] प्रणम्य गुरु पुनि प्रणम्य सब संत।
करत मंगलाचरण इम[2] नाशत विघ्न अनंत॥ २॥
उहै[3] ब्रह्म गुरु संत उह वस्तु विराजत येक[4]।
वचन विलास विभाग त्रय वंदन भाव विवेक[5]॥ ३॥

[अब ग्रंथारंभ में ग्रंथ रचने की इच्छा और अपना विनय प्रगट करते हैं।]

दोहा छंद

बरन्यौ चाहत ग्रंथ कौ कहा बुद्धि मम क्षुद्र।
अति अगाध मुनि कहत हैं सुंदर ज्ञानसमुद्र[6]॥ ४॥

१—प्रणाम करके। २—इस प्रकार। ३—वही। ४—एक—अभेद ज्ञान से, अथवा गुरु और संत भी ब्रह्मरूप हैं, अथवा सिद्धांत में गुरुवेद भी मिथ्या है केवल ब्रह्म ही सत्य है इस विचार से एकत्व का कथन उपयुक्त है। ५—विचार, कहने मात्र में तीन भिन्न भिन्न पदार्थ हैं परंतु विवेक दृष्टि से भावना अद्वैत ब्रह्म ही की होती है अर्थात् ब्रह्म जो अपना आत्मा है, उसी को नमस्कार होता है। ६—यह उक्ति 'रघुवंश' के 'क्व सूर्यप्रभवो वंशः' इत्यादि का स्मरण दिलाती है—ज्ञान की समुद्र से तुलना, उसकी अगाधता, रत्नवत्ता आदि हेतुओं से दी गई है।

चौपाई छंद

ज्ञान-समुद्र ग्रंथ अब भाषौं।
बहुत भाँति मन महिं अभिलाषौं॥
यथाशक्ति हौं बरनि सुनाऊँ।
जो सद्गुरु पहिं आज्ञा पाऊँ[1] ॥ ५ ॥

सोरठा छंद

है यह अति गंभीर[2] उठत लहरि[3] आनंद की।
मिष्ट सुयाको[4] नीर सकल पदारथ[5] मध्य है॥ ६ ॥

इंदव छंद

जाति जिती[6] सब[7] छंदनि की बहु सीप भई इहिं सागर माहीं।
है तिनमें मुक्ताफल अर्थ, लहैं उनकौं हित सौं अवगाहीं[8] ॥

१—पाता हूँ। 'जो' इस शब्द का अर्थ 'जो कुछ' 'जैसी कि' ऐसा होना उचित है, इसका अर्थ 'यदि' ऐसा नहीं करना चाहिए। २—गहरा। अंतर्गत वर्णित विषयों से तथा अगाध होने से। ३—समुद्र में लहरें (हिलोरे) भी होनी चाहिएँ सो इस ज्ञानसमुद्र में आनंद ही की लहरें हैं। इसी से विभागों का उल्लास नाम दिया है। ४—मीठा। पृथ्वी के समुद्र का जल तो खारा होता है। इस समुद्र में विशेषता वा अधिकता वा उत्कृष्टता यह है कि जल इसका मीठा (अर्थात् अमृत) है। ज्ञान को अमृत की उपमा भी दी जाती है। ५—सारे। सिद्धांत में ज्ञान से बाहर कोई भी चिंतनीय पदार्थ नहीं है। कथा-प्रसिद्ध समुद्र-मथन में कतिपय पदार्थ ही मिलना संभव हुआ, इस ज्ञान के समुद्र-मथन से यावन्मात्र पदार्थों की प्राप्ति होती है, यह विशेषता है। ६—जितनी। ७—'सब' शब्द से बहुत का अर्थ लेना। जो प्रशस्त वा विख्यात छंद हैं उनमें से प्राय. सब। ८—पैरे अर्थात् मनन करे।

इहिं भाँति मंगलाचरण करि सुदर ग्रथ बखानिए।
तहँ विघ्न न कोऊ उप्पजय यह निश्चय करि मानिए॥ १॥

[तीन को नमस्कार करने मे अद्वैतपक्ष से प्रतिकूलता प्रतीत होती है। इसी लिये ग्रंथकर्त्ता इस दोष के परिहार निमित्त स्पष्टीकरण देते हैं।]

दोहा छंद

ब्रह्म प्रणम्य[1] प्रणम्य गुरु पुनि प्रणम्य सब संत।
करत मगलाचरण इम[2] नाशत विघ्न अनंत॥ २॥
उहै[3] ब्रह्म गुरु सत उह वस्तु विराजत येक[4]।
वचन विलास विभाग त्रय वंदन भाव विवेक[5]॥ ३॥

[अब ग्रंथारंभ मे ग्रथ रचने की इच्छा और अपना विनय प्रगट करते हैं।]

दोहा छद

बरन्यौ चाहत ग्रथ कौं कहा बुद्धि मम छुद्र।
अति अगाध मुनि कहत हैं सुंदर ज्ञानसमुद्र[6]॥ ४॥

१—प्रणाम करके। २—इस प्रकार। ३—वही। ४—एक—अभेद ज्ञान से, अथवा गुरु और संत भी ब्रह्मरूप है, अथवा सिद्धांत में गुरुवेद भी मिथ्या है केवल ब्रह्म ही सत्य है इस विचार से एकत्त्व का कथन उपयुक्त है। ५—विचार, कहने मात्र में तीन भिन्न भिन्न पदार्थ हैं परंतु विवेक दृष्टि से भावना अद्वैत ब्रह्म ही की होती है अर्थात् ब्रह्म जो अपना आत्मा है, उसी को नमस्कार होता है। ६—यह उक्ति 'रघुवश' के 'क्व सूर्यप्रभवो वंश' इत्यादि का स्मरण दिलाती है—ज्ञान की समुद्र से तुलना, उसकी अगाधता, रत्नवत्ता आदि हेतुओ से दी गई है।

मनहर छंद

गुरु के प्रसाद[1] बुद्धि उत्तम दिशा को ग्रहै[2] ।
गुरु के प्रसाद भव दुःख विसराइए ॥
गुरु के प्रसाद प्रेम प्रीति हू अधिक बाढ़ै ।
गुरु के प्रसाद रामनाम गुन गाइए ॥
गुरु के प्रसाद सब योग की युगति[3] जाने ।
गुरु के प्रसाद शून्य[4] में समाधि लाइए ॥
सुंदर कहत गुरुदेव जो कृपाल होहिं ।
तिनके प्रसाद तत्त्वज्ञान[5] पुनि पाइए ॥ १२ ॥

[इसी को दोहा छंद में साररूप और ज्ञानप्रकाश को सूर्यवत् गुरु को निमित्त कहकर अब गुरु के लक्षण बताते हैं कि गुरु कैसे होने चाहिएँ ।]

गुरु-लक्षण । रोला छंद

चित्त ब्रह्म लयलीन नित्य शीतल हि सुहिर्दय[6] ।
क्रोधरहित सब साधि[7] साधुपद[8] नाहिन निर्दय[9] ॥
अहंकार नहिं लेश महान[10] सबनि सुख दिज्जय ।
शिष्य परष्य[11] विचारि जगत महिं सो गुरु किज्जय ॥ १४ ॥

१–प्रसन्नता, कृपा । २–दिशा = गति । ग्रहे = ग्रहण करे । ३–युक्ति, कुंजी, क्रिया । ४–निर्विकल्प समाधि । ५–तत्त्वज्ञान—शुद्ध ब्रह्म की प्राप्ति । ६–हृदय । ७–साधन वा कर्म करके । ८–साधु के पद वा स्थान (दरजा—कक्षा) के अर्थ गुणसमूह । नाहिं 'साधुपद' के साथ लगाने से—साधु के योग्य वा अर्थ कर्मशेष नहीं रहा । अथवा 'नाहिन' एक रखें तो 'कदापि नहीं' ऐसा अर्थ । ९–अत्यंत दयामय । १०–महान सुख सबको दीजे (देवे) । ११–परखकर । परीक्षा कर ।

सुंदर पैठि सकै नहिं जीवत दै डुबकी[१] मरिजीवहिं[२] जाहीं ।
जे नर जान कहावत हैं, अति गर्व भरे तिनकी गम नाहीं ॥ ७ ॥

[ग्रंथ की सार्थकता कहकर उसके अधिकारी का लक्षण कहते है ।]

जिज्ञासु लक्षण । सवैया छद ।

जे गुरुभक्त विरक्त जगत सौं है जिनकै संतनि कौ भाव ।
वै यज्ञास उदास रहत हैं गनत न कोऊ रंक न राव ॥
वाद विवाद करत नहि कबहूँ वस्तु जानिबे कौ अति चाव ।
सुंदर जिनकी मति है ऐसी ते पैठहिगे या दरियाव ॥ ८ ॥

छप्पय छद

सुत कलत्र निज देह आपुकौ बधन जानत ।
छूटौं कौन उपाय इहै उर अंतर आनत ॥
जन्म मरन की शक रहै निसि दिन मन माहीं ।
चतुराशी के दु ख नहीं कछु बरने जाहीं ॥
इहि भाँति रहै सोचत सदा सतनि को पूछत फिरै ।
को है ऐसो सद्गुरु कहीं जो मेरौ कारज करै ॥ ९ ॥

[जिज्ञासु ज्ञानप्राप्ति के निमित्त सद्गुरु को खोजता है । यह कहकर गुरु की उपयोगिता और आवश्यकता चौपइया छंद में कहते हैं कि सीधा रास्ता गुरु बिना नहीं मिलता है न भक्ति मिलती, न संशय मिटता और न ज्ञान की प्राप्ति होती । अततोगत्वा सद्गति की प्राप्ति भी गुरु पर निर्भर है । इसी को त्रोटक छद करके भी कहा है । फिर उसी का सार मनहर छंद से बताते है ।]

१–डुबकी, गोता । २–गोताखोर–"मुरजीवा" की नाईं प्रथम मरण मांडे फिर जीवे ।

शिष्य की प्रार्थना। अर्द्धभुजगी

अहो देव स्वामी अहं[1] अज्ञ[2] कामी।
कृपा मोहि[3] कीजै अभैदान[4] दीजै ॥ १ ॥
बड़े भाग्य मेरे लहे अंघ्रि[5] तेरे।
तुम्हैं देखि जीजै अभैदान दीजै ॥ २ ॥
प्रभू हौं अनाथा गहौ मोर हाथा।
दया क्यों न कीजै अभैदान दीजै ॥ ३ ॥
दुखी दीन प्राणी कहौ ब्रह्म वाणी।
हृदै प्रेम भीजै अभैदान[6] दीजै ॥ ४ ॥
यती जैन[7] देखे सबै भेष पेखे।
तुम्हैं चित्त धीजै अभैदान दीजै ॥ ५ ॥
फिरयौ देश देशा किये दूरि केशा।
नहीं यौं पतीजै अभैदान दीजै ॥ ६ ॥
गयो आयु सारो[8] भयो सोच भारो।
वृथा देह छीजै अभैदान दीजै ॥ ७ ॥

१—मैं। २—अज्ञानी, मूर्ख। ३—संस्कृत की 'मम कृपा' का अनुवाद। मोहि = मुझ पै। ४—संशय सागर के जन्ममरण रूपी डर से मुक्त कीजिए सो स्वात्मानुभव से प्राप्त होता है। ५—चरण। ६—भीगै। ७—अनीश्वरवादी सांख्य के अनुयायी। यहाँ चोज यह है कि जिज्ञासु को सर्व मतांतर का यहाँ तक कि जैन मत तक का देख भाल कर लेनेवाला दरसाया है। ८—सर्व। तमाम आयु जाने से यह दरसाया कि शिष्य बडी उम्र का है, बालक नही।

छप्पय छंद

सदा प्रसन्न सुभाव प्रगट सर्वोपरि राजय।
तृप्त ज्ञान विज्ञान अचल कूटस्थ[1] विराजय॥
सुखनिधान सर्वज्ञ मान अपमान न जानै।
सारासार विवेक सकल मिथ्या भ्रम भानै[2]॥
पुनि भिद्यंते हृदि ग्रंथि कौं छिद्यते[3] सब संशय।
कहि सुंदर सो सद्‌गुरु सही चिदानंदघन चिन्मय[4]॥१५॥

पमगम छंद

शब्द ब्रह्म[5] परब्रह्म[6] भली विधि जानई।
पंच तत्व गुन तीन मृषा[7] करि मानई॥
बुद्धिमत सब संत कहैं गुरु सोइ रे।
और ठौर शिष जाइ भ्रमैं जिन[8] कोइ रे॥ १६॥

[इसी खोज को नंदा आदि छंदो में पुन कहकर गुरु की प्राप्ति वर्णन करते है। जिज्ञासु को गुरु यथारुचि प्राप्त हो गया तो फूले अंग न समाया। गुरु-दर्शन कर कृतकृत्य हुआ और विनीत भाव से प्रणाम कर उसी आनंद की धुन मे प्रार्थना करने लगा।]

१—"ज्ञान-विज्ञान-तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेंद्रिय"—गीता। कूटस्थ = निर्लिप्त, अटल। २—किसी किसी पुस्तक में 'मानै' पाठ है। भानै = प्रकाशै सूर्य्यसम। ३—संस्कृत के बहुवचन पाठ ही धर दिए हैं। आदर-सूचकता में काटते-मिटाते हैं। ४—निरामय-पद-प्राप्ति की अवस्था में शुद्ध चेतन का जो विशेषण सो ही गुरु का लिखा है। ५—वेद शास्त्र। ६—तिर्यगात्मा। ७—मिथ्या। ८—मत।

शिष्य की प्रार्थना। अर्द्धभुजंगी

अहो देव स्वामी अहं[१] अज्ञ[२] कामी।
कृपा मोहि[३] कीजै अभैदान[४] दीजै॥ १॥
बड़े भाग्य मेरे लहे अंघ्रि[५] तेरे।
तुम्हें देखि जीजै अभैदान दीजै॥ २॥
प्रभू हो अनाथा गहौ मोर हाथा।
दया क्यों न कीजै अभैदान दीजै॥ ३॥
दुखी दीन प्राणी कहौ ब्रह्म वाणी।
हृदै प्रेम भीजै अभैदान[६] दीजै॥ ४॥
यती जैन[७] देखे सबै भेष पेषे।
तुम्हें चित्त धीजै अभैदान दीजै॥ ५॥
फिरयौ देश देशा किये दूरि केशा।
नहीं यों पतीजै अभैदान दीजै॥ ६॥
गयो आयु सारो[८] भयो सोच भारो।
वृथा देह छीजै अभैदान दीजै॥ ७॥

१—मैं। २—अज्ञानी, मूर्ख। ३—संस्कृत की 'मम कृपा' का अनुवाद। मोहि=मुझ पे। ४—संशय सागर के जन्ममरण रूपी डर से मुक्त कीजिए सो स्वात्मानुभव से प्राप्त होता है। ५—चरण। ६—भीनै। ७—अनीश्वरवादी सांख्य के अनुयायी। यहां चोज यह है कि जिज्ञासु को सर्व मतांतर का यहां तक कि जैन मत तक का देख भाल कर लेनेवाला दरसाया है। ८—सर्व। तमाम आयु जाने से यह दरसाया कि शिष्य बड़ी उम्र का है, बालक नहीं।

करो मौज ऐसी रहै बुद्धि वैसी।
सुधा[1] नित्य पीजै अभैदान दीजै॥ ८ ॥२९॥

[शिष्य की इस सच्ची प्रार्थना को सुन, उसकी जिज्ञासा का निश्चय कर जान लिया कि यह अधिकारी है, वे उस पर प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे ज्ञानदान का वरदान दिया। शिष्य संतुष्ट हुआ और अब उसने अपने संशय-विपर्य्यय की निवृत्ति के लिये गुरु से सविनय प्रश्न किए जिनके गुरु ने प्रसन्न हो उत्तर दिए सो ही दिखाते हैं।]

शिष्य का प्रश्न। पद्धडी छंद

कर जोरि उभय शिष करि प्रणाम।
तब प्रश्न करी[2] मन धरि विराम[3]॥
हौं कौन कौन यह जगत आहि[4]।
पुनि जन्म मरण प्रभु कहहु काहि॥ ३१ ॥

श्रीगुरुरुवाच। उत्तर। बोधक छंद

है चिदानंदघन ब्रह्म तूं सोई।
देह संयोग जीवत्व भ्रम होई॥

यह अनछतौ संसार कैसै जो प्रत्यक्ष[1] प्रमानिए।
पुनि जन्म मरण प्रवाह कबकौ स्वप्न करि क्यों जानिए ॥ ३३ ॥

श्रीगुरुरुवाच। दोहा छद

भ्रम ही कौं भ्रम[2] ऊपज्यौ चिदानंद रस एक।
मृगजल[3] प्रत्यक्ष देखिए तैसे जगत विवेक ॥ ३४ ॥

चौपाई छंद

निद्रा महिं सूतौ है जौ लौं। जन्म मरण कौ अंत न तौ लौं।
जागि परें तें सुप्न[4] समाना। तब मिटि जाइ सकल अज्ञाना ॥३५॥

शिष्य उवाच। सोरठा छंद

स्वामिन् यह संदेह जागै सोवै कौन सो।
ये तो जड मन देह भ्रम को भ्रम कैसे भयो ॥ ३६ ॥

[जब शिष्य ने बुद्धि की मलिनता के कारण प्रज्ञावाद रूपी प्रश्न किए तो गुरु ने कारण की निवृत्ति के निमित्त प्रथम अंतःकरण के मल-विक्षेप आवरण दोषों को मिटाने का प्रयोजन यो कहा।]

श्रीगुरुरुवाच। कुंडलिया छंद

शिष्य कहाँ लौ पूछिहै मैं तो उत्तर दीन।
तब लग चित्त न आइहै जब लग हृदय मलीन ॥

१—प्रत्यक्ष का सुख। २—अविद्याजन्य उपाधि। ३—मृगतृष्णा वस्तुतः कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जैसा दिखता है। विपरीत ज्ञान के रूप से प्रत्यक्ष जल सा दिखाई देता है। ऐसे ही वस्तुतः जगत् है नहीं, परन्तु सत्य भासता है। ४—स्वप्न—अथवा अविद्या का लय वा नाश ज्ञानोत्पत्ति से हो जाने पर जगत् स्वप्न सा प्रतीत होगा।

जब लग हृदय मलीन यथारथ[1] कैसे जानै ।
भ्रमैं त्रिगुन मय बुद्धि[2] आपु नाहिन पहचानै ॥
कहिबो सुनबो करौ ज्ञान उपजै न जहाँ लौं ।
मैं तो उत्तर दियो पूछिहै शिष्य कहाँ लौं ॥ ३७[3] ॥

---

(२) भक्ति-निरूपण

[अब शिष्य मन की शुद्धि के उपाय पूछता है और गुरु उसको बताता है कि इसके तीन उपाय प्रधान हैं—भक्ति, हठयोग और सांख्य ज्ञान । सो इस उल्लास में भक्ति का वर्णन है । शिष्य के फिर पूछने पर गुरु नवधा भक्ति प्रेमलक्षणा पराभक्ति को क्रमश कहता है ।]

श्रीगुरुरुवाच । सवैया छंद

प्रथमहिं नवधा भक्ति कहत हौं नव प्रकार हैं ताके भेद ।
दशमी प्रेमलक्षणा कहिए सो पावै जो ह्वै निर्वेद ॥
पराभक्ति है ताके आगे सेवक सेव्य न होइ विछेद ।
उत्तम मध्य कनिष्ट तीन विधि सुदर इनतै मिटिहैं खेद ॥४॥

[इस पर शिष्य ने प्रत्येक भेद को विशेष रूप से सुनने की उत्कठा प्रगट की । उत्तम मध्यम कनिष्ठ प्रकार की क्या रीति होती है सो पूछा तो गुरु ने कहना प्रार भ किया ।]

१--पढ़ने में यथारथ ऐसा लिखा गया । २--बुद्धि वा महत्तत्त्व सत-रज-तम से व्याप्त है । देश काल निमित्त के आधार बिना कोई वस्तु ज्ञान बुद्धि वा मन मे हो नहीं सकता । ३--कुंडलिया के आदि में 'पूछिहै' पीछे आया है और अत में पहले ।

श्रीगुरुरुवाच। चौपाई छंद

सुनि शिष नउधा भक्ति विधानं।
श्रवण कीर्त्तन समरण जानं॥
पादसेवनं अर्चन वंदन।
दासभाव सख्यत्व समर्पन॥ ६॥

१—श्रवण। चंपक छंद

शिष तोहि कहौं श्रुति वानी[1]। सब संतनि[2] साखि बखानी।
द्वै रूप ब्रह्म के जानै। निर्गुण अरु सगुन पिछानै॥११॥
निर्गुन निजरूप नियारा। पुनि सगुन संत अवतारा।
निर्गुन की भक्ति सु-मन सौं। संतनि की मन अरु तन सौं॥१२॥

येकाग्र हि चित्त जु राखै।
हरिगुन सुनि सुनि रस चाखै॥
पुनि सुनै सत के बैना।
यह श्रवण भक्ति मन चैना॥ १३॥

२—कीर्त्तन

हरि गुन रसना[3] मुख गावै।
अतिसै करि प्रेम वढावै॥

१—वेदवाक्य। उपनिषदों में तथा संहिताओं में भी ब्रह्म के सगुण निर्गुण रूप का विचार है। वेदांत में ईश्वर शब्द से सगुण ब्रह्म ही लिया गया है। २—संत शब्द से ऋषि मुनि महात्मा का अर्थ है जिनको ब्रह्मानंद की प्राप्ति हुई और जिन्होंने 'तद्दर्शनात्' ऐसे ऐसे वाक्यों से उसकी पुष्टि की है। साष = साक्षी, प्रमाण वाणी। ३—जिह्वा। मुख कहने से उच्चारण के करण को बलवान् होना जताया है।

यह भक्ति कीर्त्तन कहिये।
पुनि गुरु प्रसाद तैं लहिये ॥ १४ ॥

३—स्मरण

अब समरन दोइ प्रकारा।
इक रसना नाम उचारा ॥
इक हृदय नाम ठहरावै।
यह समरन भक्ति कहावै ॥ १५ ॥

४—पादसेवन

नित चरण कँवल महि लोटै।
मनसा करि पाव पलोटै ॥
यह भक्ति चरन की सेवा।
समुझावत है गुरु देवा ॥ १६ ॥

५—अर्चना। गीता छन्द

अब अरचना को भेद सुनि शिष देऊँ तोहि बताइ।
आरोपिकै तहँ भाव[1] अपनौ सेइए मन लाइ ॥
रचि भाव को मंदिर अनूपम अकल मूरति माहिं।
पुनि भावसिंघासन विराजै भाव बिनु कछु नाहिं ॥ १७ ॥
निज भाव की तहाँ करै पूजा, बैठि सनमुख दास।
निज भाव की सब सौंज[2] आनै, नित्य स्वामी पास ॥

१—'भावो हि विद्यते देवा' इस प्रमाण से अपने प्रिय इष्ट को अपने मनोराज्य का स्वामी बनाकर अंतःकरण में ध्यान करे। २—सामग्री पूजन की।

पुनि भाव ही को कलस भरि धरि, भावनीर न्हवाइ ।
करि भाव ही के बसन बहु विधि, अंग अंग बनाइ ॥ १८॥
तहँ भाव चदन भाव केसरि भाव करि घसि लेहु ।
पुनि भाव ही करि चरचि स्वामी तिलक मस्तक देहु ॥
लै भाव ही के पुष्प उत्तम गुहै माल अनूप ।
पहिराइ प्रभु कौं निरखि नख सिख भाव षेवै धूप ॥ १९॥
तहँ भाव ही लै धरै भोजन भाव लावै भोग ।
पुनि भाव ही करि कैं समर्प्यैं सकल प्रभु कैं योग ॥
तहाँ भाव ही कौ जोइ दीपक भाव घृत करि सींचि ।
तहाँ भाव ही की करै थाली धरै ताके बीचि ॥ २० ॥
तहाँ भाव ही की घट झालरि संख ताल मृदंग ।
तहाँ भाव ही के शब्द नाना रहै अतिसै रंग ॥
यह भाव ही की आरती करि करै बहुत प्रनाम ।
तब स्तुति बहु विधि उच्चरै धुनि सहित लै लै नाम[1] ॥२१॥

[यह केवल मानसिक पूजा का विधान लिखा है। क्योंकि कर्मेंद्रिय से पूजन होता है यह तो प्रसिद्ध ही है। वही विधान मन द्वारा कह दिया गया है। मन की शुद्धि के लिये ही पूजन उपासना रखी गई है। फिर आरती के साथ स्तुत्यष्टक दिया है। उसी का एक छंद लिखते हैं।]

१--यह जानने की बात है कि दादूजी का अटल सिद्धांत था कि परमात्मा की प्राप्ति बाह्य पदार्थों के विचार से नहीं हो सकती। अपने अंदर ही खोजना चाहिए। इस बात को उन्होंने और उनकी संप्रदाय के महात्माओं ने बडे बल के साथ प्रतिपादन किया है। इनकी ब्रह्म

अथ स्तुति । मोतीदाम छंद

अहो हरिदेव न जानत सेव । अहो हरिराइ परौं तव पाइ ॥
सुनौं यह गाथ गहौ मम हाथ । अनाथअनाथअनाथ अनाथ॥२२॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀ ❀

६—वदना । लीला छद

वदन द्वोई प्रकार कहै शिप संभलिय[1] ।
दड समान करै तन सौं तन दड[2] दियं ॥
त्यौं मन सौ तन मध्य प्रभू कर[3] पाइ परै ।
या विधि दोइ प्रकार सुवदन भक्ति करै ॥ ३१ ॥

७—दास्यत्व । हसाल छद

नित्य भय सौं रहे हस्त जोरे कहै ।
कहा प्रभु मोहि आज्ञा सु होई ॥
पलक पतिव्रता पति वचन खंडै नहीं ।
भक्ति दास्यत्व शिष जानि सोई ॥ ३२ ॥

८—सख्यत्व । डुमिला छंद

सुनि शिष्य सखापन तोहि कहौं, हरि आतम कै नित संग रहै ।
पल छाड़त नाहि समीप सदा, जित ही जित को यह जीव वहै ॥
अव तूँ फिरिकैं हरि सों हित राखहि, होइ सखा दृढ़ भाव गहै ।
इम सुंदर मित्रन मित्र तजै, यह भक्ति सखापन वेद कहै ॥३३॥

संप्रदाय कहाती है । वाह्य प्रतीक मूर्त्ति आदि के पूजनादि का विधान इनके यहाँ नहीं रखा गया है ।

१—सँम्हलना । २—दंडवत् साष्टांग करना । ३—कर=के ।

९ - आत्मसमर्पण । कुंडली छंद

प्रथम समर्पन मन करै, दुतिय समर्पन देह ।
तृतिय समर्पन धन करै, चतुः समर्पन गेह ॥
गेह दारा धनं, दास दासी जनं ।
बाज हाथी गनं, सर्व दै यों भनं ॥
और जे मे मनं, है प्रभू ते तनं ।
शिष्य बानी सुनं, आतमा अर्पनं ॥ ३४ ॥[१]

[यह नवधा भक्ति का प्रकार हो चुका जिसको कनिष्ठा भी कहते है। अब शिष्य के पूछने पर प्रेमलक्षणा वा मध्यमा भक्ति का गुरु वर्णन करते हैं।]

श्रीगुरुरुवाच । इंदव छंद

प्रेम लग्यौ परमेश्वर सौं तब भूलि गयौ सबही घरबारा ।
ज्यौं उनमत्त फिरै जित ही तित नैंकु रही न शरीर सँभारा ॥
स्वास उस्वास उठै सब रोम चलै दृग नीर अखंडित धारा ।
सुंदर कौन करै नवधा विधि छाकि पर्यौ रस पी मतवारा ॥३८॥

नराय[२] छंद

न लाज कानि लोक की, न वेद कौ कह्यौ करै ।
न शंक भूत प्रेत की, न देव यक्ष तैं डरै ॥
सुनैं न कान और की, द्रशै न और अच्छणा[३] ।
कहै न मुक्ख और बात, भक्ति प्रेमलच्छणा ॥ ३९ ॥

१—कुंडलिया छंद से कुछ भेद है। कुंडली में दोहा के पीछे चंदाना छंद आया है जिसको विमोहा कहते है। २—नाराच छंद को नराय लिखा है। ३—आँख से (अक्षिणा तृतीया का रूपांतर)।

रगिका छद

निसि दिन हरि सौं चित्तासक्ति, सदा ठग्यौ सो रहिए।
कोउ न जानि सकै यह भक्ति, प्रेमलच्चणा कहिए॥ ४०॥

विज्जुमाला छद

प्रेमाधीना छाक्या डोलै। क्यों का क्यौं ही बानी बोलै।
जैसैं गोपी भूली देहा। ताकौ चाहै जासौं नेहा॥ ४१॥

छप्पय छद

कबहूँ कै हँसि उठै नृत्य करि रोवन लागय।
कबहूँ गद्गद कठ शब्द निकसै नहि आगय॥
कबहूँ हृदय उमगि बहुत उच्चय सुर गावै
कबहूँ कैं मुख मौंनि मग्न ऐसैं रहि जावै॥
तौ चित्त वृत्य हरि सौं लगी सावधान कैसैं रहै।
यह प्रेमलच्चणा भक्ति है शिष्य सुनिहिं सद्गुरु कहै॥ ४२॥

मनहर छद

नीर बिनु मीन दुखी च्चीर बिनु शिशु जैसैं।
पीर मैं औषध बिनु कैसैं रह्यो जात है॥
चातक ज्यौं स्वाति बूँद चद कौं चकोर जैसे।
चदन की चाहि करि सर्प अकुलात है॥
निर्धन ज्यौं धन चाहै कामिनी कौं कत चाहै।
ऐसी जाकैं चाहि ताकौं कछू न सुहात है॥
प्रेम कौ प्रभाव ऐसौ प्रेम तहाँ नेम कैसो।
सुदर कहत यह प्रेम ही की बात है॥ ४३॥

चौपइया छंद

यह प्रेम भक्ति जाकै घट होई, ताहि कछू न सुहावै।
पुनि भूष तृषा नहिं लागै ताकौं, निस दिन नींद न आवै॥
मुख ऊपरि पीरी स्वासा सीरी, नैनहु नीझर लायौ।
ये प्रगट चिन्ह दीसत हैं ताकें, प्रेम न दुरै दुरायौ॥ ४४॥

दोहा छंद

प्रेम भक्ति यह मैं कही जानैं विरला कोइ।
हृदय कलुषता[1] क्यो रहै जा घटि ऐसी होइ॥ ४५॥

[इस प्रकार प्रेमलक्षणा के लक्षण सुन प्रेममग्न हो शिष्य ने गुरु से पराभक्ति (उत्तमा) के जानने की उत्कंठा प्रगट की, तो गुरु ने उसकी श्रद्धा जानकर पराभक्ति का कहना प्रारंभ किया।]

अथ पराभक्ति[2]। इंदव छंद

सेवक सेव्य मिल्यौ रस पीवत भिन्न नहीं अरु भिन्न सदा हीं।
ज्यौं जल बीच धर्यौ जलपिंड सुपिंडरु नीर जुदे कछु नाहीं॥
ज्यौं दृग मैं पुतरी दृग एक नहीं कछु भिन्न सु भिन्न दिखाहीं।
सुंदर सेवक भाव सदा यह भक्ति परा परमातम माहीं॥ ४६॥

छप्पय छंद

श्रवण बिना धुनि सुनय नैन बिन रूप निहारय।
रसना विन उच्चरय प्रशंसा बहु विस्तारय॥

१—पाप वासना। २—पर शब्द का अर्थ दूर, ऊँचा, सूक्ष्म वा बलवान् का है तथा श्रेष्ठ का भी है।

नृत्य चरन बिन करय, हस्त बिन ताल बजावै ।
अंग बिना मिलि सग बहुत आनद बढ़ावै ॥
बिन सीस नवै तहँ सेव्य कौं सेवक भाव लिये रहै ।
मिलि परमातम सौं आतमा पराभक्ति सु दर कहै ॥५०॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

तोटक छंद

हरि मैं हरिदास विलास करै । हरि सौं कबहूँ न बिछोह परै ॥
हरि अच्चय[1] त्यौं हरिदास सदा । रस पीवन कौं यह भाव जुदा॥५४॥

मनहर छंद

तेजोमय स्वामी तहँ सेवक हू तेजोमय,
तेजोमय चरन कौं तेज सिर नावई ।
तेजोमय सब अग तेजोमय मुखारविंद,
तेजोमय नैंननि निरखि तेज भावई ॥
तेजोमय ब्रह्म की प्रशसा करै तेज मुख,
तेज ही की रसना गुनानुवाद गावई ।
तेजोमय सुदर हू भाव पुनि तेजोमय,
तेजोमय भक्ति कौ तेजोमय पावई ॥ ५५ ॥

---

(३) अष्टांगयोग-निरूपण

[द्वितीयोल्लास में वर्णित मन की शुद्धि के तीन साधनो—भक्ति, योग और साख्यज्ञान—में से भक्ति का वर्णन सुनकर, अब शिष्य योग-

---

१—अच्चर, अखड, नित्य, अमर ।

मार्ग गुरु से पूछता है। उत्तर में गुरु अष्टांगयोग को कहते है। नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, इनके अंतभूर्त प्रकार भी कहते है।]

दश प्रकार के यम

श्रीगुरुरुवाच। छप्पय छंद

प्रथम अहिंसा सत्यहि जानि स्तेय सु त्यागै।
ब्रह्मचर्य दृढ़ अहै क्षमा धृति सौं अनुरागै॥
दया बड़ौ गुन होइ आउर्जव हृदय सु आनै।
मिताहार पुनि करै शौच नीकी विधि जानै॥
ये दश प्रकार के यम कहे हठ प्रदीपिका ग्रंथ महिं।
सो पहिलैं हीं इनकौं अहै चलत योग के पथ महिं॥८॥

(१) अहिंसा के लक्षण। दोहा

मन करि दोष न कीजिए वचन न लावै कर्म।
घात न करिए देह सौं इहै अहिंसा धर्म॥९॥

(२) सत्य के लक्षण। सोरठा

सत्य सु दोइ प्रकार, एक सत्य जो बोलिए।
मिथ्या सब संसार, दूसर सत्य सु ब्रह्म है॥१०॥

(३) अस्तेय के लक्षण। चौपाई

सुनिए शिष्य अबहिं अस्तेयं। चोरी द्वै प्रकार की हेयं।
तनु की चोरी सबहिं बखानैं। मन की चोरी मन ही जानैं॥११॥

बचन सिद्धांत सु सुनय लाज मति दृढ करि राखय।
जाप करय मुख मौन तहाँ लग बचन न भाषय ॥
पुनि होम करै इहि विधि तहाँ जैसी विधि सद्गुरु कहै ।
ये दश प्रकार के नियम हैं भाग्य विना कैसे लहै ॥ २३ ॥

[अब प्रत्येक नियम का लक्षण अलग अलग कहते है ।]

(१) तप के लक्षण । पायका छंद

शब्द स्पर्श रूपं त्यजणं । त्यौं रस गंध नाहीं भजणं ।
इंद्रिय स्वादं ऐसैं हरणं । सो तप जानहुँ नित्य मरण[1] ॥ २४ ॥

(२) संतोष के लक्षण । हंसाल छंद

देह कौ प्रारब्ध[2] आय आपै रहै,
कल्पना छाड़ि निश्चिंत होई ।
पुनि यथालाभ कौं वेद मुनि कहत हैं,
परम संतोष शिष जानि सोई ॥ २५ ॥

(३) आस्तिकता के लक्षण । सवैया छंद

शास्त्र वेद पुरान कहत हैं, शब्द ब्रह्म कौं निश्चय धारि ।
पुनि गुरु संत सुनावत सोई, बार बार शिष ताहि विचारि ॥
होइ कि नाहीं शोच मति आनहिं, अप्रतीति हृदये तैं टारि ।
करि विश्वास प्रतीति आनि उर, यह आस्तिक्य बुद्धि निरधारि॥२६॥

१–नित्य अपने आप–अहंकार–को मारने (दमन) का अभ्यास करना तप है। २–भोग्य कर्म-जो पूर्वकृत कर्मसंस्कार रूप अवश्य भोक्तव्य होता है ।

(४) दान के लच्चण । कुंडलिया छंद

दान कहत हैं उभय विधि, सुनि शिष करहिं प्रवेश ।
एक दान कर[1] दीजिए, एक दान उपदेश ॥
एक दान उपदेश सु तौ परमारथ होई ।
दूसर जल अरु अन्न वसन करि पोपै कोई ॥
पात्र कुपात्र विशेष भली भू निपजय धानं ।
सुदर देखि विचारि उभय विधि कहिए दानं ॥ २७ ॥

(५) पूजा के लच्चण । त्रिभगी छंद

तौ स्वामी संगा, देव अभंगा, निर्मल अंगा, सेवै जू ।
करि भाव अनूपं, पाती पुष्पं, गंधं धूपं, सेवै जू ॥
नहिं कोई आशा, काटै पाशा, इहि विधि दासा, निःकामं ।
शिष ऐसैं जानय, निश्चय आनय, पूजा ठानय, दिन जामं[2] ॥२८॥

(६) सिद्धांत श्रवण के लच्चण । कुंडलिया छंद

वानी बहुत प्रकार है, ताकौ नाहिन अंत ।
जोई अपने काम की, सोइ सुनिए सिद्धंत ॥
सोइ सुनिए सिद्धत सत सब भाषत वोई ।
चित्त आनि कैं ठौर सुनिय नित प्रति जे कोई ॥
यथा हंस पय पिवै रहै ज्यौं कौ त्यौं पानी ।
ऐसैं लेहु विचारि शिष्य बहु विधि है वानी ॥ २९ ॥

१–हाथों से । २–पहर (याम) ।

(७) ह्री के लक्षण। गीता छद

लज्जा करै गुरु सत जन की, तौ सरै सब काज।
तन मन डुलावै नाहिं अपनौं, करै लोकहु लाज॥
लज्जा करै कुल कुटुंब की, लच्छण[1] लगावै नाहिं।
इहिं लाज तें सब काज होई, लाज गहि मन माहिं॥ ३०॥

(८) मति के लक्षण। सवइया छंद।

नाना सुख संसार जनित जे, तिनहि देषि लोलुप[2] नहिं होइ।
स्वर्गादिक की करिय न इच्छा, इहामुत्र[3] त्यागै सुख दोइ॥
पूजा मान बड़ाई आदर, निंदा करै आइकैं कोइ।
या प्रकार मति निश्चल जाकी, सुदर दृढमति कहिए सोइ॥३१॥

(९) जाप के लक्षण। पमगम छंद

जाप नित्यव्रत धारि करै मुख मौन सौं।
येक दोइ घटि काजु अहै मन पौंन सौं॥
ज्यौं अधिकय कछु होइ, बड़ौ अति भाग है।
शिष्य तोहि कहि दीन्ह भलौ यह माग[4] है॥३२॥

(१०) होम के लक्षण। गीता छंद

अब होम उभय प्रकार सुनि शिष, कहौ तोहि बषानि।
इक अग्नि मंहि साकल्य होमैं, सो प्रवृत्ती जांनि॥
जो निवृत्ति यज्ञास[5] होई, ताहि औरन खोम[6]।
सो ज्ञान अग्नि प्रजालि नीकैं, करै इंद्रिय होम॥३३॥

१—दाग। लाछन। २—लीन, रत। ३—इह = यहाँ का। अमुत्र = परलोक का। ४—मार्ग, रास्ता। ५—निवृत्ति—संसारत्यागी जिज्ञासु। ६—पाठातर

[इस तरह नियम भी दशो कह दिए। यहाँ तक यम नियम दो पूर्व अंग योग के हो चुके। अब तीसरा अंग आसन बताते हैं। आसन क्रिया का हठयोग मे बडा माहात्म्य है। आसनों के यथार्थ साधन से वीर्य स्थिर, स्वास्थ्य दृढ, रोगादिक शमन, शरीर निर्मल, निर्विकार, वात-पित्तकफादि प्रकोप रहित होकर प्राणायामादि के उपयोगी बन जाता है। चित्त की शांति में सहायता मिलती है। आसनों की संख्या चौरासी लाख बताई है। परंतु प्रति लाख एक आसन को मुख्य लेकर अततोगत्वा चौरासी आसन छांट रखे है। परंतु इस कलिकाल में इन चौरासी का ज्ञान और साधन भी जीवों को भार ही है। इसलिये सुंदरदासजी ने तो दो आसन—सिद्धासन और पद्मासन—वर्णन कर काम को हलका कर दिया। इन आसनो का प्रकरण हठप्रदीपिका, योगचिंतामणि आदि ग्रंथो में वर्णन किया है। परतु गुरुगम्य है।]

सिद्धासन के लक्षण। मनहर छंद

येडी वाम पाँव की लगावै सींवनि के बीचि,
वाही जोनि ठोर ताहि नीकैं करि जानिए।
तैसैं ही युगति करि विधि सौं भलैं प्रकार,
मेढहू के ऊपर दक्षन पाँव आनिए॥
सरल[1] शरीर दृढ़ इंद्रिय संयम[2] करि,
अचल ऊर्द्ध दृश्य भ्रू[3] के मध्य ठानिएँ।
मोक्ष के कपाट[4] कौं उघारत अवश्यमेव,
सुंदर कहत सिद्ध आसन बखानिएँ॥४०॥

सोम—खोम से अभिप्राय कर्तव्य का प्रतीत होता है।

१—देह को कड़ा न रखै। २—मन सहित इंद्रियो का निरोध विषयो से। ३—भवाँरे। ४—किवाड—परदा, द्वार।

रूपस्थ ध्यान । नाराय छंद

निहारि के त्रिकूट मांहि विस्फुलिंग[१] देखिहै ।
पुनः प्रकाश दीपज्योति दीपमाल पेषिहै ॥
नक्षत्रमाल विज्जुलीप्रभा प्रत्यक्ष होइहै ।
अनंत कोटि सूर चद्र ध्यान मध्य जोइहै ॥ ७९ ॥
मरीचिका[२] -समान सुभ्र और लक्ष जानिए ।
झलामल[३] समस्त विश्व तेज मय बखानिए ॥
समुद्र मध्य डूबिकै उघारि नैन दीजिए ।
दशौ दिशा जलामई प्रत्यक्ष ध्यान कीजिए ॥ ८० ॥

[और रूपातीत ध्यान के वर्णन में एक अधिक रोचक छंद कहा है सो देते हैं—]

रूपातीत ध्यान । पद्धड़ी छंद

इहिं शून्य[४] ध्यान सम और नाहिं ।
उत्कृष्ट ध्यान सब ध्यान मांहि ॥
है शून्याकार जु ब्रह्म आपु ।
दशहूँ दिश पूरण अति अमापु ॥ ८२ ॥
यों करय ध्यान सायोज्य होइ ।
तब लगै समाधि अखड सोइ ॥

१—चिनगारिया जो तेजोमंडल से निकलती हैं। २—किरण प्रकाश-रेखा। ३—चकाचौंध करनेवाला झलाझल तेज। ४—निर्विकल्प-समाधि की अवस्था मे शून्यता की एक दशा होती है। यह निर्गुण वृत्ति की कक्षा है।

पुनि उहै योग निद्रा कहाइ।
सुनि शिष्य देउँ तोकौं बताइ ॥ ८४ ॥

[अंत में योग का आठवाँ अंग समाधि दिखाते हैं। यह वर्णन भी चमत्कारी है, इससे देते हैं।]

समाधि वर्णन। गीतक छंद

सुनि शिष्य अवहि समाधि लच्छण, मुक्त योगी वर्त्तते।
तहँ साध्य साधक एक होई, क्रिया कर्म निवर्त्तते ॥
निरुपाधि नित्य उपाधि-रहित इहै निश्चय आनिए।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ, सा समाधि वखानिए ॥ ८५ ॥
नहिं शीत उष्ण क्षुधा तृषा, नहिं मूर्छा[1] आलस रहै।
नहिं जागरं नहिं सुप्त सुषुपति, तत्पदं योगी लहै ॥
इम नीर महि गरि जाइ लवनं, येकमेक हि जानिए।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ, सा समाधि वखानिए ॥ ८६ ॥
नहिं हर्ष शोक न सु:ख[2] दु:ख, नहीं मान अमानयो।
पुनि मनौ इंद्रिय वृत्य नष्टं, गतं ज्ञान अज्ञानयो[3] ॥
नहिं जाति कुल नहिं वर्ण आश्रम, जीव ब्रह्म न जानिए।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ, सा समाधि वखानिए ॥ ८७ ।
नहिं शब्द सपरश रूप रस नहिं गंध जानय रंच हूँ।
नहिं काल कर्म स्वभाव है नहिं उदय अस्त प्रपंच हूँ ॥

१—मूरछा ऐसा पढ़ने से छंद ठीक होगा। २—छंद के निर्वाह कारण ऐसा पढना होगा। ३—आमानयो, अज्ञानयो—संस्कृत [illegible] का अपभ्रंश।

इमि चीर चीरे आज्य आज्ये जले जलहि मिलानिए।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि वखानिए॥ ८८॥
नहिं देव दैत्य पिशाच राक्षस भूत प्रेत न सचरै।
नहि पवन पानी अग्नि भय पुनि सर्प सिंघहिं ना डरै॥
नहिं यत्र मत्र न शस्त्र लागहिं यह अवस्था गानिए[1]।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि वखानिए॥ ८९॥

[इस प्रकार अष्टाग योग साधन करनेवाला युक्त योगी होता है और ब्रह्म को पाता है। अब चतुर्थोल्लास में साख्य के ज्ञान का वर्णन करते हैं।]

---

(४) सांख्यनिरूपण

[शिष्य ने अष्टाग योग का वर्णन सुनकर गुरु को कृतज्ञता प्रकट करके, अब साख्य ज्ञान को अपने भ्रमध्वस के निमित्त गुरु से जानने की प्रार्थना की। तो गुरु ने कृपा कर साख्य का सार कहना प्रारभ किया।]

श्रीगुरुरुवाच। दुमिला छद

सुनि शिष्य यह मत सांख्यहि कौ,
जु अनातम आतम[2] भिन्न करै।
अन-आतम है जड़ रूप लिए नित,
आतम चेतन भाव धरै॥

१–गान से क्रिया—गाइए के अर्थ में। २–यह आत्म और अनात्म—जड और चैतन्य—का भेद साख्य ही मे नहीं वेदात मे भी वैसा ही वर्णित है। भेद यही है कि साख्य में जो प्रधान (प्रकृति) की प्रधानता है उसी को वेदात मे अनुचित प्रतिपादन किया है क्योंकि वेदांत में प्रकृति मिथ्या और चेतन ही मुख्य है।

अन-आतम सूक्षम थूल सदा,
पुनि आतम सूक्षम थूल परै।
तिनकौ निरनै अव तोहि कहौं,
जिनि जानत संशय शोक हरै ॥४॥

कुंडलिया छंद

पुरुष प्रकृतिमय जगत है ब्रह्मा कीट पर्यंत।
चतुर्खानि[1] लौं सृष्टि सब शिव शक्ती[२] वर्तंत ॥
शिव शक्ती वर्तंत अंत दहुँवनि को नाहीं।
एक आहि चिद्रूप एक जड़ दीसत छाँहीं[३] ॥
चेतनि सदा अलिप्त रहै जड सौं नित कुरुषं[४]।
शिष्य समुझि यह भेद भिन्न करि जानहु पुरुषं ॥ ५ ॥

[यह सुनकर शिष्य ने पूछा कि आपने पुरुष को तो चैतन्य बताया और प्रकृति को जड और पुरुष को प्रकृति से भिन्न भी समझने को कहा, तो फिर यह जगत् कैसे पैदा हुआ। गुरु उत्तर देते है]

श्रीगुरुरुवाच। छप्पय छंद

पुरुष प्रकृति सयोग जगत उपजत है ऐसै।
रवि दर्पण[५] दृष्टांत अग्नि उपजत है तैसै ॥

१—जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज। २—ब्रह्म = शिव, प्रकृति = शक्ति (पार्वती)। ३—"छायातपौ"—श्रुति। ४—कु = पृथ्वी अर्थात् स्थूल पदार्थ, और रु = शब्द वा सयोग, ख = आकाश अर्थात् अखड सर्वस्थूलव्यापक सूक्ष्म आकाशतत्त्व। जैसे सूक्ष्म आकाश सब स्थूल में व्यापक है और सर्व शब्द का आधार और कारण है और कार्य्य से अलिप्त है। ५—आतशी शीशे (लैंस) में सूर्य की किरण के केंद्र-समुदाय पर कोयला रूई आदि पदार्थ जलते हैं।

सुई होहि चैतन्य यथा चंवक[1] के संगा ।
यथा पवन संयोग उदधि मँहि उठहिं तरंगा ॥
अरु यथा सूर संयोग पुनि चक्षु[2] रूप कों ग्रहत हैं ।
यों जड़ चेतन संयोग तें सृष्टि उपजती कहत हैं ॥७॥

[अब प्रकृति पुरुष से कौन कौन तत्त्व पहिले पीछे किस क्रम से उत्पन्न हुए सोही सृष्टि-क्रम शिष्य पूछता है और गुरु उत्तर देते हैं]

श्रीगुरुरुवाच । दोहा छंद

पुरुष प्रकृति संयोग तै प्रथम भयो महतत्व[3] ।
अहंकार तातैं प्रगट त्रिविध सुतम रज सत्व ॥ ८ ॥

गीता छंद

तिहिं तामसाहंकार तें दश तत्व उपजे आइ ।
ते पंच विषय रु पंच भूतनि कहौं शिष्य सुनाइ ॥
ये शब्द सपरस रूप रस अरु गंध विषय सुजानि ।
पुनि व्योम मारुत तेज जल चिति महाभूत[4] बखानि ॥१०॥

(अब इन दसो के गुण कहते हैं)

छप्पय छंद

शब्द गुणो आकाश एक गुण कहियत जा महि ।
शब्द स्पर्श जु वायु उभय गुण लहियहि तामहिं ॥

१–चंबुक (मेगनेट) लोहे के तार आदि को आकर्षण कर उनमें गति उत्पन्न करता है । २–तेज के अभाव में आँख पदार्थों को नहीं देख सकती वरन तेज की साक्षी से पदार्थ साक्षात् होते हैं । ३–बुद्धि—प्रज्ञा । ४–पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश (पंच महाभूत)।

शब्द स्पर्श जु रूप तीन गुण पावक माहीं।
शब्द स्पर्श जु रूप रसं जल चहुँ गुण आहीं॥
पुनि शब्द स्पर्श जु रूप रस गंध पंचगुण अवनि है।
शिष्य इहै अनुक्रम जानि तूं सांख्य सु मत ऐसै कहै॥१२॥

अथ पंचतत्त्व स्वभाव। चौपइया छंद

यह कठिन स्वभाव अवनि को कहिए द्रावक उदकहि जानहुँ।
पुनि उष्ण सुभाव अग्नि महिं वर्त्तय चलन पवन पहिचानहुँ॥
आकाश सुभाव सुथिर कहियत है पुनि अवकाश लषावै।
ये पंचतत्व के पंच सुभावहि सद्गुरु विना[1] न पावै॥१३॥

राजसाहंकार। चौपइया छंद

अथ राजसाहंकार तें उपजी दश इंद्रिय सु बताऊँ।
पुनि पंच वायु तिनकैं समीप ही यह ब्योरौ समुझाऊँ॥
अरु भिन्न भिन्न हैं क्रिया सु तिनकी भिन्न भिन्न है नामं।
सुनि शिष्य कहौं नीकैं करि तौसौं ज्यौं पावै विश्रामं[2]॥१४॥

छप्पय छंद

श्रवण तुचा दृग घ्राण रसन पुनि तिनिकै संगा।
ज्ञान सु इंद्रिय पंच भई अप अपने रंगा॥
वाक्य पानि[3] अरु पाद उपस्थ गुदा हू कहिए।
कर्मसु इंद्रिय पंच भली विधि जाने रहिए॥

१—तत्वों के गुणों को योग द्वारा पहिचानना गुरु और साधन गम्य है। यथा स्वरोदय साधन से तत्वों के गुण और क्रिया आदि की पहिचान प्रसिद्ध है। २—इस तत्व-ज्ञान से विश्राम अर्थात् चित्त की शांति होती है सब संशय निवृत्त हो जाता है। ३—पाणि = हाथ।

सुनि प्रानापान समान हूं व्यानोदान सु वायु हैं।
दश पंच रजोगुण तें भए क्रिया शक्ति कों पायु[1] हैं ॥१५॥

सात्विकाहकार। गीतक छंद

अथ सात्विकाहंकार तैं मन बुद्धि चित्त अह भये।
पुनि इंद्रियन के अधिष्ठाता[2] देवता बहु विधि ठये॥
दिग्पाल मारुत[3] अर्क[4] अश्विनि[5] वरुण जानसु इंद्रिय।
पुनि अग्नि इंद्र उपेंद्र मित्र जु प्रजापति कर्मेंद्रियं[6] ॥१६॥

दोहा छंद

शशि विधि अरु चेत्रज्ञ पुनि रुद्र सहित पहिचानि।
भये चतुर्दश[7] देवता ज्ञानशक्ति यह जानि॥ १७॥

[तीनों गुणों से सूक्ष्म और स्थूल प्रकृति की उत्पत्ति कही जाती है तथा सूक्ष्म और स्थूल कारण शरीर से उत्पन्न है। स्थूल देह में प्रधान पच महाभूत पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश हैं। इनका पचीकरण शास्त्रों में विस्तार से वर्णित है। यथा—अस्थि में पृथ्वीतत्व, त्वचा में जलतत्व, मांस में अग्नितत्व, नाड़ियों मे वायुतत्व और रोमावली में आकाशतत्व प्रधान है इत्यादि अन्य शरीरांशों के विषय में भी कहा है। और दूसरे प्रकार से जैसे—गुद कर्मेंद्रिय और नासा ज्ञानेंद्रिय पृथ्वीतत्व

१—पाई जाती है। अथवा क्रिया और शक्ति का पाया (स्तंभ) है। २—प्रत्येक इंद्रिय का एक देवता माना गया है सो कोई कल्पित बात नहीं है। जो इंद्रियों की क्रिया और स्वभाव पर एकांत विचार करते हैं उनको परमात्मा की विचित्र शक्तियां वहाँ निश्चय प्रतीत होती हैं। शक्ति ही देवता हैं। ३—पवन। ४—सूर्य्य। ५—अश्विनीकुमार। ६—वाक्य आदि पच कर्मेंद्रिय के क्रमश देवता पांच ये हैं जो कहे गए। ७—मन आदि चार देवता शशि आदि हैं।

से; चरण कर्मेंद्रिय और लोचन ज्ञानेंद्रिय ये दोनों तेज (अग्नि) से हैं इत्यादि। फिर ज्ञानेंद्रिय आदि त्रिपुटियाँ कही हैं—यथा श्रोत्र तो अध्यात्म और शब्द अधिभूत तथा दिशा इसका देवता (अधिदैव) त्वचा अध्यात्म, स्पर्श अधिभूत और वायु इसका देवता—इत्यादि। इसी तरह कर्मेंद्रिय त्रिपुटी कही है। यथा जिह्वा तो अध्यात्म, वचन अधिभूत और अग्नि इसका देवता इत्यादि। आगे अहंकार अर्थात् अंतःकरण त्रिपुटी को बताया है—यथा मन अध्यात्म, संकल्प अधिभूत और चंद्रमा इसका देवता है। इत्यादि। अनंतर स्थूल सूक्ष्म (लिंग शरीर स्थूल शरीर) के तत्वों की गणना तथा संख्या को कहते हैं।]

लिंग शरीर। चौपाई छंद

नव तत्वनि कौ लिंग प्रबंधा। शब्द स्पर्श रूप रस गंधा॥
मन अरु बुद्धि चित्त अहँकारा। ये नव तत्व किए निर्द्धारा॥४५॥

दोहा छंद

पंद्रह तत्व स्थूल वपु, नव तत्वनि कौं लिंग।
इन चौवीसहुँ तत्त्व को, वहु विधि कह्यो प्रसंग॥४६॥

चौपइया छंद

शिष्य ये चौवीस तत्व जड़ जानहु, तिनके चेत्र सु कहिए।
पुनि चेतन एक और पच्चीसहिं, सांख्यहिं मत सौं लहिए॥
(सो) है चेत्रज्ञ सर्व कौ प्रेरक, पुनि साची वहु जानहु।
(यह) प्रकृति पुरुष कौ कीयौ निर्णय सद्गुरु कहै सु मानहु॥४७॥

[उपरांत चारो अवस्थाओं का वर्णन करते हैं—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीया। प्रत्येक अवस्था के संघात (जिन तत्वसमूह से उसकी बनावट है), गुण विशेष, अवस्था का अभिमानी, देवता, भोग्य, स्थान, वाणीभेद शरीर भेद, इन संज्ञाओं से विवरण किया

पुनि प्रानापान समान हूं व्यानोदान सु वायु हैं।
दश पंच रजोगुण तें भए क्रिया शक्ति कौं पायु[1] हैं ॥१५॥

सात्विकाहंकार। गीतक छंद

अथ सात्विकाहंकार तैं मन बुद्धि चित्त अह भये।
पुनि इंद्रियन के अधिष्ठाता[2] देवता बहु विधि ठये॥
दिग्पाल मारुत[3] अर्क[4] अश्विनि[5] वरुण जानसु इंद्रिय।
पुनि अग्नि इंद्र उपेंद्र मित्र जु प्रजापति कर्मेंद्रियं[6] ॥१६॥

दोहा छंद

शशि विधि अरु चेत्रज्ञ पुनि रुद्र सहित पहिचानि।
भये चतुर्दश[7] देवता ज्ञानशक्ति यह जानि॥ १७॥

[तीनों गुणों से सूक्ष्म और स्थूल प्रकृति की उत्पत्ति कही जाती है तथा सूक्ष्म और स्थूल कारण शरीर से उत्पन्न है। स्थूल देह में प्रधान पंच महाभूत पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश है। इनका पंचीकरण शास्त्रों में विस्तार से वर्णित है। यथा—अस्थि में पृथ्वीतत्व, त्वचा में जलतत्व, मांस में अग्नितत्व, नाडियों में वायुतत्व और रोमावली में आकाशतत्व प्रधान हैं इत्यादि अन्य शरीरांशों के विषय में भी कहा है। और दूसरे प्रकार से जैसे—गुद कर्मेंद्रिय और नासा ज्ञानेंद्रिय पृथ्वीतत्व

१—पाई जाती है। अथवा क्रिया और शक्ति का पाया (स्तंभ) है। २—प्रत्येक इंद्रिय का एक देवता माना गया है सो कोई कल्पित बात नहीं है। जो इंद्रियों की क्रिया और स्वभाव पर एकांत विचार करते हैं उनको परमात्मा की विचित्र शक्तियां वहां निश्चय प्रतीत होती हैं। शक्ति ही देवता हैं। ३—पवन। ४—सूर्य्य। ५—अश्विनीकुमार। ६—वाक्य आदि पंच कर्मेंद्रिय के क्रमश देवता पांच ये हैं जो कहे गए। ७—मन आदि चार देवता शशि आदि हैं।

जाग्रत् अवस्था । चंपक छंद

मिलि सबहिन को संघाता । यह जाग्रदवस्था ताता ॥५४॥
सो आहि विश्व अभिमानी । तहँ ब्रह्मादेव प्रमानी ॥
है राजस गुण अधिकारा । पुनि भोगस्थूल पसारा ॥५५॥
सो कहिय नयन स्थानं । वाणी वैखर्या जानं ॥
यह जाग्रदवस्था निर्णय । सुनि शिष्य सुप्र अब वर्णय ॥५६॥

स्वप्न अवस्था । चौपइया छंद

दशवायु प्राण नागादिक कहियहि, पंचसु इंद्रिय ज्ञानं ।
पुनि पंचकर्म इंद्रिय जे आहीं, तिनकी वृत्य बखानं ॥
अरु पंच विषय शब्दादिक जानहु, अंतहकरण चतुष्टय ।
पुनि देव चतुर्दश हैं तिन माँही, सब इंद्रिय संतुष्टय ॥५७॥
यह कालहु कर्म स्वभाव सकल मिलि, लिंग शरीर कहावै ।
शिष्य नाम हिरण्यगर्भ पुनि ताकौ, तेजोमय तनु पावै ।
अब स्वप्न अवस्था याकौं कहिए सो तैजस अभिमानी ।
तहँ सत गुण विष्णु देवता जानहु भोग वासना ठानी ॥५८॥
पुनि कंठस्थान मध्यमा वाचा जीवात्मा समेतं ।
शिष्य सुप्न अवस्था कीयौ निर्णय समुझि देखि यह हेतं ॥५९॥

सुषुप्ति अवस्था । छप्पय छंद

सुषुप्ति कारण देह तत्व सब ही तहँ लीनं ।
लिंग शरीर न रहै घोर निद्रा वसि कीनं ॥
प्राज्ञ अभिमानीजु, अव्याकृत तमगुण रूपा ।
ईश्वर तहँ देवता, भोग आनंद स्वरूपा ॥

है। यह क्रम सांख्य और वेदांत दोनों ही के ग्रंथों में आता है। सो सुदरदासजी ने बड़े ही विचार और अनुभव से स्पष्ट करके लिखा है।

(१) जाग्रत अवस्था में—व्यष्टि मे स्थूल देह, समष्टि में विराट। देह के संघात रूप पंचतत्व, पंचज्ञानेंद्रिय, पचकर्मेंद्रिय, पच विषय जिनके हेतु रूप पंचतन्मात्रा है, मन, बुद्धि, चित्त अहकार, और उन सबके चौदह देवता, प्राणादि पच और नागादि पच यो दस वायु, सत्व, रज, तम तीनों गुण, काल कर्म स्वभाव, इन सबके साथ जीव सचेत रहकर लिंग शरीर रूप कर्त्ता धर्त्ता रहता है। इसमें विश्व अभिमानी और ब्रह्मा देवता, रजोगुण प्रधान, स्थूल भोग्य होता है, नयन को स्थान कहा है, और वैखरी वाणी वर्त्तती है।

(२) स्वप्नावस्था में—संघात तो उपयुक्त है, परंतु लिंग शरीर की प्रधानता से है। समष्टि में वही हिरण्यगर्भ नाम कहाता है। तैजस अभिमानी होता है। सतोगुण प्रधान और विष्णु देवता। वासना भोग्य होती है। कंठ इसका स्थान कहा जाता है, मध्यमा वाणी।

(३) सुषुप्ति अवस्था में—सब तत्व लीन हो जाते है, लिंग शरीर भी नहीं केवल कारण शरीर ही तत्व रहता है। यह गाढ निद्रा है। प्राज्ञ अभिमानी होता है। अव्याकृत तमो गुण प्रधान। शिव देवता। आनंद स्वरूप भोग्य होता है। पश्यती वाणी और हृदय स्थान होता है।

(४) तुरीयावस्था में—चेतन तत्व (कारण शरीर भी लय) हो जाता है। कोई गुण भी नहीं वर्तता। कोई उपाधि या वृत्ति भी नहीं। स्वस्वरूप अभिमानी होता है। सोऽहं देवता और परमानंद भोग्य, मूर्द्धा (शिर) स्थान और परावाणी रहते हैं। इन चारों अवस्थाओ को चार छंदों और उनके समाहार को एक इंदव छंद में कह दिया है। सो ही देते है।]

जाग्रत् अवस्था । चंपक छंद

मिलि सबहिन को संघाता । यह जाग्रदवस्था ताता ॥५४॥
सो आहि विश्व अभिमानी । तहँ ब्रह्मादेव प्रमानी ॥
है राजस गुण अधिकारा । पुनि भोगस्थूल पसारा ॥५५॥
सो कहिय नयन स्थानं । वाणी वैखर्या जानं ॥
यह जाग्रदवस्था निर्णय । सुनि शिष्य सुप्न अब वर्णय ॥५६॥

स्वप्न अवस्था । चौपइया छंद

दशवायु प्राण नागादिक कहियहि, पंचसु इंद्रिय ज्ञानं ।
पुनि पंचकर्म इंद्रिय जे आहीं, तिनकी वृत्य बखानं ॥
अरु पंच विषय शब्दादिक जानहु, अंतहकरण चतुष्टय ।
पुनि देव चतुर्दश हैं तिन माँही, सब इंद्रिय संतुष्टय ॥५७॥
यह कालहु कर्म स्वभाव सकल मिलि, लिंग शरीर कहावै ।
शिष्य नाम हिरण्यगर्भ पुनि ताकौ, तेजोमय तनु पावै ।
अब स्वप्न अवस्था याकौं कहिए सो तैजस अभिमानी ।
तहँ सत गुण विष्णु देवता जानहु भोग वासना ठानी ॥५८॥
पुनि कंठस्थान मध्यमा वाचा जीवात्मा समेतं ।
शिष्य सुप्न अवस्था कीयौ निर्णय समुझि देखि यह हेतं ॥५९॥

सुषुप्ति अवस्था । छप्पय छंद

सुषुप्ति कारण देह तत्व सब ही तहँ लीनं ।
लिंग शरीर न रहै घोर निद्रा वसि कीनं ॥
प्राज्ञ अभिमानीजु, अव्याकृत तमगुण रूपा ।
ईश्वर तहँ देवता, भोग आनंद स्वरूपा ॥

पुनि पश्यंति वाणी गुप्त हृदय स्थानक जानिए।
यह कहत जु सुषुपति अवस्था शिष्य सत्य करि मानिए ॥६०॥

तुरीया अवस्था। चर्पट छंद

तुर्यावस्था चेतन तत्व स्वस्वरूप अभिमानीयत्व।
परमानंदे भोगं कहिय, सोहं देवं सदा तह लहिय ॥६१॥
सर्वोपाधि विवर्जित मुक्तं त्रिगुणातीत साची उक्तं।
मूर्द्धनि स्थिति पुरा पुनि वाणी, तुर्यावस्था निश्चय जांणी ॥६२॥

चारों अवस्थाओं का समाहार। इंदव छंद

जाग्रत रूप लिये सब तत्वनि, इंद्रिय द्वार करै व्यवहारो।
स्वप्न शरीर भ्रमै नव तत्व कौ, मानत है सुख दुःख अपारो॥
लीन सबै गुन होत सुषोपति जानै नहीं कछु घोर अँधारो।
तीन[1] कौ साची रही तुर्यातत सुंदर सोई स्वरूप हमारो ॥६३॥

(५) अद्वैतनिरूपण

[भक्ति, योग और सांख्य इन तीनों के सिद्धांत सुन, तथा सांख्य में तुरीया अवस्था तक जान, अथच तुरीयातीत का संकेत पाकर, शिष्य की रुचि उसही के जानने और अद्वैत के वर्णन को सुनने की हुई। तो उसने कृतज्ञता और नम्रतापूर्वक गुरुदेव से प्रार्थना की। गुरु ने प्रसन्न हो उसकी प्रार्थना मान, कहना प्रारंभ किया। शिष्य के वेदांत परिपाटी से श्रवण मनन निदिध्यासन किए हुए और ज्ञाननिष्ठा में परायण होने से, वह अधिकारी हो चुका है। इसी से गुरु प्रसन्नता-पूर्वक उसे महाज्ञान का आदेश देते हैं।]

१—तीनों अवस्थाओं—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—का ज्ञाता और वर्त्तनेवाला।

श्रीगुरुरुवाच । दोहा छंद

तुरिया साधन ब्रह्म कौ अहं ब्रह्म यौं होइ ।
तुरियातीतहि[1] अनभवै हूतूं रहै न कोइ ॥७॥

इंदव छंद

जाग्रत तौ नहिं मेरे विषै कछु, स्वप्नसु तौ नहि मेरे विषै है ।
नाहिं सुषोपति मेरे विषे पुनि, विश्वहु तैजस प्राज्ञ पपै[2] है ॥
मेरे विषै तुरिया नहिं दीसत, याही तैं मेरौ स्वरूप अपै[3] है ।
दूर तें दूर परैं तें परैं अति सुंदर कोउ न मोहि लपै[4] है ॥८॥

[शिष्य ने जब सुना कि ब्रह्म तो अति 'परे' है तो उसे सन्देह हुआ और उसने गुरु से पूछा कि 'उरै' क्या है ? गुरु इस ही का उत्तर देते है । और इस ही को विस्तार से समझाने के लिये प्रागभाव, अन्योऽन्याभाव, प्रध्वंसाभाव और अत्यंताभाव का समावेश करते है ।]

श्रीगुरुरुवाच । दोहा छंद

उरै परै कछु वै नहीं वस्तु रही भरपूर ।
चतुरभाव तोसौं कहौं तब भ्रम ह्वैहै दूर ॥१०॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

चतुरभाव की सूचनिका । सवइया छंद

मृतिका मांहिन अभाव घटनि कौ, प्रागभाव यह जानि रहाय ।
ता मृतिका के भाजन बहु विधि, अन्यो अन्या भाव गहाय ॥

१–यह तुरीय नाम चतुर्थ अवस्था से भी आगे जो निर्गुण और निर्विकल्प शुद्ध चेतन ब्रह्म है वही अद्वैत अनिर्वचनीय है । यह महा वेदांत का कथन है । २–पपैं = पार्श्व—इधर उधर की ओर । अर्थात् पृथक् । ३–अक्षय, अर्थात् क्षयहीन, सब विकार वा गुण से रहित । ४–क्योंकि बुद्धि से जानने योग्य नहीं ।

पुनि पश्यंति वाणी गुप्त हृदय स्थानक जानिए।
यह कहत जु सुषुपति अवस्था शिष्य सत्य करि मानिए ॥६०॥

तुरीया अवस्था। चर्पट छंद

तुर्यावस्था चेतन तत्व स्वस्वरूप अभिमानीयत्वं।
परमानंदे भोगं कहिय, सोहं देवं सदा तह लहिय ॥६१॥
सर्वोपाधि विवर्जित मुक्तं त्रिगुणातीत साक्षी उक्तं।
मूर्द्धनि स्थिति पुरा पुनि वाणी, तुर्यावस्था निश्चय जाणी ॥६२॥

चारों अवस्थाओं का समाहार। इंदव छंद

जाग्रत रूप लिये सब तत्वनि, इंद्रिय द्वार करै व्यवहारो।
स्वप्न शरीर भ्रमै नव तत्व कौ, मानत है सुख दुःख अपारो॥
लीन सबै गुन होत सुषोपति जानै नहीं कछु घोर अँधारो।
तीन[1] कौ साक्षी रही तुर्यातित सुंदर सोई स्वरूप हमारो ॥६३॥

(५) अद्वैतनिरूपण

[भक्ति, योग और सांख्य इन तीनो के सिद्धांत सुन, तथा सांख्य में तुरीया अवस्था तक जान, अथच तुरीयातीत का संकेत पाकर, शिष्य की रुचि उसही के जानने और अद्वैत के वर्णन को सुनने की हुई। तो उसने कृतज्ञता और नम्रतापूर्वक गुरुदेव से प्रार्थना की। गुरु ने प्रसन्न हो उसकी प्रार्थना मान, कहना प्रारंभ किया। शिष्य के वेदांत परिपाटी से श्रवण मनन निदिध्यासन किए हुए और ज्ञाननिष्ठा में परायण होने से, वह अधिकारी हो चुका है। इसी से गुरु प्रसन्नता-पूर्वक उसे महाज्ञान का आदेश देते हैं।]

१—तीनो अवस्थाओ—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—का ज्ञाता और वर्त्तनेवाला।

श्रीगुरुरुवाच । दोहा छंद

तुरिया साधन ब्रह्म कौ अह ब्रह्म यौं होइ ।
तुरियातीतहि[1] अनभवे हूतूं रहै न कोइ ॥७॥

इंदव छंद

जाग्रत तौ नहिं मेरे विपै कछु, स्वप्नसु तौ नहि मेरे विपै है ।
नाहि सुपोपति मेरे विपे पुनि, विश्वहु तैजस पाज्ञ पपे[2] है ॥
मेरे विपै तुरिया नहिं दीसत, याही तैं मेरौ स्वरूप अपै[3] है ।
दूर तें दूर परें तें परें अति सुंदर कोउ न मोहि लपै[4] है ॥८॥

[शिष्य ने जब सुना कि ब्रह्म तो अति 'परे' है तो उसे सन्देह हुआ और उसने गुरु से पूछा कि 'उरे' क्या है ? गुरु उस ही का उत्तर देते है । और इस ही को विस्तार से समझाने के लिये प्रागभाव, अन्योऽन्याभाव, प्रध्वंसाभाव और अत्यंताभाव का समावेश करते हैं ।]

श्रीगुरुरुवाच । दोहा छंद

उरै परै कछु वै नहीं वस्तु रही भरपूर ।
चतुरभाव तोसौं कहौं तव भ्रम ह्वैहै दूर ॥१०॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

चतुरभाव की सूचनिका । सवइया छंद

मृतिका मांहिन अभाव घटनि कौ, प्रागभाव यह जानि रहाय ।
ता मृतिका के भाजन वहु विधि, अन्यो अन्या भाव गहाय ॥

१—यह तुरीय नाम चतुर्थ अवस्था से भी आगे जो निर्गुण और निर्विकल्प शुद्ध चेतन ब्रह्म है वही अद्वैत अनिर्वचनीय है । यह महा वेदांत का कथन है । २—पर्षे = पार्श्व—इधर उधर की ओर । अर्थात् पृथक् । ३—अक्षय, अर्थात् क्षयहीन, सब विकार वा गुण से रहित । ४—क्योंकि बुद्धि से जानने योग्य नहीं ।

पुनि पश्यंति वाणी गुप्त हृदय स्थानक जानिए।
यह कहत जु सुषुपति अवस्था शिष्य सत्य करि मानिए ॥६०॥

तुरीया अवस्था। चर्पट छंद

तुर्यावस्था चेतन तत्व स्वस्वरूप अभिमानीयत्व।
परमानंदे भोगं कहियं, सोहं देवं सदा तह लहियं ॥६१॥
सर्वोपाधि विवर्जित मुक्तं त्रिगुणातीत साक्षी उक्त।
मूर्द्धनि स्थिति पुरा पुनि वाणी, तुर्यावस्था निश्चय जाणी ॥६२॥

चारों अवस्थाओं का समाहार। इंदव छंद

जाग्रत रूप लिये सब तत्वनि, इंद्रिय द्वार करै व्यवहारो।
स्वप्न शरीर भ्रमै नव तत्व कौ, मानत है सुख दुःख अपारो॥
लीन सबै गुन होत सुषोपति जानै नहीं कछु घोर अँधारो।
तीन[1] कौ साक्षी रही तुर्यातत सुंदर सोई स्वरूप हमारो ॥६३॥

(५) अद्वैतनिरूपण

[भक्ति, योग और सांख्य इन तीनो के सिद्धांत सुन, तथा सांख्य में तुरीया अवस्था तक जान, अथच तुरीयातीत का संकेत पाकर, शिष्य की रुचि उसही के जानने और अद्वैत के वर्णन को सुनने की हुई। तो उसने कृतज्ञता और नम्रतापूर्वक गुरुदेव से प्रार्थना की। गुरु ने प्रसन्न हो उसकी प्रार्थना मान, कहना प्रारंभ किया। शिष्य के वेदांत परिपाटी से श्रवण मनन निदिध्यासन किए हुए और ज्ञाननिष्ठा में परायण होने से, वह अधिकारी हो चुका है। इसी से गुरु प्रसन्नता-पूर्वक उसे महाज्ञान का आदेश देते है।]

१—तीनो अवस्थाओ—जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—का ज्ञाता और वर्त्तनेवाला।

श्रीगुरुरुवाच । दोहा छंद

तुरिया साधन ब्रह्म कौ अह ब्रह्म यौं होइ।
तुरियातीतहि[१] अनभवै हूंतूं रहै न कोइ ॥७॥

इंदव छंद

जाग्रत तौ नहिं मेरे विषै कछु, स्वप्नसु तौ नहिं मेरे विषै है।
नाहि सुषोपति मेरे विषै पुनि, विश्वहु तैजस प्राज्ञ पषै[२] है॥
मेरे विषै तुरिया नहिं दीसत, याही तें मेरौ स्वरूप अपै[३] है।
दूर तें दूर परे तें परै अति सुंदर कोउ न मोहि लपै[४] है।।८॥

[शिष्य ने जब सुना कि ब्रह्म तो अति 'परे' है तो उसे संदेह हुआ और उसने गुरु से पूछा कि 'उरे' क्या है ? गुरु उस ही का उत्तर देते हैं। और इस ही को विस्तार से समझाने के लिये प्रागभाव, अन्योऽन्याभाव, प्रध्वंसाभाव और अत्यंताभाव का समावेश करते हैं।]

श्रीगुरुरुवाच । दोहा छंद

उरै परै कछु वै नहीं वस्तु रही भरपूर।
चतुरभाव तोसौं कहौं तब भ्रम ह्वैहै दूर ॥१०॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

चतुरभाव की सूचनिका । सवइया छंद

मृतिका मांहिन अभाव घटनि कौ, प्रागभाव यह जानि रहाय।
ता मृतिका के भाजन बहु विधि, अन्यो अन्या भाव गहाय॥

१—यह तुरीय नाम चतुर्थ अवस्था से भी आगे जो निर्गुण और निर्विकल्प शुद्ध चेतन ब्रह्म है वही अद्वैत अनिर्वचनीय है। यह महा वेदांत का कथन है। २—पषै=पार्श्व—इधर उधर की ओर। अर्थात् पृथक्। ३—अक्षय, अर्थात् क्षयहीन, सब विकार वा गुण से रहित। ४—क्योंकि बुद्धि से जानने योग्य नहीं।

मृतिका मध्य लोनता सवकी, यह प्रध्वंसा भाव लहाय।
न कछु भयौ न अब कछु ह्वै है, यह अत्यंताभाव कहाय॥ १३॥

प्रागभाव[1] वर्णन। मनहर छंद

पहिलैं जब कछुव न होतौ प्रपंच यह,
एक ही अखंड ब्रह्म विश्व को अभाव है।
जैसे काठ पाहन सुलभ अति देखियत,
तिन मैं तौ नहीं कछु पूतरी वनाव है॥
जैसे कंचन की रासि कंचन विसेषियत,
ताहू मध्य नहीं कछु भूषण प्रभाव है।
जैसे नभ माहि पुनि बादर न जानियत,
सुदर कहत शिष्य इहै प्रागभाव है॥ १४॥

अन्योऽन्या[2]भाव। सवइया छद

एक भूमि तै भाजन बहु विधि, कंडा करवा हँडिया माट।
चपनी ढकन सराव गगरिया, कलश कहालो नाना घाट॥
नाम रूप गुन जूवा[3] जूवा, पुनि व्यवहार भिन्न ही ठाट।
सुंदर कहत शिष्य सुनि ऐसे अन्यो अन्या भाव विराट॥१५॥

[इसी प्रकार ताम्र, लोहा, कपास (रुई), वृत्त, जल, अग्नि, वायु, आकाश इतने पदार्थों से बने हुए विकारों (वस्तुओं) का वर्णन रुचिर छंदों में किया है।]

१—निमित्त कारण वा समवाय कारण से कार्य्य के प्रगट होने से पूर्व जो कार्य्य का न होना। २—अनेक कार्य्यों वा एक-कारणजनित पदार्थों का परस्पर एक दूसरे में न होने की प्रतीति। ३—जुदा जुदा—पृथक् पृथक।

प्रध्वंसाभाव[1] । चौपइया छंद

यह भूमि विकार भूमि महि लीन, जलविकार जल माँही ।
पुनि तेज विकार तेज महि मिलिहै, वायु वायु मिलि जाँही ॥
आकाश विकार मिलै आकाशहि, कारण रहै निदानं ।
शिष्य यह प्रध्वंसाभाव सु कहिए, जौ है सो ठहरानं ॥ २३ ॥

अत्यंताभाव । मनहर छंद

इच्छाही न प्रकृति न महत्तत्व अहंकार,
त्रिगुण न शब्दादि व्योम आदि कोइ है ।
श्रवणादि वचनादि देवता न मन आदि,
सूक्ष्म न थूल पुनि एक हो न होइ है ॥
स्वेदज न अंडज जरायुज न उद्भिज,
पशु ही न पक्षी ही पुरुष ही न जोइ है ।
सुंदर कहत ब्रह्म ज्यौं कौ त्यौं ही देखियत,
न तौ कछू भयौ अब है न कछु होइ है ॥२५॥

छप्पय छंद

कहत शशा कै शृंग आँखि किनहूँ नहिं देखे ।
बहुरि कुसम आकाश सु तौ काहू नहिं पेखे ॥

१—बने बनाए कार्य्य वा पदार्थ, आकार वा रूप में बिगड़ जायँ, टूट फूट जायँ और अपने जनक समवाय वा निमित्त के रूप वा द्रव्य में परिवर्त्तित हो जायँ । सर्व प्रपच एक ही मूल कारण मे ऐसा लय हो जाय कि उस एक ही कारण को छोड़ और कुछ न रहे । यह अवस्था लय के अतिरिक्त तुरीयातीत कक्षा मे भी होती है ।

त्यों ही वंध्यापुत्र पिंघूरै झूलत कहिए।
मृग जल माहे नीर कहूँ ढूँढ़त नहिं लहिए॥
रज्जु माहिं सर्प नहिं कालत्रय, शुक्ति रजत सी लगत है।
शिष यह अत्यंताभाव सुनि ऐसे ही सब जगत है॥२६॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

दोहा छंद

यह अत्यंताभाव है यह ई तुरियातीत।
यह अनुभव साक्षात् यह यह निश्चय अद्वैत॥४०॥
नाहीं नाहीं करि कह्यो है है कह्यो बखानि।
नाहीं है के मध्य है सो अनुभव करि जानि[1]॥४१॥
यह ही है परि यह नहीं नाहीं है है नाँहि।
यह ई यह ई जानि तू यह अनुभव या माँहि॥४२॥
अबं कछु कहिबे कों नहीं कहैं कहाँ लौं बैन।
अनुभव ही करि जानिए यह गूँगे की सैन॥४३॥

[इस प्रकार शिष्य निर्भ्रांत हो, जगत् को स्वप्नवत् जानने लगा, और अपनी शुद्ध अवस्था को देख पूर्व अवस्थाओं की निवृत्ति पर आनंदयुक्त आश्चर्य सा प्रगट कर अपने भाव का गुरु के सामने वर्णन करने लगा।]

१–ब्रह्म ऐसा ही है ऐसा इद ता ज्ञान और ब्रह्म यह नहीं है वा ऐसा नहीं है यह अभाव ज्ञान दोनो ही तत्वज्ञान में संभव नहीं हो सकते। इससे है और नहीं के बीच अर्थात् अनिर्वचनीय तीसरी रीति ही उपयुक्त है। सो केवल स्वात्मानुभव पर निर्भर है और वह अनुभव कहने में आता नहीं।

चर्पट छंद[१]

काहं[२] कस्त्वं कच संसारं, कच परमार्थं कच व्यवहारः।
कच मे जन्मं कच मे मरणं, कच मे देहः कच मे करणं[३] ॥४६॥
कच मे अद्वय कच मे द्वैतं, कच मे निर्भय कच मे भीतं[४]।
कच माया कच ब्रह्मविचारं, कच मे प्रवृत्तिहि निवृत्ति विकारं॥४७॥
कच मे ज्ञानं कच विज्ञानं, कच मे मन निर्विष विष[५] जानं।
कच मे तृष्णा क वितृष्णत्व[६], कच मे तत्वं कच हि अतत्वं॥४८॥
कच मे शास्त्रं कच मे दत्तः[७], कच मे अस्तिहि नास्तिहि पक्षः।
कच मे काल. कच मे देशं, कच गुरु शिष्यः कच उपदेशः॥४९॥
कच मे ग्रहणं कच मे त्यागः, कच मे विरतिः कच मे राग.।
कच में चपलं कच निस्पंदं[८], कच मे द्वंद्वं कच निर्द्वंद्व॥५०॥
कच मे बाह्याभ्यंतर भासं[९], कच अध ऊर्द्ध तिर्य[१०]प्रकाशं।
कच मे नाडी[११]साधन योगं, कच मे लक्ष विलक्ष[१२]वियोगं[१३]॥५१॥

१—श्रीशंकराचार्य्य जी के स्तोत्रों के ढग का यह वर्णन संस्कृत और भाषा सम्मिलित है। २—क=कहाँ। कहाँ को=कौन का अर्थ भी बनता है। ३—अवयव का इन्द्रियादि। ४—भीतत्व =डर। ५—विषरूपी विषय से रहित। ६—वैतृष्यत्व=तृष्णा न रहना। ७—दक्षता। ८—स्पद गति का न होना। ९—शरीर से भिन्न वा बाहर अनात्मा का ज्ञान, तथा अदर का बाहर के पदार्थों से भिन्न होने का ज्ञान। १०—तिर्य=तिर्यक, तिरछा। ऊँचा, नीचा, आगे पीछे, तिरछा सीधा आदि सापेक्ष ज्ञान केवल प्रकृतिजन्य गुण हैं। ११—इडा पिंगला आदि योगविद्या की नाडियां। १२—लक्ष्य योग, अथवा स्वेष्टाचार योगक्रिया। १३—वियोग=विशेष योग साधन।

क्च नानात्वं क्च एकत्व, क्च में शून्याशून्य समत्वं।
यो अवशेषं सो ममरूपं, बहुना किं उक्त च अनूपं[1] ॥५२॥

[गुरु ने शिष्य में यह निश्चय अनुभव जानकर कहा कि हे शिष्य इस ज्ञान की प्राप्ति से तू निर्भय निर्लेप और निर्दोष होकर ब्रह्मज्ञानी हुआ है। उपरांत जीवनमुक्त पुरुष का लक्षण वा महत्व कहकर ग्रंथ का फल और रचना काल देकर वे ग्रंथ समाप्त करते है।]

दोहा छंद

निरालंब निर्वासना इच्छाचारी येह।
संस्कार पवनहि फिरै शुष्क पर्ण ज्यौं देह[2] ॥५७॥
जीवन्मुक्त सदेह तूँ लिप्त न कबहूँ होइ।
तोकौं सोई जानि है तव समान जे कोइ॥

१– अनूप है, जिसकी उपमा वा सादृश्य के लिये कोई पदार्थ नहीं इसलिये बहुत कहने से भी क्या होगा। २–यह साखी सुंदरदासजी के मुख से उनके अंत समय में भी निकली थी। उस समय वही प्रबल वृत्ति उनकी थी जो ज्ञान-समुद्र की समाप्ति के समय थी। अर्थात् देह की उत्पत्ति वासना संस्कार से संभव है, जप तप और ज्ञान से सब कर्म और वासना निवृत्त हो गई तो आत्मानुभव जो हुआ सो एक निरालंब (निराधार–निर्लेप) और वासनारहित संज्ञा है ऐसी अवस्था-वाले का फिर जन्म नहीं हो सकता। इसकी इच्छा केवल मोक्षेच्छा थी सो पूर्ण होने से इच्छानुसार आचार हुआ अर्थात् ब्रह्मवत् वा ब्रह्मलीन हो गया।

सुंदर ज्ञानसमुद्र कौ पारावार न अंत ।
विषयी भागै झझकिकैं पैठै कोई संत ॥६२॥

❀ ❀ ❀

संवत सत्रह से गए वर्ष दसोतर और ।
भाद्रव सुदि एकादशी गुरुवासर शिरमौर ॥६५॥
ता दिन संपूरण भयौ ज्ञानसमुद्र सु ग्रंथ ।
सुंदर औगाहन करै लहै मुक्ति को पंथ ॥६६॥

(२) अथ लघु ग्रंथावलि

(१) सर्वांगयोग[1] ग्रंथ

प्रपंच प्रहार

[इस "सर्वांग योग" नामक ग्रंथ में ग्रंथकर्ता सुंदरदासजी भक्ति, हठ और सांख्य इन तीन पर संक्षेप से कहते हैं। इन ही विषयों का निरूपण "ज्ञानसमुद्र" में कुछ विस्तार से किया है। विषय की एकता वा समानता रहने पर भी कई बातों का भेद है। अनुमान होता है कि 'सर्वांगयोग' का निर्माण 'ज्ञानसमुद्र' से पूर्व ही हुआ हो। यह 'पचेंद्रियचरित्र' से पूर्व आया है जो संवत् १६९१ में बना था और ज्ञानसमुद्र सं० १७१० में रचा गया था। ज्ञानसमुद्र को क्रम में सबसे प्रथम रखने में इसकी उत्कृष्टता ही कारण प्रतीत हो सकती है परंतु रचनाकाल नहीं।

आदि में भक्तियोग, हठयोग और सांख्ययोग के आचार्यों के नाम और फिर प्रत्येक योग के चार चार भेद दिए हैं। प्रथम 'उपदेश' (अध्याय) में 'प्रपचप्रहार' नाम देकर अनेक मतों की विडंबना मात्र और उनकी अनावश्यकता तथा स्वप्रतिपाद्य योगत्रिक् की प्रधानता का वर्णन किया है। ज्ञानसमुद्र में इन ही अंगों की पुष्टता हो गई है और वह इस ग्रंथ से पूर्व आ चुका है, इससे विस्तार से नहीं देंगे।]

१—'योग' शब्द सांख्य आदि शब्दों के साथ जुटाना पुराना ढंग है कुछ सुंदरदासजी पर निर्भर नहीं है। गीता के अध्यायो में योग शब्द का प्रचुर प्रयोग है। प्रतीत होता है कि योग से तात्पर्य्य 'मार्ग' वा 'विधि' का है। 'सर्व' शब्द के होने से मुख्य मुख्य योग के अंग अभिप्रेत हैं।

दोहा छंद

वंदत हौं गुरुदेव के नित चरणांबुज दोइ।
आत्मज्ञान परगट भयौ संशय रह्यौ न कोइ ॥ १ ॥
भक्तियोग हठयोग पुनि सांख्य सुयोग विचार।
भिन्न भिन्न करि कहत हौं तीनहुँ को विस्तार ॥ २ ॥

(भक्तियोग के आदि आचार्य्य[1])

सनकादिक नारद मुनि शुक अरु ध्रुव प्रहलाद।
भक्तियोग सो इन कियौ सद्गुरु कैं जो प्रसाद ॥ ३ ॥

(हठ योग के पूर्वाचार्य्यों के नाम[2])

आदिनाथ मत्स्येंद्र अरु गोरष चर्पट मीन।
काणेरी चोरंग पुनि हठ सुयोग इनि कीन ॥ ४ ॥

(सांख्य के आद्याचार्य्य[3])

ऋषभदेव अरु कपिल मुनि दत्तात्रेय वशिष्ट।
अष्टावक्र रु जडभरत इनकै साख्य सुदृष्ट ॥ ५ ॥

१–नारद, शाडिल्य आदि भक्तिसूत्रादि, शाडिल्य विद्या आदि के
इ आचार्य्य है और ध्रुव प्रहलाद आदि भक्त शिरोमणि हुए है।
ठयोग के आचार्य्यों के नाम हठ-प्रदीपिका में ये है—आदिनाथ,
ल्व्य, गोरष, मत्स्येंद्र, भर्तृहरि, म थानं, भैरव, कथडि, चर्पट,
, नित्यनाथ, कपाली, टिंटिणी, निरंजन आदि। ३–अनीश्वर-
और ईश्वरवादी सांख्य यों दो प्रकार का है। ऋषभ देवादि पूर्व
रवादी विख्यात है और कपिल, पचशिख उत्तर सांख्य के।
छः ईश्वरवादी दर्शन ये हैं—सांख्य, योग, न्याय, वैशे-
दांत, मीमांसा।

(२) अथ लघु ग्रंथावलि

(१) सर्वांगयोग[1] ग्रंथ

प्रपंच प्रहार

[इस "सर्वांग योग" नामक ग्रंथ मे ग्रंथकर्ता सुंदरदासजी भक्ति, हठ और सांख्य इन तीन पर संक्षेप से कहते है। इन ही विषयो का निरूपण "ज्ञानसमुद्र" में कुछ विस्तार से किया है। विषय की एकता वा समानता रहने पर भी कई बातों का भेद है। अनुमान होता है कि 'सर्वांगयोग' का निर्माण 'ज्ञानसमुद्र' से पूर्व ही हुआ हो। यह 'पंचेंद्रियचरित्र' से पूर्व आया है जो संवत् १६६१ में बना था और ज्ञानसमुद्र सं० १७१० में रचा गया था। ज्ञानसमुद्र को क्रम मे सबसे प्रथम रखने में इसकी उत्कृष्टता ही कारण प्रतीत हो सकती है परंतु रचनाकाल नहीं।

आदि में भक्तियोग, हठयोग और सांख्ययोग के आचार्यों के नाम और फिर प्रत्येक योग के चार चार भेद दिए है। प्रथम 'उपदेश' (अध्याय) में 'प्रपचप्रहार' नाम देकर अनेक मतों की विडंबना मात्र और उनकी अनावश्यकता तथा स्वप्रतिपाद्य योगत्रिक् की प्रधानता का वर्णन किया है। ज्ञानसमुद्र में इन ही अंगों की पुष्टता हो गई है और वह इस ग्रंथ से पूर्व आ चुका है, इससे विस्तार से नहीं देंगे।]

१–'योग' शब्द सांख्य आदि शब्दों के साथ जुटाना पुराना ढंग है कुछ सुंदरदासजी पर निर्भर नहीं है। गीता के अध्यायों में योग शब्द का प्रचुर प्रयोग है। प्रतीत होता है कि योग से तात्पर्य्य 'मार्ग' वा 'विधि' का है। 'सर्व' शब्द के होने से मुख्य मुख्य योग के अंग अभिप्रेत है।

चौपई छंद

केचित्[१] कर्म स्थापहि जैना । केश लुचाइ करहिं अति फैना ॥
केचित् मुद्रा पहिरे कानं । कापालिका[२] भ्रष्ट मत जानं ॥१८॥
केचित् नास्तिक वाद प्रचंडा । तेतौ करहि वहुत पाषंडा ॥
केचित् देवी शक्ति मनावैं । जीव हनन करि वाहि चढावैं॥१९॥
केचित् मलिन मंत्र आराधैं । वसीकरण उच्चाटन साधैं ॥
केचित् मुये मसान जगावैं । थंभन मोहन अधिक चलावैं॥२१॥
केचित् तर्कह शास्त्र पाठी । कौशल विद्या पकरहिं काठी ॥
केचित् वाद विविध मत जानै । पढ़ि व्याकरण चातुरी ठानै॥२६॥
केचित् कर धरि भिच्छा पावैं । हाथ पूछि जंगल कौं धावैं ॥
केचित् घर घर माँगहि टूका । वासी कूसी रूपा सूका ॥३०॥
केचित् धोवन धावन[३] पीवैं । रहैं मलीन कहौ क्यों जीवै ॥
केचित् मता अघोरी[४] लीया । अंगीकृत दोऊ का कीया ॥३२॥
केचित् अभष भषत न सँकाही । मदिरा मांत मांस पुनि षाहीं ।
केचित् वपुरे दूधाधारी । षाड पोपरा दाष छुहारी ॥३३॥
केचित् चिर्कट[५] वीनहि पंथा । निर्गुन रूप दिखावै कंथा ॥
केचित् मृगछाला वाघंवर । करते फिरहिं वहुत आडवर ॥३७॥
केचित् मेघाडंबर वैठे । शीतकाल जलसाई पैठे ॥
केचित् धूमपान करि भूले । औंधे होइ वृच्छ सौं झूले ॥४०॥

१—कितने ही पुरुष अथवा कोई कोई । २—कापालिक—वाम मार्ग और शाक्त भैरव लोग हैं । ३—ओसवालो में ढूँढिया ऐसा करते है । ४—वाम मार्ग से भी हीनतर मत है । ५—चिथड़े ।

[भक्तियोग चार प्रकार के—भक्तियोग, म त्रयोग, लययोग, चरचा-योग। हठयोग चार प्रकार के—हठयोग, राजयोग, लक्षयोग, अष्टाग-योग। साख्ययोग के भी इसी तरह ४ प्रकार हैं—सांख्ययोग, ज्ञानयोग, ब्रह्मयोग, अद्वैतयोग। आगे चलकर दूसरे तीसरे चैाथे उपदेशों में प्रत्येक का कुछ कुछ वर्णन दिया है। इनके अतिरिक्त अन्य उपायों और मतमतातरों को मिथ्या कहकर बताया है।]

दोहा छद

इन बिन और उपाय हैं सो सब मिथ्या जानि।
छह दरसन अरु छयानबे[1] पाषंड कहूं बषानि ॥१५॥

[भक्ति योगादि के अतिरिक्त अन्य उपायों की उपेक्षा करते हुए ग्र थकर्ता ३८ चौपाइयों में विस्तार से उनकी गणना और वर्णन करते हैं। इस गणना में य त्र, म त्र, टोना, टामन सिद्धि दिखाने में धूर्तता, दान और कर्म का आडंबर, थोथे पाडित्य की मत्सरता, तपश्चर्या, व्रत और दंभ भरे पाखंडियों का ठगना, जैनी ढूठियों की मलिनता, कापालिक और शाक्तों की भ्रष्टता, सिद्धियां दिखाने को अनेक कायाकष्ट और करतूतियों का दिखाना, अनेक साधू वेष धारण कर ठग विद्याओं का करना इत्यादि बहुत सी बाते संयुक्त की गई है। पर तु ब्रह्मचर्यादि आश्रम और संध्यावदनादि नित्यनैमित्तिक कर्मों आदि का भी नामोल्लेख हुआ है, पर च यह कोई कटाक्ष नहीं किंतु इन शास्त्र-विहित कर्मों के अनुष्ठान में यदि ज्ञान की हीनता और योग की न्यूनता रहे तो यही त्याज्य वा हेय है। उदाहरण के लिये कुछ चैापाइयां देते हैं। इन सब ही चौपाइयों में 'केचित्' शब्द का प्रयोग बहुत हुआ है।]

१—यहां 'पाषंड' से प्रतिकूल मत से प्रयोजन है। सर्वदर्शन-संग्रह आदि ग्र थों में अनेक मतों का दिग्दर्शन है।

चौपई छंद

केचित्[१] कर्म स्थापहि जैना। केश लुचाइ करहिं अति फैना॥
केचित् मुद्रा पहिरे कान। कापालिका[२] भ्रष्ट मत जानं॥१८॥
केचित् नास्तिक वाद प्रचंडा। तेतौं करहिं वहुत पापंडा॥
केचित् देवी शक्ति मनावैं। जीव हनन करि ताहि चढावैं॥१९॥
केचित् मलिन मत्र आराधैं। वसीकरण उच्चाटन साधैं॥
केचित् मुये मसान जगावैं। थंभन मोहन अधिक चलावैं॥२१॥
केचित् तर्कह शास्त्र पाठी। कौशल विद्या पकरहिं काठी॥
केचित् वाद विविध मत जानै। पढ़ि व्याकरण चातुरी ठानै॥२६॥
केचित् कर धरि भिच्छा पावैं। हाथ पूछि जगल कौं धावैं॥
केचित् घर घर माँगहि टूका। वासी कूसी रूपा सूका॥३०॥
केचित् धोवन धावन[३] पीवैं। रहैं मलीन कहीं क्यों जीवैं॥
केचित् मता अघोरी[४] लीया। अंगीकृत दोऊ का कीया॥३२॥
केचित् अभष भषत न सँकांही। मदिरा मांत मांस पुनि पाहीं।
केचित् वपुरे दूधाधारी। षाड पोपरा दाष छुहारी॥३३॥
केचित् चिर्कट[५] वीनहि पंथा। निर्गुन रूप दिखावै कंथा॥
केचित् मृगछाला वाघंवर। करते फिरहि वहुत आडंवर॥३७॥
केचित् मेघाडंवर वैठे। शीतकाल जलसाई पैठे॥
केचित् धूमपान करि भूले। औंधे होइ वृच्छ सौं झूले॥४०॥

१—कितने ही पुरुष अथवा कोई कोई। २—कापालिक—वाम मार्ग और शाक्त भैरव लोग हैं। ३—ओसवालों में ढूँढिया ऐसा करते हैं। ४—वाम मार्ग से भी हीनतर मत है। ५—चिथड़े।

केचित् तृण की सेज वनावै । केचित् लैं ककरा विछावैं ॥
केचित् व्रतहि गहैं अति गाढे । द्वादश वर्ष रहैं पग ठाढे ॥४४॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

दोहा छंद

वहुत भाँति मत देषि कैं, सुंदर किया विचार ।
सद्गुरु के जु प्रसाद तें, भ्रमें नहीं सुलगार[1] ॥५०॥

(ख) भक्तियोग

[भक्ति का वर्णन ज्ञानसमुद्र की भाँति नहीं है—न तो नवधा का वर्णन, न प्रेमलक्षणा, और न परा का उल्लेख है। किंतु जो कुछ लिखा है उससे अर्चना (नवधा का एक भेद) प्रतीत होती है। हाँ इस भक्तियोग को सारे योग रूपी महल का स्तंभ कहा है और योगियों की नाईं विरक्ति आदि की आवश्यकता होने की बात आई है। प्रथम दृढ़ वैराग्य धारण कर, अटल विश्वास के साथ त्यागी बने, जितेंद्रिय और उदासीन रहे, घर में रहे चाहे वन में जाय परंतु माया, मोह, कनक, कामिनी, आशा, तृष्णा को छोड़ दे। शील, संतोष, दया, दीनता, क्षमा, धैर्य धारण करे, मान माहात्म्य कुछ न चाहे, सकल संसार को आत्मदृष्टि से देखे। एक निरंजन देव ही की पूजा करे। उसका प्रकार इस तरह लिखा है।]

चौपाई छंद

मन माहैं सब सौंज[2] सुथापै । वाहर के वंधन सब कापैं[3] ॥
शून्य सुमंदिर अधिक अनूपा । तामहिं मूर्त्ति जोति स्वरूपा ॥८॥
सहज सुखासन बैठे स्वामी । आगे सेवक करे गुलामी ॥

१—लेशमात्र, लगाव। २—पूजा की सामग्री। ३—काटै।

संजम उदक स्नान करावै । प्रेम प्रीति के पुष्प चढ़ावै ॥९॥
चित चंदन लै चरचै अंगा । ध्यान धूप षेवै ता संगा ॥
भोजन भाव धरै लै आगै । मनसा वाचा कछू न माँगै ॥१०॥
ज्ञान दीप आरती उतारै । घटा अनहद शब्द विचारै ॥
तन मन सकल समर्पन करई । दीन होइ पुनि पायनि परई ॥११॥
मग्न होइ नाचै अरु गावै गदगद रोमांचित होइ आवै ॥
सेवक भाव कहे नहिं चौरै । दिन दिन प्रीति अधिक ही जोरै ॥१२॥

[इस प्रकार अपने अंतरभूत इष्टदेव की निरंतर भक्ति और सेवा वैसे ही करे जैसे प्रतिव्रता स्त्री अपने पति की। यही उसकी अनन्यता है।]

मंत्रयोग

[इसके आगे भक्तियोग का दूसरा अंग मंत्रयोग वर्णन करते है। मंत्रयोग के कहने से यह प्रयोजन है कि प्रथम "वैखरी वाणी के द्वारा मंत्र को सीख कर मध्यमा वाणी से उसको वार वार दोहरावे, मुख से शब्द उच्चारण न होने पावे। जैसे शब्द के कहने से उसके अर्थ का प्रतिपाद्य ग्राह्य होता है इसी तरह से ब्रह्म के द्योतक शब्द से उसका प्रतिपाद्य ब्रह्म ही लिया जायगा, शब्दोच्चारण के अभ्यास से वैखरी और मध्यमा द्वारा मन के अंतर भी अंतर्हित ब्रह्म की धारणा बढ़ती जायगी, मध्यमा की पुष्टि से पश्यंति में अभ्यास का प्रवेश होगा और फिर पश्यंति का पुष्टि से 'परा' वाणी में अभ्यास का निवेश होता जायगा, जैसे बाह्य स्थित आकार वा कल्पित मूर्ति के ध्यान से मनोनिग्रह विना प्रयास ही होने लग जाता है उसी तरह से मंत्र जाप से चित्त निरोध होता है, भेद इतना ही है कि वहाँ चाक्षुषेंद्रिय प्रधान है और यहाँ कर्णेंद्रिय प्रधान है और वैखरी और मध्यमा वाणियाँ कर्मेंद्रियवत् सहायता करती है। निराकार वस्तु का सहसा ध्यान में आ जाना कोई खेल नहीं है,

इसलिये उस तरफ बढने के लिये पूजा, जप आदि उपाय सीढी की तरह से है, इसी लिये ये भक्ति वा योग के अग माने गए है। इसी को महात्मा सुंदरदास जी भक्तियोग के अंतर्गत कर सूक्ष्मता से कहते है।]

चौपई छंद

सुगम उपाई और सद[१] रोजो। राम मत्र कौं जौ ले पोजी ॥
प्रथम श्रवण सुनि गुरु के पासा। पुनि सो रसना करै अभ्यासा॥२३॥
ता पीछे हिरदै में धारै। जिह्वा रहित मत्र उच्चारै॥
निस दिन मन तासों रहै लागो। कबहूँ नैक न टूटै धागो[२]॥२४॥
पुनि तहाँ प्रकट होइ रकारा[३]। आपुहि आपु अखंडित धारा॥
तन मन बिसरि जाइ तहाँ सोइ। रोमहि रोम राम धुनि होइ॥२५॥
जैसे पानी लौन मिलावै। ऐसैं ध्वनि महिं सुरति समावै[४]॥
राम मत्र का इहै प्रकारा। करै आपुसे लगै न बारा॥२६॥

लययोग

[मत्रयोग की संक्षेप विधि कह चुकने पर लययोग को अनेक दृष्टांतों से निरूपण करते हैं। लय अर्थात् तल्लीनता भक्ति का एक प्रौढ़ भाव वा दशा है। जब मन उपास्य वा इष्ट में मग्न हो जाता है तो उसकी दशा अन्य पदार्थों से सिमटकर वहीं स्थित रहती है। जिन पुरुषों की

१—सद्य + राजी = नित्य नई और ताजी आमदनी वा आय। २—तागा तार। ३—रकार की ध्वनि—अनाहत शब्द की भाँति अभ्यासवश भीतर आप ही आप गूँज होने लगती है। रामायण में आया है कि हनुमानजी के शरीर में 'राम' नाम रोमरोम में था। तद्वत् भजन के प्रभाव से ऐसा होना असम्भव नहीं। जो कुछ हो सो करने से हो सकता है। ४—'सुरति' शब्द का प्रयोग कबीर आदि महात्माओं ने 'श्रुति' शब्द से लौ या ध्यान के अर्थ में किया है।

प्रकृति ही भगवत्कृपा वा अपने संस्कारों से भक्तिमय होती है उनको थोडे प्रयास वा अल्प संसर्ग ही से लय की प्राप्ति होने लग जाती है। पर तु जिनको ऐसी सामग्री उपस्थित न हो उनको परमात्मा से भक्तियोग की प्राप्ति की प्रार्थना करनी चाहिए और उसके लिये यथासाध्य प्रयत्न करना चाहिए। बोल चाल मे लय को 'लौ लगाना' कहते हैं, यह लय मन की वृत्ति का तारतम्य है जो प्रकाश रूप से भी वाणी, कर्म और लक्षण से भी प्रगट होता है। पपीहे की नाई रसना से रटना स्वाभाविक रीति से स्वयं होने लगेगी। जैसे कुंज पक्षी घोसले को छोड़ कहीं भी जाय, कछुआ अडों को छोड कहीं भी जाय परंतु दृष्टि वा मन अडों ही में लगा रहेगा। जैसे बालक, सांप वा हिरन, गान वा वाद्य सुन, स्तब्ध हो जाता है, बांस।पर नट की जैसी वृत्ति होती है, सिर पर गगर धरे पनिहारी का ध्यान गागर ही में लगा रहता है, बछडे को छोड गाय जगल में जाती है, बच्चे को छोड़ मां दूर चली जाती है परंतु जी अपना अपने बच्चे में निरंतर लगा रहता है, इसी प्रकार हरिभक्तजनों का मन अपने प्रिय इष्टदेव भगवान् मे ही लिपटा रहता है। यथा—]

चौपई छंद

जैसे कुंभ लेइ पनिहारी। सिरि धरि हंसै देइ कर तारी॥
सुरति रहै गागरि कै मंझा। यौं जन लय लावै दिन सझा॥३४॥
जैसे गाइ जंगल्ल कौं धावैं। पानी पिवै घास चरि आवैं॥
चित्त रहै वछरा कै पासा। ऐसी लय लावे हरिदासा॥३५॥
ज्यों जननी गृह काज कराई। पुत्र पिंघूरे[1] पौढ़त भाई॥
उर अपनै तैं छिन न विसारै। ऐसी लय जन कौ विस्तारै॥३६॥

सब प्रकार हरि सौं लै लावै । होइ विदेह परम पद पावै ॥
छिन छिन सदा करै रस पाना । लय तें होवै ब्रह्म समाना[1]॥१८॥

चर्चायोग

[जैसे 'लय योग' प्रेमलक्षणा भक्ति से कुछ मिलता जुलता है, वैसे ही चर्चायोग को जिसको अब कहेंगे, नवधा भक्ति के कीर्तन से बहुत कुछ मिला सकते है। इसी प्रकार मंत्र योग की स्मरण से कुछ कुछ तुलना कर सकते है। प्रभु के अपार गुण और उसकी अपार लीला को दृष्टि द्वारा देखकर बारंबार हृदय में आनंदपूर्वक उनके संस्कार जमावे। व्यावहारिक दृष्टि से अर्थात् स्थूल में सुगम, साध्य, परंतु सूक्ष्म और अध्यात्म में उस मार्ग में जानेवालों के लिये कुछ दुःसाध्य परंतु परागति देनेवाला है। अपने अंतःकरण में उस महान् सृष्टि के महान् कर्त्ता भर्त्ता की जब मानसिक चर्चा का तार बँधता है और उस विवेचना से जो आनंद प्राप्त होता है उसमें मग्न होकर भक्त अपने स्वामी के विषय में कैसे कैसे विचार बाधता है सो ही चर्चा योग का रूप बना करता है। उसी के उदाहरण रूप कुछ छंद सुंदरदास जी के वचनामृत द्वारा सुनिए।]

चौपई छंद

अव्यक्त पुरुष अगम्य अपारा । कैसैं कै करिये निर्धारा ॥
आदि अंति कछु जाय न जानी । मध्य चरित्र सु अकथ कहानी ॥
प्रथमहिं कीनौं ॐकारा । तातैं भयो सकल विस्तारा ॥
जावत यह दीसै ब्रह्मंडा । सातों सागर अरु नव खंडा ॥४२॥
चंद सूर तारा दिन राती । तीनहुँ लोक सृजे बहुभाँती ॥

१—समान-बराबर।

चारि खानि[1] करि सृष्टि उपाई। चौरासी लष जातिवनाई॥४३॥

❀ ❀ ❀ ❀

चर्चा करौं कहाँ लग स्वामी। तुम सब ही के अंतरजामी॥
सृष्टि कहत कछु अंत न आवै। तेरा पार कौन धौं पावै॥४७॥
तेरी गति तूही पै जाने। मेरी मति कैसे जु प्रवाने॥
कीरी पर्वत कहा उचावै। उदधिथाह कैसे करि आवै॥ ४८॥

[इस प्रकार भक्तियोग मंत्रयोग, लययोग और चर्चायोग समाप्त कर ग्रंथकर्त्ता सुंदरदास जी कहते हैं—]

दोहा छंद

ये चारों अंग भक्ति कं, नौधा इनहीं माँहि।
सुंदर घट महिं कीजिए, वाहरि कीजै नाहिं[2] ॥५१॥

(ग) योग प्रकरण

हठयोग

[भक्ति का प्रकरण कहकर अब योग का प्रकरण कहते हैं। इस प्रकरण के भी चार विभाग ग्रंथकर्त्ता ने किए हैं अर्थात् हठयोग, राजयोग, लययोग और अष्टांगयोग। इनमें पहले हठयोग को कहते हैं। "हठ-योग-प्रदीपिका" के अनुसार हठ का वर्णन ज्ञानसमुद्र ग्रंथ में हो चुका है, यहाँ केवल दिग्दर्शन मात्र है। हठयोग का अधिकारी किसी धर्मात्मा राजा के देश मे विधिपूर्वक मठ बनाकर यथाविधि गुरु द्वारा हठ का

१—चार खान = जरायुज, अण्डज, स्वदेज और उद्भिज। २—क्योंकि बाहर जो कुछ है वह अनित्य और मिथ्या माया है। भीतर अंतरात्मा अपने संवित् द्वारा नित्यता के साथ प्रतीत होता है।

साधन करे, स्वास जीते, यम नियम का साधन रखे, युक्ताहार विहार होकर रहे। सुंदरदास जी ने भोजन का विधान भी दिया है। योग के षट् कर्मों से नेती, धोती, वस्ती तथा त्राटक, नौली मुद्रा, कपालभाती आदि से शरीर की नाड़ियों को शुद्ध करे। निरंतर अभ्यास से आनंद और सिद्धियां प्राप्त होगी।

चौपई छंद

यह षट कर्म सिद्धि के दाता। इन तै सूक्षम होय सुगाता ॥१०॥
आँउँ पित्त कफ रहै न कोई। नख सिख लौं वपु निर्मल होई॥
सदाभ्यास तैं होय सुछंदा। दिन दिन प्रगटै अति आनंदा॥११॥

राजयोग

[हठ योग द्वारा मन, शरीर और नाड़ियों को शुद्ध किया हुआ योगी राजयोग के साधन में तत्पर होवे। राजयोग का मार्ग कठिन है। विना समझे उसमें आनंद नहीं मिलता। राजयोगी उर्द्ध्वरेता होकर वीर्य का मस्तक वा शरीर में स्त मन करके अजर काय हो जाता है फिर मनोनिग्रह में तत्पर हुआ शनैः शनै ब्रह्मानंद को पाने लगता है। जलकमलवत् आप अपने से अलिप्त, क्षुधा, पिपासा, निद्रा, शीत, उष्णादिक उसके वशवर्ती होते है। राजयोगी के कुछ लक्षण और उसकी कुछ विभूति के लक्षण सुंदरदासजी ने दिए हैं। यथा—]

चौपई छंद

सदा प्रसन्न परम आनंदा। दिन दिन कला बधै ज्यूँ चंदा॥
जाकौ दुख अरु सुख नहिं होई। हर्ष शोक व्यापै नहिं कोई॥१७॥
अग्नि न जरै न बूडै पानी। राजयोग की यह गति जानी॥

अजर अमर अति वज्र शरीरा । खड्गधार कछु विधै न धीरा ॥
जाकौं सब वैठे ही सूझै । अरु सबहिन की भाषा बूझै[1] ॥
सकल सिद्धि आज्ञा महि जाके[2] । नवनिधि सदा रहै ढिग ताके ॥
मृत्यु लोक महि आपु छिपावै । कबहुँक प्रकट सुहोय दिखावै ॥
हृदै प्रकाश रहै दिन राती । देखै ज्योति[3] तेल विन बाती ॥२३॥

लक्ष्ययोग

[लक्ष्ययोग मे किसी निश्चित वा कल्पित पदार्थ पर दृष्टि वा मन की वृत्ति लगाई जाती है । इसका साधन सुगम है । योग के ग्रंथों मे तथा स्वरोदय के अंग में इसका वर्णन आया है यथा 'अधोलक्ष्य' नासिका के अग्र पर दृष्टि का ठहराना इससे मन की चंचलता रुकती है । 'उर्द्धलक्ष्य' आकाश मे दृष्टि रखना इससे कई प्रकार की रोशनियाँ और गुप्त पदार्थ दिखने लगते है । 'मध्यलक्ष्य' मन मे किसी पुरुष विशेष का विचार करे इससे सात्विक वृत्ति बढती है। 'बाह्यलक्ष्य' पाँचों तत्वों को साधन करे जैसा कि इसका विस्तार स्वरोदय मे लिखा है । 'अंतर्लक्ष्य' ब्रह्म नाडी के अभ्यास से प्रकाश का हृदय में उत्पन्न करना । 'ललाट लक्ष्य' एक बडे चमकते हुए तारे को ललाट मे कल्पना करके देखना । इससे शरीर के रोग निवृत्त होते हैं, और कई गुण भी प्राप्त होते है, इसी तरह 'त्रिकुटी लक्ष्य' में लाल रंग के भौंरे के समान का ध्यान करे इससे जगत्प्रिय बनेगा ।]

अष्टांगयोग

[अष्टांग योग में—यम, नियम, आसन, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि (ये) अंतर्गत है । इनका विस्तृत वर्णन 'ज्ञानसमुद्र'

१—कई एक महात्मा कई वाणियाँ जानते वा बोलते सुने गए हैं इसका कारण यह योग ही है । २—राजयोग और हठयोग से सिद्धियो का मिलना सुप्रसिद्ध है । ३—ज्योतिस्वरूप परमात्मा का प्रकाश ।

के तृतीयोल्लास में आ चुका है, इसलिये यहाँ पुनरुक्ति की आवश्यकता नहीं। समाधि के विषय में एक दो चौपाइयाँ देते हैं]

समाधि लक्षण। चौपाई छंद

अब समाधि ऐसी विधि करई। जैसे लौन[1] नीर महिं गरई॥
मन इद्रो की वृत्ति समावै। ताकौ नाम समाधि कहावै॥४९॥
जीवातम परमात्मा होई। समरस करि जग एकै होई॥
बिसरै आप कछू नहिं जानै। ताको नाम समाधि बखानै॥५०॥

सांख्ययोग

[साख्ययोग का वर्णन ज्ञान समुद्र के चौथे उल्लास में कर दिया है इसलिये यहां दोहराने की आवश्यकता नहीं। इसमें केवल नाम मात्र ही चौबीस तत्वों की गणना कर दी है। आत्म अनात्म का भेद, आत्म क्षेत्रज्ञ और शरीर क्षेत्र बताया है। सांख्ययोग के ४ प्रकार हैं—सांख्ययोग ज्ञानयोग, ब्रह्मयोग और अद्वैतयोग। इनका भिन्न भिन्न वर्णन किया है, जिसमें से साख्ययोग का वर्णन ऊपर लिख चुके हैं नमूने की चौपाई देते हैं]

चौपाई छद

यह चोबीस तत्त्व वंधानं। भिन्न भिन्न करि कियो बषानं॥
सब को प्रेरक कहिए जीव। सो क्षेत्रज्ञ निरतर सीव[2] ॥ ६ ॥

१—लोन की पूतरी (पुतली) का आख्यान सुप्रसिद्ध है। समुद्र से लवन होता है, लवन से बनी मूर्त्ति समुद्र में पिघलकर कुछ शेष नहीं रहती, इसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा में उपाधि टूट जाने पर लीन हो जाता है। २—शिव—केवल, साक्षी मात्र।

सकल वियापक अरु सर्वंग। दीसै सगी आहि असंग॥
साच्छी रूप सवन तै न्यारा। ताहि कछू नहिं लिपै विकारा॥१०॥
यह आत्म अन-आत्म निरना। समझै ताकू जरा न मरना॥
सांख्य सुमत याही सौं कहिए। सत गुरु विना कहौ क्यों लहिए॥

ज्ञानयोग

["ज्ञानयोग में यह सिद्धांत निरूपण किया है कि आत्मा कारण है, और विश्व कार्य है, अर्थात् यह सृष्टि आत्मामय है आत्मा ही से इसका विकाश और आत्मा ही में इसका लय है। सुंदरदास जी ने अनेक उदाहरण दिए है जिनसे आत्मा और संसार का अभेद सा समझ में आता है और आत्मा विश्व का निमित कारण तथा उपादान कारण भी है।" यथा—]

चौपाई छंद

ज्यों अंकरु ते तरु विस्तारा। वहुत भांति करि निकसी डारा॥
शाषा पत्र और फर फूला। यो आत्मा विश्व को मूला॥ १४॥
जैसे उपजे वायु वभूरा। देषत के दीसैं पुति भूरा[1]॥
ओटी छूटें पवन समाहीं। आत्म विश्व भिन्न यो नाहीं॥ १६॥
जैसे उपजे जल के संगा। फेन वुदवुदा और तरंगा॥
ताही मांझ लीन सो होई। यों आत्मा विश्व है सोई॥१८॥

१—भँवर—भ्रमर सा। अथवा भूरे वा भूसरे रंग का। वगूले की आकृति आकाश में जल के भँवर की सी प्रतीत होती है और मिट्टी आदि के मिलने से रंग भी पृथक् हो जाता है।

ब्रह्मयोग

["ब्रह्मयोग" में इस सिद्धांत का प्रतिपादन है कि जीव को ब्रह्म के साथ उस अभेद अज्ञान का निज अनुभव द्वारा, साक्षात्कार हो जाय, कि जो वेदांत के महावाक्य 'अहं ब्रह्मास्मि' से, तथा अपरोक्ष वृत्ति द्वारा प्रकाशित होता है। यथा—]

चौपाई छद

ब्रह्मयोग का कठिन विचारा। अनुभव बिना न पावै पारा॥२५॥
ब्रह्मयोग अति दुर्लभ कहिए। परचा[1] होइ तबहिं तौ लहिए॥
ब्रह्मयोग पावै निःकामी[2]। अमत सु फिरै इंद्रियारामी[3]॥२६॥
आपु ब्रह्म कछु भेद न आनैं। अहम्ब्रह्म ऐसै करि जानैं॥
अहं परात्पर अहं अखंडा। व्यापक अहं सकल ब्रह्मंडा॥३०॥

अद्वैतयोग

[अद्वैतयोग में वह गुणातीत अवस्था वर्णन की है जो शुद्ध ब्रह्म के निरूपण में "नेति नेति" कहकर उपनिषदों में वर्णन की गई है। इसी प्रकार का वर्णन 'ज्ञानसमुद्र' ग्रंथ में भी आ चुका है। यहाँ केवल बानगी मात्र देते हैं। यथा—]

चौपाई छद

अब अद्वैत सुनहु जु प्रकासा। नाहं नत्वं नां यहु भासा[4]॥

१—परिचय—अनुभव। २—भाषा में कहीं कहीं संधि नहीं भी करते हैं। ३—वहिर्मुख इंद्रियों से उधर जाना असंभव है। ४—आभास, प्रकाश—यह सृष्टि जो भासमान है।

नहिंप्रपंचतहाँनहींपसारा[1] । नतहाँसृष्टिनसिरजनहारा[2] ॥३७॥
न तहाँ सत रज तम गुन तीना । न तहाँ इंद्रिय द्वारन कीना ॥
न तहाँ जाग्रत सुप्न न धरिया । न तहाँ सुपुप्ति न तहाँ तुरिया॥४८॥

दोहा छंद

ज्ञे[३] ज्ञाता नहिं ज्ञान तहँ, ध्ये ध्याता नहि ध्यान ।
कहनहार सुंदर नहीं, यह अद्वैत वषान ॥५०॥

---

(२) पंचेंद्रिय चरित्र ग्रंथ

["पंचेंद्रिय चरित्र" ग्रंथ में ६ उपदेश हैं, जिनमें से ज्ञान इंद्रियों के वर्णन में पांच और समाहार में एक। प्रत्येक इंद्रिय का स्थानापन्न एक ऐसा पशु वा जंतु लिया है कि जिसमें उस इंद्रिय की प्रबलता होती है। उस प्रबलता के अधीन होकर उस पशु की जो दुर्गति होती है उसी का एक आख्यान के साथ वर्णन किया है। इस प्रकार के दृष्टांत संस्कृत-साहित्य में बहुत स्थानों में मिलते हैं। इस प्रकार इंद्रियों और मन की विषय-लोलुपता का अच्छा परिचय हो जाता है। इसी से परोपकारी महात्मा सुंदरदासजी ने ऐसे आख्यानों को एकत्र कर, भाषा-काव्य कर दिया है। इसमें प्रथमोपदेश में काम-इंद्रिय वा स्पर्श के वश होकर हाथी वन में से पकड़ा गया यह आख्यान है। दूसरे में भ्रमरचरित्र है, सुगंधप्रिय भ्रमर घ्राण-इंद्रिय के वश हो कमल में बद्ध होकर मारा गया। तीसरे में मीनचरित्र है, स्वादुलोलुप

१—फैलाव,सृष्टि। २—क्योंकि कर्त्तापन गुणोपहित होने से होता है।
३—ज्ञेय = जानी जाय सो वस्तु। किसी वस्तु के ज्ञान में तीन बातें अवश्य हों—एक वह पदार्थ, उसका जाननेवाला और जानने की क्रिया जिसके द्वारा ज्ञाता और ज्ञेय का संबंध हो। इसी प्रकार ध्यान में है।

मछली रसना-इंद्रिय के फंदे में पड़ शिकारी की वसी के कांटे से उलझ कर प्राण खो बैठती है। इसी प्रकार मर्कट, बाजीगर के फंदे में पड़ा और शृंगीऋषि का तप वेश्या द्वारा भंग हुआ, (ये दो आख्यान और भी हैं)। चतुर्थ उपदेश में पतंगचरित्र है, रूप का प्रेमी पतंग (जंतु) चक्षु-इंद्रिय की प्रबलता के अधीन होकर, दीपक में पड़कर जल जाता है। पंचम उपदेश में मृगचरित्र का वर्णन किया है, श्रोत्र-इंद्रिय की प्रबलता के कारण नाद-रस में निमग्न होकर मृग वधिक के तीर से मारा गया, तथा इसी नाद के आनंद से सर्प भी गारुड़ी के हाथ लगा। छठे उपदेश में मनुष्य के सर्व पाँचों ज्ञान-इंद्रियों के वशीभूत होने पर साधारण तथा विशेष रीति से उपदेश वर्णन किया है और इंद्रिय दमन के विषय में स्पष्ट रूप से कहा है। अब छहों उपदेशों से कुछ कुछ छंद साररूप दिए जाते हैं]

(क) गजचरित्र। चंपक* छंद

गज क्रीडत अपने रंगा, बन में मदमत्त अनंगा ॥
बलवंत महा अधिकारी, गहि तरवर लेई उपारी ॥ ३ ॥
इकु मनुष तहाँ कोउ आवा, तिहि कुंजर देष न पावा ॥
उन ऐसी बुद्धि विचारी, फिरि आवा नग्र मझारी ॥ ९ ॥
तब कह्यौ नृपति सौं जाई, इक गज बन मांझ रहाई ॥१०॥
जौ लै आवै गज भाई, दैहौं तब बहुत बधाई ॥११॥
तब बिदा होई घर आवा, मन में कछु फिकरि उपावा ॥१५॥
तब बुद्धि बिधाता दीनी, कागद की हथनी कीनी ॥१६॥
तब दूत तहाँ लै जाहीं, गज रहत जहाँ बन माहीं ॥१९॥

* यह सखी छंद १४ मात्रा का होता है और अंत में यगण य मगण होता है।

तहाँ खंदक कीना जाई, पतरे तृण दीन छवाई।
तृण ऊपरि मृतिका नाषी, तत्र ऊपरि हथिनी राषी ॥२०॥
हथनी को देखि स्वरूपा, सठ धाइ परयो अँध कूपा ॥२२॥

दोहा छंद

धाइ परयौ गज कूप में, देष्या नहीं विचारि।
काम-अंध जानै नहीं, कालबूत[1] की नारि ॥ २३ ॥

[हाथी जब फँस गया, तो कुछ दिन उसको भूखा रखकर मद उसका उतार दिया गया और फिर उसे राजा के पास ले आए। और वह वहाँ बाँधा गया।]

गज भया काम वसि अंधा, गहि राजदुवारै बंधा।
गज काम अंध गहि कीना, इहि काम बहुत दुख दीना ॥३५॥

दोहा

काम दिया दुख बहुत ही, बन तजि बध्या ग्राम।
गज बपुरे की को कहै, विश्व नचाया काम ॥ ३६ ॥

[अब यहाँ ब्रह्मा, रुद्र, इंद्र, चंद्रमा, पराशर मुनि, शृंगी ऋषि, बालि, रावण, विश्वामित्र, कीचक आदि के आख्यानसूचक वाक्य कहे है।]

दोहा छंद

गज व्यवहारहि देषि करि, वेगहि तजिए काम।
सुंदर निस दिन सुमरिए, अलष निरंजन राम ॥४५॥

१—जो कुछ अंदर भरा जाय—भरत। बनावट।

(ख) भ्रमरचरित्र। दोहा छंद

बैठत भ्रमर कली कली, चचल चपल सुभाव ।
त्रिपति[1] न होइ सुगंध मैं, फिरत सु अपने चाव ॥ ६ ॥

[फूल फूल पर बास लेता लेता भौंरा तृप्त न हुआ। निदान उड़ते उडते वह लालची कमल के पुष्प पर पहुँचा। उसकी सुगध से मस्त होकर उसही में जमा रहा। सूर्यास्त होने पर कमलदल संपुटित हो गए। अलि भी उसमें बंद हो गया। आनद से विचरने लगा।—]

चपक छद

मन मैं यौ करत विचारा, सब रात पिऊँ रस सारा।
उड़ि जाउँ होइ जब भोरा, रजनी आऊँ इहि ठौरा ॥७॥
यहु उत्तम ठौर सुवासा, इहँ करिहौं सदा बिलासा।
हम बैठे पुष्प अनेका, कोउ कमल समान न एका ॥ ८॥

[रात भर इसी ध्यान में रहा। दिन उगने से पहले उस सरोवर पर एक हाथी जल पीने आया। जल पीकर क्रीडा करते करते कमलों को उखाड उखाडकर अपनी पीठ पर मारने लगा। वह कमल भी सूँड़ आ गया जिसमें वह भौंरा था। बस कमल को पीठ पर दे मारा, फिर पाँव से कुचला। भौंरे का भी अंदर चुरकट हो गया। सुंगध-लोलुप अलि के यों प्राणांत हुए।]

चंपक छंद

जिन गंध विषै मनु दीना, ते भए भ्रमर ज्यौं छीना।
जिनके नासा बसि नाहीं, ते अलि ज्यौं देषु विलाहीं[2]॥१६॥

१—तृप्ति—संतुष्टि। २—विलीयमान हो जाते हैं—नाश हो जाते हैं।

(ग) मीनचरित्र। दोहा छंद

मीन मग्न जल मैं रहै, जल जीवन जल गेह।
जल बिछुरत प्राणहिं तजै, जल सौं अधिक सनेह ॥१॥

[अपने निवास भवन में मछली आनदपूर्वक रहती विचरती थी। किसी का कुछ खटका नहीं था। दैवात् एक धीवर वसी की डोर में काँटा और मास की 'बेट' लगाकर आया। बेट को अपना भक्षण जान अजान मछली ने उसको खाया तो काँटे से गला छिद गया। निकालने को बहुत कुछ छटपटाई। ऊपर डोरा हिलते ही वसी खिंची। मछली जल से बाहर आई और उसके प्राण पखेरू उड गए। जिह्वा के स्वादवश मीन का यों अत हुआ। धीवर मछली को ले गली गली बेचता फिरा।]

चंपक छंद

सठ स्वाद माहिं मन दीना, जिह्वा घर घर का कीना।
जिस[1] गहिरे ठौर ठिकाना, सो रसना स्वाद बिकाना ॥११॥

[मछली की तो हुई सो हुई। एक बदर स्वादवश पकड़ा गया। बाजीगर ने पृथ्वी में मटकी गाड़ उसमे कुछ खाने को रखा, बदर ने अदर हाथ डाला, बाहर न निकाल सका और चिल्लाया तो बाजीगर ने पहुँचकर गले में रस्सी डाल बाँध लिया और वह उसे घर घर नचाता फिरा।]

जो जिह्वा नहीं सँभारा, तौ नाचै घर घर बारा।
यह स्वाद कठिन अति भाई, यह स्वाद सबनि को घाई ॥२३॥

[बदर की भी क्या चलाई, शृंगी ऋषि महात्यागी थे, वन में रह फल फूल खा घोर तप करते थे। इंद्र ने तपभंग करने को वृष्टि बंद कर दी। राजा ने दैवज्ञों के कहने से ऋषि को बुलाने का उपाय किया।

१—जिसका।

एक वेश्या ने वन मे आकर ऋषि को स्वाद की घाट पर चढ़ाकर उनको वश में कर उनका तप भग कर दिया ।]

जो रसना स्वाद न होई, तो इद्री जगै न कोई ॥ ६५ ॥

दोहा

मीन चरित्र विचारि कै, स्वाद सबै तजि जीव ।
सुंदर रसना रात दिन, राम नाम रस पीव ॥ ६६ ॥

(घ) पतगचरित्र

[दीपक की ज्योति पर, चक्षु-इंद्रिय के वश हो, पतंग ऐसा पड़ता है कि उसे अपनी देह की कुछ सुधि नहीं रहती, और दीपक मे पड़कर भस्म भी हो जाता है ।]

दोहा छद

देह दीप छबि तेल त्रिय, वाती बचन बनाइ ।
बदन ज्योति दृग देषि कै, परत पतंगा आइ ॥ १ ॥

[पतंग यह कहां समझता है कि जिसमें वह पड़ता है, सो अग्नि है । इस दृष्टि का इतना बल है कि बुद्धि नष्ट हो जाती है अपने आपे की सम्हाल भी नहीं रह सकती है ।]

चंपक छंद

यह दृष्टि चहूँ दिश धावै, यह दृष्टिहि षता षवावै ।
यह दृष्टि जहाँ जहँ अटकै, मन जाइ तहाँ तहँ भटकै ॥ ५ ॥
कोइ योगी जती सन्यासी, वैरागी और उदासी ।
जो देह जतन करि राषै, तो दृष्टि जाइ फल चाषै ॥ ८ ॥

[दूसरी भांति विचार से, डाइन की दृष्टि बुरी होती है, उसके पड़ने से किसी बच्चे को दु ख हुआ, तो डाइन की लोगों ने दुर्दशा की,

मूंड़ मुँड़ा, मुख काला कर, नाक काट, गदहे पर चढ़ा, गली बाजार फिरा बाहर निकाला। यह दृष्टि (नजरेवट) लगाने का फल हुआ।]

यह सकल दृष्टि की बाजी, सब भूले पंडित काजी।
यह दृष्टि कठिन हम जाना, देवासुर दृष्टि भुलाना ॥ २० ॥
कोई संत दृष्टि यह आवै, सब ठौर ब्रह्म पहिचानै।
कहै सुंदरदास प्रसंगा, यह देषि चरित्र पतंगा ॥ २१ ॥

दोहा छंद

देषि चरित्र पतंग का, दृष्टि न भूलहु कोइ।
सुंदर रमिता राम कौं, निसि दिन नैनहुँ जोइ ॥ २२ ॥

(ड) मृगचरित्र

[हरिन सुंदर नाद पर ऐसा आसक्त हो जाता है कि शत्रु मित्र का भी भेद उसको नहीं भासता। किसी वन में एक मृग बड़ा ही चंचल और अपनी "मौज" से चरता और विचरता रहता था। एक व्याध इधर आ निकला और उसने ऐसा सुंदर नाद बजाया कि मृग की सुध बुध बिसर गई। जब बधिक ने यह हाल देखा तो तीर मार उसका काम तमाम किया। कर्णेंद्रिय के वश होकर नाद के रस की फांसी में फँसकर मृग ने अपने प्राणही खोए।]

चंपक छंद

यह नाद विषै मन लावै, सो मृग ज्यौं नर पछितावै।
इहिं नाद विषै जौ भीना, सो होइ दिनै दिन छीना ॥ ९ ॥

[इसी प्रकार नाद के वश होकर सर्प भी पकडे जाते हैं। इससे जाना गया कि कर्णेंद्रिय के विषय से अर्थात् नाद या स्वर से जीव मोहित हो जाता है।]

चपक छद

यह नाद करै मन भगा, यह नाद करै वहु रगा।
यहि नाद माहिं इक ज्ञान[1], तिहि समुझै सत सुजानं ॥ २१ ॥

दोहा छद

मृग चरित्र उपदेश यहु, नाद न रीझहु जान।
सुदर यह रस त्याग के, हरिजस सुनिए कान ॥ २३ ॥

(च) पंचेंद्रिय-निर्णय

[अब पाँचों इंद्रियो को समुदाय रूप से वर्णन करते हैं और उनके प्रभाव, बल और स्वभाव के निरोध के फल, और अनवरोध के दोष, तथा इंद्रिय-दमन से मनुष्य-जन्म का साफल्य वर्णन करते हैं।]

दोहा छद

गज अलि मीन पतग मृग, इक इक दोष बिनाश।
जाके तन पचों बसै, ताकी कैसी आश ॥ १ ॥

चंपक छद

अब ताकी कैसी आसा, जाकै तन पंच निवासा।
पंचौं नर कै घट माँहैं, अपना अपना रस चाहैं ॥ २ ॥
इन पचौं जगत नचावा, इन पच सबनि कौं षावा।
ए पंच प्रबल अति भारी, कोउ सकै न पंच प्रहारी[2] ॥ ६ ॥

१—अनाहद नाद से अभिप्राय है जो समाधि अवस्था में होता है।
२—दमन करे।

ए पंचौं पोवै लाजा, ए पचौं करहिं अकाजा।
ए पंच पंच दिशि दौरैं, ए पंच नरक मैं बोरैं ॥ ७ ॥

दोहा छंद

पंचौं किनहु न फेरिया, वहुते करहि उपाइ।
सर्प सिंह गज वसि करै, इंद्रिय गही न जाइ ॥ ११ ॥

[इन पाँचों इंद्रियों के वशीभूत होकर मनुष्य पाखंडी साधुओं
ा भेप बनाकर कोई तो पचाग्नि से, कोई चौड़े बैठकर वर्षा, शीत, और
ाम से, कोई निरंतर खड़े रहने से, कोई मौनादि व्रत धारण करने से
ेह को वृथा कष्ट देते है, और कोई हिमालय मे गलकर, और काशी
रोतादि से देह को नाश करते हैं। वास्तव में तो पाँचो इंद्रियो को
ारना यही सच्चा तप है। जिसने इनको जीत लिया है उसने सबको
ीत लिया है। जिसने इनको दमन किया है वही सच्चा साधु है, यती
, पीर है और वही भगवान् का प्रिय है। इंद्रियों को दमन करने की
वेधि भी कह दी गई है।]

चंपक छंद

कोउ साधू यह गति जानै, इंद्रिय उलटी[1] सब आनै।
इनि श्रवना सुने हरिगाथा, तब श्रवना होहि सनाथा ॥३७॥
हरि दर्शन कौं दृग जोवैं, ए नैन सफल तब होवैं।
हरि चरण कमल रुचि घ्राणं, यह नासा सफल बषाणं ॥३८॥
इहिं जिह्वा हरि गुन गावै, तब रसना सफल कहावै।
इहि अंग संत कौं भेटै, तब देह सकल दुष मेटै ॥३९॥

१—अंतर्मुखी करे, विषयों से खींचकर अंतर्गामी करे। भगवत्
संबंधी विषय को इनका अवलंब बना दे।

कछु और न आनै चीतै[1] , ऐसी विधि इंद्रिय जीतै ।
यह इंद्रिन कौ उपदेशा, कोउ समुझै साधु संदेशा[2] ॥४०॥
यह पंच इंद्रिन कौ ज्ञाना, कोउ समुझै सत सुजाना ।
जो सीपै सुनै रु गावै, सो राम भक्ति फल पावै ॥४१॥
यह संवत सोलह सैका, नवका पर करिए एका[3] ।
सावन वदि दशमी भाई, कविवार कह्या समुझाई ॥४२॥

---

(३) सुख समाधि ग्रंथ

[महात्मा सुंदरदास जी बत्तीस अर्द्ध सवैया वृत्तों में सुख समाधि का निज अनुभव वर्णन करते हैं। जैसा कि सत्याचार्य स्वामी श्री शंकराचार्य आदि वेदांत-प्रवर्तकों ने इस ज्ञान को, सुख समाधि को, अनिर्वचनीय आनंद और अलौकिक सुख बताया है वैसे ही यह महात्माजी भी उसके वर्णन की चेष्टा करते है। वस्तुत "सुख का सोना" समाधिनिष्ठ होना ही है, जैसा कि कहा है, "शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठ[4] "— सुख से कौन सोता है ? जो समाधिनिष्ठ होता है। इस सुख का स्वाद 'गूँगे के गुड़' के समान है, घृत के स्वाद को कोई नहीं बता सकता, यद्यपि सब कोई खाते हैं। परम तत्व की प्राप्ति और स्वात्मानुभव का आनंद जब प्राप्त होता है तो स्वयमेव कर्म उसी तरह छूट जाते हैं जैसे साँप की केंचुली। वह अंतरवृत्ति और मस्ती कुछ अलबेली ही होती है। यही सबसे ऊँची वस्तु है, और घने मोल की वस्तु है, कि जिसके मिल जाने पर वा जिसकी प्राप्ति के अर्थ संसार तुच्छ समझा

१—चित्त में। २—उपदेश की सैन। ३—संवत् १६९१, श्रावण वदि १०, शुक्रवार। ४—शंकराचार्यकृत प्रश्नोत्तर मालिका।

जाकर छोड़ दिया जाता है। नमूने के तौर पर स्वामी सुंदरदासजी इस सुख को कैसा वर्णन करते है सो दिखाते हैं—]

अर्द्ध सवइया छंद

आत्म तत्व विचार निरंतर कियौ सकल कर्म को नाश।
घी[1] सौं घौंटि रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥ ५ ॥
कौण करै जप तप तीरथ व्रत कौण करै यम नेम उपास।
घी सौं घौंटि रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥ ७ ॥
अर्थ धर्म अरु काम जहाँ लो मोक्ष आदि सब छाड़ी आस।
घी सौं घौंटि रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥१२॥
बार बार अब कासौं कहिए हूवौ हृदय कँवल विगास।
घी सौं घौंटि रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥२०॥
अंधकार मिटि गयौ सहज ही बाहरि भीतरि भयौ उजास।
घी सौं घौंटि रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥२१॥
जाकौं अनुभव होइ सुजाणैं पायौ परमानंद निवास।
घी सौं घौंटि रह्यौ घट भीतरि सुख सौं सोवै सुंदरदास ॥२४॥

---

(४) स्वप्नप्रबोध ग्रंथ

[इस स्वप्नप्रबोध ग्रंथ में स्वामी सुंदरदासजी ने यह दिखलाया है कि जैसे कोई मनुष्य सोता हुआ स्वप्न में अनेक पदार्थ और विचित्र

१—घृत का जैसा अनिर्वचनीय आस्वादन होता है और उसके खाने से जो आनद की वृत्ति होती है। घृत का धोरा मुख, गले और पेट में बहुत काल तक रहता है। वैसाही समाधि का सुख प्रतीत होता है।

बातें देखता है और जब तक स्वप्न रहता है सबको सत्य और यथार्थ समझता है, परंतु जब जागता है तो जागृत अवस्था की अपेक्षा स्वप्न अवस्था को मिथ्या समझता है क्योंकि स्वप्न मे जैसा भासता था वैसा जागृत में विद्यमान नहीं मिलता, वैसे ही वह स्थूल संसार परम तत्व रूपी जागृत अवस्था प्राप्त होने पर सापेक्षतया स्वप्न सा मिथ्या वा जादू की भाँति अयथार्थ प्रतीत होता है। जिनको अंतर्दृष्टि वा लिंग-शरीर वा कारण-शरीर की सिद्धि प्राप्त हो जाती है उन ही को इस बात का आभास होने लग जाता है, फिर जिनको परम शुद्ध तत्व निजानंद अवस्था मिल जाती है उनको तो क्यों नहीं हस्तामलकवत् दिखता होगा। अब स्वामीजी की उक्ति का सार देते है।]

दोहा छंद

स्वप्नै मैं मेला भयौ, स्वप्नै माँहि बिछोह।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, नहीं मोह निर्मोह ॥ १ ॥

स्वप्नै मैं राजा कहै, स्वप्नै ही में रंक।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, नहिं साथरो[1] प्रयंक ॥ ५ ॥

स्वप्नै चौरासी भ्रम्यौ, स्वप्नै जम की मार।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न ते, नहिं डूब्यौ नहिं पार ॥११॥

स्वप्नै में सुख पाइयौ, स्वप्नै पायौ दुःख।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, ना कछु दुःख न सुक्ख ॥१५॥

स्वप्नै में यम नेम व्रत, स्वप्नै तीरथ दान।
सुंदर जाग्यौ स्वप्न तें, एक सत्य भगवान ॥१६॥

१—घास का बिछौना।

स्वप्नै मे भारत भयौ, स्वप्नै यादव नाश।
सुंदर जाग्यौ स्वप्नै तें, मिथ्या वचन विलास ॥२४॥
स्वप्न सकल ससार है, स्वप्ना तीनहु लोक।
सुदर जाग्यौ स्वप्न तें, तब सब जान्यौ फोक[१] ॥२५॥

---

(५) वेदविचार ग्रंथ

[स्वामी सु दरदासजी ने २१ दोहों मे वेद भगवान् को त्रिकाड रूप वृक्ष के रूपक मे ऐसा उत्तम वर्णन किया है और उस वृक्ष के कर्म रूपी पत्र, भक्ति रूपी पुष्प, ज्ञान रूपी फल ऐसी सु दरता से लगा-कर दिखाए है कि उसकी अधिक काट छांट करना मानो उस वृक्ष की शोभा विगाडना है। इसलिये हम इसका अधिकाश उद्धृत करते है।]

दोहा छंद

वेद प्रगट ईश्वर वचन, तामहिं फेर न सार।
भेद[२] लहै सद्गुरु मिलें, तब कछु करै विचार ॥ २ ॥
वेद वृक्ष[३] करि वर्णियौं, पत्र पुष्प फल जाहि।
त्रिविध[४] भांतिशोभितसघन, ऐसो तरु यह आदि ॥ ४ ॥

१–तुच्छ, तृण। (मारवाड़ मे फोक एक क्षुद्र पोडा वा घास होता है जिसको ऊँट खाते हैं और जिसके फूल का साग होता है, परन्तु यह घास बलहीन होता है)। फोकट = मिथ्या, यह अर्थ भी है। २–गुह्य और ठेठ पते की बातें बिना सच्चे गुरु के प्रासन्य नहीं। ३–वेद को प्राय वृक्षरूप शास्त्रों मे वर्णन किया है। ४–त्रिकाडवेद विख्यात है–कर्म्म, उपासना और ज्ञान।

एक वचन हैं पत्र सम, एक वचन हैं फूल।
एक वचन हैं फल समा, समझि देषि मति भूल ॥ ५ ॥
कर्म पत्र करि जानिए, मत्र[1] पुष्प पहिचानि।
अत ज्ञान फल रूप है, काड तीन यौं जानि ॥ ६ ॥
विषयी देष्यौ जगत सब, करत अनीति अधर्म।
इद्रिय लंपट लालची, तिनहिं कहे विधिकर्म ॥ ७ ॥
जो इन कर्मनि कौं करै, तजै काम आसक्ति।
सकल समर्पै ईश्वरहिं, तब ही उपजै भक्ति ॥ १६ ॥
कर्म पत्र महिं नीकसै, भक्ति जु पुष्प सुवास।
नवधा विधि निस दिन करै, छाडि कामना आस ॥ १७ ॥
पीछे बाधा कछु नहिं, प्रेम मगन जब होइ।
नवधा कु तब थकि रहै, सुधि बुधि रहै न कोइ ॥ १८ ॥
तब ही प्रगटै ज्ञान फल, समझै अपनो रूप।
चिदानंद चैतन्य घन, व्यापक ब्रह्म अनूप ॥ १९ ॥
वेद वृक्ष यौं बरनियौं, याही अर्थ विचारि।
कर्म पत्र ताके लगै, भक्ति पुष्प निर्धारि ॥ २० ॥
ज्ञान सुफल ऊपर लग्यौ, जाहिं कहै वेदांत।
महा वचन निश्चै धरै, सुंदर तब ह्वै शांत[2] ॥ २१ ॥

१—यहाँ मत्र से उसका कार्य्य उपासन भी अंगीकृत होगा। २—सुंदर दासजी ने अद्वैतवादी होकर भी कर्म, उपासना को भी कैसा निभाया और आवश्यक कहा है, न कि मूर्ख वेदांतियों की नाईं इन उपयोगी साधनो का तिरस्कार किया है।

(६) उक्त अनूप ग्रंथ

[२१ दोहों के छोटे से ग्रंथ "उक्त अनूप" में यह दिखलाया है कि शरीर तमोगुण, रजोगुण, सतोगुणान्वित है, आत्मा नित्य मुक्त है, असंग है, केवल भ्रम ही से शरीर में आत्मा का संग माना गया है। जैसे स्थिर प्रतिबिंब जल के हिलने से हिलता हुआ दिखता है वैसे ही त्रिगुणात्मक देह में निश्चल आत्मा चचल सा देख पड़ता है, जड के संबंध मे चेतन भी ऐसा प्रतीत होता है मानो इसकी चेतन सत्ता खो गई। तमोगुण और रजोगुण अथवा इनके साथ सतोगुण मिश्रित रहता ो उत्तरोत्तर दुष्कर्म, दु ख. उद्यम, सुख और कर्म तथा यज्ञादि शुभ- र्म की वांछादि उत्पन्न होती है परंतु जब शुद्ध सात्विक वृत्ति उत्पन्न ाती है तब कर्म और वासना, क्या इस लोक की और क्या परलोक की, टूट जाती है, यदि वासना रहती भी है तो मुक्ति की। और किसी सद्गुरु को पाकर उससे पूछने पर वह ऐसे शिष्य को उपयुक्त जानकर "भली भूमि मे दीजिए तब वह निपजै पेत" इस आधार पर उसको सत्य उपदेश कर देता है और अल्प काल में ही ऐसे शुद्ध हृदय में निज स्वरूप का स्मरण होकर वह कृतार्थ हो जाता है।]

तासों सद्गुरु यौं कह्यो, तू है ब्रह्म अखंड।
चिदानंद चैतन्य घन, व्यापक सब ब्रह्मंड ॥१५।
उनि वह निश्चय धारि कैं, मुक्त भयौ तत्काल।
देष्यौ रजु कौ रजु तहाँ, दूरि भयौ भ्रम व्याल[1] ॥१६॥
शुद्ध हृदय में ठाहरै, यह सद्गुरु कौ ज्ञान।
अजर[2] वस्तु कौ जारि कैं, होइ रहै गलतान ॥१७॥

१–सर्प। २–जो वस्तु अक्षय प्रतीत होती थी परंतु वास्तव में ऐसी न थी, जैसे देह वा अहंकार आदि।

कनक पात्र में रहत है, ज्यौं सिंहनि कौ दुद्ध ।
ज्ञान तहाँ ही ठाहरै, हृदय होइ जब शुद्ध ॥२०॥
शुद्ध हृदय जाकौ भयो, उहै कृतारथ जानि ।
सोई जीवन मुक्त है, सुंदर कहत बषानि ॥२१॥

---

(७) अद्भुत उपदेश ग्रंथ

[मन और इंद्रियों को विषयों से रोकने वा बचाने के लिये जो विलक्षण उपदेश की विधि ५७ दोहा छंदों में कही है उसी का नाम "अद्भुत उपदेश" ग्रंथ रखा है ।]

परमातम सुत आतमा, ताकौ सुत मन धूत[1] ।
मन के सुत ये पच[2] हैं, पंचौ भए कपूत ॥ २ ॥
परमात्म साक्षी रहै, व्यापक सब घट माहिं ।
सदा अखंडित एकरस, लिपै छिपै कछु,नाहिं ॥ ६ ॥
ताकौं भूल्यौ आतमा, मन सुत सौं हित दीन्ह ।
ताके सुख सुख पावही, ताके दुख दुख कीन्ह ॥ ७ ॥
मनहित बंध्यौ पंच सौ, लपटि गयौ तिन संग ।
पिता आपनो छाडि कैं, रच्यौ सुतन कै रंग ॥ ८ ॥
ते सुत मद माते फिरहिं, गनैं न काहू रंच ।
लोक वेद मरयाद तजि, निसि दिन करहिं प्रपंच ॥ ९ ॥

१–धूर्त वा अवधूत—रिंद । २–पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ ।

पंचौ दौरे पंच दिसि, अपने अपने स्वाद।
नैंनू[1] राच्यौ रूप सौं, श्रवनू राच्यौ नाद ॥ ४० ॥
नथवा राच्यौ सुगँध सौं, रसनू रस बस होय।
चरमू सपरस मिलि गयौ, सुधि बुधि रही न कोय ॥ ४२ ॥

[ये पाँचों पुत्र पांच ठगों के वश पड गए, बहुत अधीन और दीन हो गए। किसी पूर्व पुण्य से सद्गुरु आ प्रगटे और "श्रवनू" को समझदार जानकर पास बुलाया और चुपके से कान में कहा कि तुमको ठग लिए फिरते हैं, वे तुम्हें लूटना मारना चाहते हैं, तुम्हारी कुशल नहीं है, जल्दी चेतो और अपने पिता (मन) से शीघ्र जाकर कहो। "श्रवनू" मन के पास आया और उसने उसको सब समाचार सुनाया। मन श्रवनू के साथ सद्गुरु के पास आया और उसने प्रार्थना की कि लुटेरों से बचाइए। सद्गुरु ने कहा कि यह श्रवनू तुम्हारा पुत्र तो ठीक है तुम्हारे अन्य ४ पुत्र कुपूत हैं उनको बुलाकर समझाओ कि एकमत होकर रहैं और एक ठौर बैठे तो ठगों से छूट जायँ। उपाय यह है कि "नैंनू" तो श्रीहरि के दर्शन में लगे तो "रूप" ठग भाग जाय, और "नथवा" हरिचरण कमलों की सुवास लिया करे तो "गंध" ठग जाता रहे, और "रसनू" हरि नाम को रटा करे तो "स्वाद" ठग चला जाय, और "चरमू" भगवत् से मिलने की रुचि रखा करे तो "स्पर्श" ठग पास न आवे और "श्रवनू" हरिचर्चा करे तो "नाद" ठग भाग जाय। इस उपाय से पुत्रों और पिता ने मिल हरि का भजन किया तो पाँचों ठगों से बच गए और गुरु ने प्रसन्न होकर निर्मल ज्ञान बताया।]

तब सद्गुरु इनि सबनि कौं, भाष्यौ निर्मल ज्ञान।
पिता पितामह परपिता, धरिए ताकौ ध्यान ॥ ५० ॥

१–इंद्रियों के ऐसे नाम मनुष्यों के पुत्रों के नामों से समोच्चार बनाकर दिए हैं।

तब पचौ मन सौं मिलै, मन आतम सौं जाइ ।
आतम पर आतम मिलै, ज्यौं जल जलहि समाइ ॥५३॥
अपने अपने तात सौं, विछुरत ह्वै गए और ।
सद्‌गुरु आप दया करी, लै पहुँचाए ठौर ॥५४॥
प्रसरे हुए शक्तिमय, सकोचे शिव होइ[1] ।
सद्‌गुरु यह उपदेश करि, किए वस्तुमय[2] सोइ ॥५५॥
जैसैं ही उतपति भई, तैसे ही लयलीन ।
सुंदर जब सद्‌गुरु मिले, जो होते सो कौन ॥५६॥

---

(८) पंच प्रभाव ग्रंथ

[यह छोटा सा ३० दोहों का ग्रंथ इस बात को दिखलाने को है कि भक्ति ब्रह्म की मानों पुत्री है और माया उस पुत्री की दासी है। जो पुरुप भक्ति से संबंध रखते हैं वे तो मानो जाति में हैं और जो दासी से, वे जाति बाहर ही हैं। तीनों गुणों के अनुसार भक्ति तीन प्रकार की, उत्तम, मध्यम, अधम होती है और चौथी अधमाधम गति जगत वा संसारी मायालिप्त पुरुपों की है। इन चारों से ऊपर शिरोमणि गति तुरीयातीत ज्ञानी की है। इस प्रकार पच प्रभाव है। इनमें ज्ञानी सर्वोत्तम है। वह माया के गुणों से अलिप्त और असंग रहता है।]

१—इस दार्शनिक युक्ति को विचारे और उच्चतम दर्शन की युक्ति को भी याद करें। भारत के विद्वानों में ये बाते स्वाभाविक सी होती हैं। आकुचन प्रसारण का नियम स्थूल में ही नहीं सूक्ष्म में भी है। मनोनिरोध योग है सो पातंजल मुनि कितना पहले कह गए। यहाँ शक्ति = माया, सृष्टि। शिव = ब्रह्म, निर्गुण वस्तु। २—वस्तु = निर्गुण परात्पर परमात्मा।

देह प्राण कौ धर्म यह शीत उष्ण क्षुत् प्यास।
ज्ञानी सदा अलिप्त है ज्यौं अलिप्त आकास ॥२८॥

---

(८) गुरुसंप्रदाय ग्रंथ

इस ग्रंथ मे प्रतिलोम रीति से अर्थात् स्वयं अपने आपसे लगाकर सुंदरदासजी ने अपने आदि-गुरु ईश्वर तक गुरुपरंपरा देकर अपनी ब्रह्मसंप्रदाय का, किसी के प्रश्न के उत्तर में, परिचय दिया है। यह प्रणाली अन्य किसी भी स्थल में नहीं मिलती।* इसको दोहा चौपाई में वर्णन किया है जिनकी संख्या ५२ है। प्रारंभ में स्वामीजी ने द्योसा नगरी मे दादूजी के आने पर उनसे कैसे उपदेश ग्रहण कर शिष्यत्व को पाया सो भी लिखा है।]

प्रथमहिं कहौं अपनी बाता।
मोहि मिलायो प्रेरि विधाता।
दादूजी जब द्यौसह आए।
बालपनैं हम दरसन पाए ॥ ६ ॥
तिनके चरननि नायो माथा।
उनि दीयो मेरे सिर हाथा।
स्वामी दादू गुरु है मेरौ।
सुंदरदास शिष्य तिन केरौ ॥ ७ ॥

---

* जयगोपालकृत 'दादू जन्मलीला परिचय', चतुरदासकृत 'थंभा पद्धति', राघवदासकृत 'भक्तमाल' (जिसमें दादूजी की ब्रह्मसंप्रदाय का भी विशेष ब्योरा है), हीरादासकृत 'दादूरामोदय' (संस्कृत का ग्रंथ) इत्यादि में यह नामावली कुछ भी नहीं है।

[दादूजी के गुरु वृद्धानंद* हुए। वृद्धानंद के गुरु कुशलानंद। आगे जो विस्तार से नामावली दी है वह इस प्रकार है—वीरानंद, धीरानंद, लब्धानंद, समतानंद, क्षमानंद, तुष्टानंद, सत्यानंद, गिरानंद, विद्यानंद, नेमानंद, प्रेमानंद, गलितानंद, योगानंद, भोगानंद, ज्ञानानंद, निःकलानंद, पुष्कलानंद, अखिलानंद, बुद्धयानंद, रमतानंद, अध्यानंद, सहजानंद, निजानंद, बृहदानंद, शुद्धानंद, अमितानंद, नित्यानंद, सदानंद, चिदानंद, अद्भुतानंद, अक्षयानंद, उजागर, अच्युतानंद, पूर्णानंद, ब्रह्मानंद। इसमें सुंदरदासजी से लगाकर ब्रह्मानंद तक ३८ नाम हैं। ब्रह्मानंद से चलने से ब्रह्मसंप्रदाय कहाई। यह सुंदरदासजी के कहने का अभिप्राय है।]

परंपरा परब्रह्म तैं आयौ चलि उपदेश।
सुंदर गुरु तैं पाइए गुरु बिन लहै न लेश ॥ ४८ ॥

---

(१०) गुन उत्पत्ति† नीसानी ग्रंथ

[इस छोटे से ग्रंथ में २० नीसानी छंदों से त्रिगुणात्मक सृष्टि का प्रसार, ब्रह्मा, विष्णु, महेश त्रिगुण, मूर्ति, इन्द्र और सुर, असुर, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, विद्याधर, भूत, पिशाच आदि की रचना, चंद्रमा, सूरज दो दीपक, नभ के वितान में तारों का जड़ाव, सात द्वीप नौ खंड में दिन रात की स्थापना, सागर और मेरु आदि अष्टकुली पर्वत जिनसे अनेक नदियों का निकास, अठारह भार वनस्पति और अनेक प्रकार के फल फूल और समय समय पर मेघों से पानी का बरसना, मनुष्य पशु

---

* जयगोपाल कृत 'दादूपरची' में इनका उल्लेख है।

† 'नीसानी' शब्द दो अर्थों में लगाया गया है—एक तो छंदनाम, दूसरे नीसानी (निशानी) = पहिचान, लक्षण।

पक्षी आदि, स्वेदज, जरायुज, अंडज, उद्भिज, खेचर, भूचर, जलचर, अगणित कीट पतंग, चौरासी लाख योनि की जीवाजून आदि सृष्टि उस कर्तार ने वैकुंठ से लगाकर शेषनाग पर्यंत विस्तार से बनाई है। इस सृष्टि को तो बना दिया और आप छुपकर सबमें व्यापक होकर भी प्रगट नहीं होता है परंतु फिर भी वह चेतन शक्ति घट घट में "छानी" नहीं रहती। यह पदार्थों के "हलन चलन" आदि से जाना जाता है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि वह सब कुछ करता है, फिर भी लिप्त नहीं होता।]

छंद नीसानी

आपुन बैठे गोपि ह्वै, व्यापक सब कानी[1] ।
अद्ध[2] उर्द्ध दश हूँ दिशा, ज्यों शून्य समानी ॥ १८ ॥
चेतनि शक्ति जहाँ तहाँ, घट घट नहि छानी ।
हलन चलन जातें भया, सो है सैनानी[3] ॥ १९ ॥
जड़ चेतन द्वे भेद हैं, ऐसै समुझानी ।
जड़ उपजै विनसै सदा, चेतन अप्रवानी[4] ॥ २० ॥
लिपै छिपै नहीं सब करै, जिन मंड मंडानी ।
सुंदर अद्भुत देखिए, अति गति हैरानी[5] ॥ २१ ॥

१–ओर, तरफ। २–अध, नीचे। ३–निशानी, पहिचान। ४–अकार वहाँ ह्रस्व है। अप्रमान्य जिसको बाह्य युक्तियों से प्रमाणित वा सिद्ध नहीं कर सकते। ५–है और प्रगट नहीं, करता है और लिप्त नहीं, और बुद्ध्यादि से अग्राह्य है। इससे आश्चर्य है।

(११) सद्गुरु महिमा नीसानी ग्रंथ

[२० नीसानी छन्दों में सुंदरदासजी ने गुरु की महिमा को वर्णन किया है। सुंदरदासजी का काव्यकल्लोल सबसे अधिक दो स्थानो मे देखने में आता है। एक तो गुरु की महिमा और दूसरे ब्रह्म वा ब्रह्मानंद के वर्णन में। यहाँ प्रत्येक नीसानी छंद उनके चित्त का उद्रेक प्रगट करता है वा सद्गुरु के सच्चरित्र का चित्र सा खैंच देता है।]

* नीसानी छंद

राम नाम उपदेश दे, भ्रम दूर उड़ाया।
ज्ञान भगति वैराग हू, ए तीन दृढ़ाया ॥ ३ ॥
माया मिथ्या साँपिनी, जिनि सब जग खाया।
मुख तैं मंत्र उचारि कैं, उनि मृतक[1] जिवाया ॥ ५ ॥
रवि ज्यौं प्रगट प्रकाश में, जिनि तिमिर मिटाया।
शशि ज्यौं शीतल है सदा, रस अमृत पिवाया ॥ ९ ॥
अति गंभीर समुद्र ज्यौं, तरवर ज्यौं छाया।
बानीं[2] बरिषै मेघ ज्यौं, आनंद बढ़ाया ॥ १० ॥
चंदन ज्यौं पलटै बनी, द्रुम नाम गमाया।
पारस जैसै परस तैं, कंचन ह्वै काया ॥ ११ ॥

---

* 'नीसानी' छंद—२३ मात्रा। १३ + १० का विश्राम। अंत में गुरु हो। इसको छंदार्णव में 'हठपट' लिखा है। (छंदरत्नावलि)

१—ज्ञानहीन पुरुष को 'ईशोपनिषद' में आत्महन कहा है सो मृतक समान ही है। २—वास्तव में 'दादूवाणी' ऐसी ही गुणमयी है।

कामधेन चिंतामनी, तरु कल्प[1] कहाया।
सबकी पूरै कामना, जिनि जैसा ध्याया ॥ १३ ॥
सद्गुरु महिमा कहन कौं, मैं बहुत लुभाया।
मुख्य में जिभ्या[2] एकही, ताते पछिताया ॥ २० ॥

---

(१२) बावनी ग्रंथ

[पुराने कवियो मे अकारादि क्रम से बावनी, ककहरा, कक्का, वा 'बारहखड़ी' नाम देकर एक क्षुद्र काव्य लिखने की प्रणाली थी। सुंदरदासजी के ग्रंथों में भी यह बावनी प्रसिद्ध है। इसमे ५२ अक्षर इस प्रकार है, 'ॐ' न, म , सि, द्धं, के पांच और 'अ' से लेकर 'अः' तक (ऋ, ॠ, ऌ ॡ, छोड़कर) १२ और 'क' से लेकर 'ह' तक ३३, और 'क्ष' और 'ज्ञ' (त्र को छोड़कर) २, इस प्रकार ५२ होते है। इस बावनी मे ब्रह्म वर्णन और कई अध्यात्म पक्ष की बाते तथा नीति सम्मिलित वाक्य आ गए हैं। रचना में चमत्कार यह है कि अर्थ की गहनता के अतिरिक्त छंद मे प्रायः ऐसे शब्द लाए गए है जिनके आद्यक्षर वे ही हैं जिनसे छंद प्रारंभ होता है। उदाहरणार्थ थोडे से छंद देते है।]

चौपई छंद

अकह[3] अगह[4] अति अमित अपारा।
अकल[5] अमल अज अगम विचारा ॥
अलष अभेव[6] लखै नहिं कोई।
अति अगाध अविनाशी सोई ॥ १० ॥

१—कल्पतरु = कल्पवृक्ष। २—जिह्वा = जबान। ३—कहने में न आ सके—अनिर्वचनीय। ४—ग्रहण, प्राप्त करने योग्य नहीं। ५—चंद्रमा समान घटने बढने की कला से रहित, निरवयव। ६—भेदरहित—स्वगत विजातीय स्वगत भेदशून्य।

इत उत जित कित है भरपूरा।
इडा पिंगला तें अति दूरा॥
इच्छा रहित इष्ट कौं ध्यावै।
इतनी जानै तौ इत पावै॥ १२॥
कक्का करि काया मैं वासा।
काया माहें कँवल प्रकासा॥
कँवल मांहि करता कौं जोई।
करता मिले कर्म नहिं कोई॥ २२॥
जज्जा जांगत जाग्रत जांणै।
जतन करै तौ सहज पिछांणै॥
जोग जुगति तन मनहिं जरावै।
जरा न व्यापै ज्योति जगावै॥ २६॥
टट्टा टेरि कह्या गुरु ज्ञाना।
टूक टूक ह्वै मरि मैदाना[1]॥
टगय[2] न टेक टूट नहि जाई।
टलै काल औरहि कौं षाई॥ ३२॥
थथ्याथावर जगम थाना।
थिरक[3] रह्या सब माहिं समाना॥
थिरसु होइ थकियौ जिनि राहा।
थाहत थाहत मिलै अथाहा॥ ३८॥

१—विषयादि शत्रुओं से ज्ञान के क्षेत्र में। २—मिटै, पिघलै।
३—ठहरा हुआ।

मम्मा मरि ममता मति आनै।
मोम होइ तब मरम हि जानै॥
मरदहि मान मैल होइ दूरी।
मन मैं मिलै सजीवनि मूरी[1] ॥ ४६ ॥
ररा रती रती समझाया।
रे रे रंक सुमर लै राया॥
रमिता राम रह्या भरपूरा।
राषि हृदै पण[2] छाडि न सूरा ॥ ४९ ॥
ससा सेत पीत नहि स्यामा।
सकल सिरोमनि जिसका नामा॥
संस्कार तें सुमिरै कोई।
सोधे मूल सुखी सो होई ॥ ५१ ॥
हहा हैाण हार पर राषै।
हरषि हरषि करि हरि रस चाषै॥
हाल हाल होइ हेत लगावै।
हँसि हँसि हंसै हंस मिलावै ॥ ५४ ॥
करत करत अच्छर[3] का जैारा।
निशा[4] वितीव प्रगट भयौ भोरा॥
सुंदरदास गुरू मुषि जाना।
षिरै[5] नहीं तासैा मन माना ॥ ५७ ॥

१—जड़, जड़ी (औषधि)। २—प्रण, व्रत। ३—यहाँ अक्षर शब्द का श्लेष है—वर्ण (आंक) और अक्षय ब्रह्म। ४—निशा = अज्ञान। ५—क्षर शब्द के साथ इसका जोड़ सुंदर है। ब्रह्म सदा अक्षर है।

दोहा छंद

चर माहि अचर लष्या, सत् गुरु के जु प्रसाद ।
सुंदर ताहि विचार तै, छूटा सहज विषाद[1] ॥ ५८ ॥

---

(१३) गुरुदया षट्पदी ग्रंथ

[भगवत्पादाचार्य श्रीशंकराचार्य जी की षट्पदी जैसे प्रसिद्ध है वैसे ही दादूपंथियो और सुंदरदासजी के ग्रंथों के पढ़नेवालो में सुंदरकृत षट्पदी है । दोनों का विषय भिन्न हैं, सुंदरदासजी ने दादूजी के शिष्य होने से जो लाभ प्राप्त किया उसको वर्णन करते हुए दादूजी के सिद्धांत-ज्ञान और उनकी दया और महिमा का वर्णन कर दिया है । सुंदरदासजी ने १२ अष्टक बनाए जो इससे आगे आते हैं । यदि षट्पदी को भी इस संख्या में मिलावे तो १३ होते हैं, क्योंकि यह अष्टको की चाल से मिलती जुलती सी है । षट्पदी छ त्रिभंगी छंदों में है । छोटी होने से यहाँ सारी उद्धृत करते है । और ३।४ छोड़-कर अष्टकों के केवल एक एक दो दो नमूने ही देते हैं कि जिनसे उनका कुछ कुछ स्वाद जाना जा सके । १२ अष्टको में से 'भ्रम-विध्वंस में' दादूजी के मत की महिमा है । और 'गुरुकृपा' में दादूजी का स्तोत्र ही है, ऐसे ही 'गुरुदेव महिमा' भी स्तोत्र ही है जिससे लोग गुरु को कैसा मानते हैं, यह प्रगट होता है और 'गुरु उपदेश' में दादूजी के उपदेश के महत्त्व को कहते हुए उनकी स्तुति कही गई है । ये चार अष्टक तो गुरु संबंधी हुए । 'रामजी', 'नाम' और 'ब्रह्मस्तोत्र' परमात्मा के नाम और ध्यान संबंधी हैं । 'आत्मा अचल' में आत्मा के अचल-

---

[1] माया—अनित्य पदार्थ ।

तादि लक्षण वर्णित है। 'पंजाबी' में पंजाबी बोली मे परमज्ञान का उस ढंग से निर्देश है जैसे 'वेदांत के घर' पंजाब में लोग वर्णन किया करते हैं, सूफ़ियों की सी चमक है। 'पीरमुरीद', 'अजब ख्याल' और 'ज्ञानझूलना' ये तीनों प्राय उर्दू फारसी मिश्रित और 'रिदाना तर्ज' पर कहे गए हैं और बड़े ही चटकीले हैं। भाषा में, संस्कृत के ढंग पर, स्तोत्रादि लिखकर भाषा की महिमा को स्वामी जी ने बढा दिया है तथा संस्कृत न जाननेवालों का उपकार किया है।]

दोहा छंद

अलष[1] निरंजन[2] वंदि कै गुरु दादू के पाइ।
दोऊ कर तब जोरि करि संतन कौं सिर नाइ ॥ १ ॥
सुंदर तोहि[3] दया करी सतगुरु गहियौ हाथ।
माता[4] था अति मोहि मैं राता[5] विषया साथ ॥ २ ॥

त्रिभंगी छंद

तौ[6] मैं मतमाता विषयाराता बहिया जाता इम वाता[7]।
तब गोते षाता बूडत गाता होती घाता पछिताता ॥
उनि सब सुखदाता काट्यौ नाता[8] आप विधाता गहिलेला[9]।
दादू का चेला चेतनि भेला[10] सुंदर मारग बूझेला[11] ॥ १ ॥

१–लक्ष्य के अयोग्य—जिसको साक्षात् वा लक्ष्य में नहीं लाया जा सकै। २–निर्मल। ३–तुझको, तुझ पर। (यह प्रयोग विशेष ही है)। ४–मत्त–मस्त। ५–रक्त–रत–लीन। ६–यहाँ 'अथ' शब्द का स प्रयोजन है–फिर, अब। ७–वात से वा हवा में अर्थात् अन्य मतांत की। ८–संसर्ग। ९–पकड़ा। १०–मिला हुआ। ११–समझा हुआ।

तौ सतगुरु[1] आया पंथ बताया ज्ञान गहाया मन भाया।
सब कृत्तम[2] माया यो समुझाया अलप लपाया सचुपाया॥
हौं फिरता धाया उनमुनि[3] लाया त्रिभुवनराया दतदेला[4]।
दादू का चेला चेतनि भेला सुंदर मारग बूझेला॥ २॥
तौ माया वट के[5] कालहि झटके[6] लैकरि पटके सब गटके[7]।
ये चेटक[8] नटके जानहिं तटके[9] नैंक न अटके वै सटके[10]॥
जी डोलत भटके सतगुरु हटके[11] बंधन घटके काटेला[12]।
दादू का चेला चेतनि भेला सुंदर मारग बूझेला॥ ३॥
तौ पाई जरिया सिर पर धरिया विष ऊषरिया तन तिरिया।
जी अब नहि डरिया च चल थिरिया गुरु उच्चरिया सो करिया॥
तब उमग्यौ दरिया अमृत झरिया घट भरिया छूटौ रेला[13]।
दादू का चेला चेतनि भेला सुंदर मारग बूझेला॥ ४॥
तौ देख्यौ सीना[14] माँझ नगीना मारग झीना पग हीना।
अब हौ तू[15] दीना दिन दिन छीना जल बिन मीना यौं लीना॥
जीसौ परवीना रस में भीना अंतरि कीना मन मेला।
दादू का चेला चेतनि भेला सुंदर मारग बूझेला॥ ५॥

१—दादू दयाल। २—कृत्रिम-मिथ्या। ३—उन्मनि मुद्रा से सिद्धि। ४—दत्तात्रेय समान सिद्धि देनेवाला। ५—टूक टूक कर दिया। तोड़ा। ६—झटक दिया—हटा दिया। ७—सबको गटकनेवाले को। ८—चमत्कार। ९—पार गत लोग। १०—निकल गए—नहीं रुके। ११—डपटे-रोके। १२—काटे-तोड़े। १३—धार। १४—छाती-दिल-मन। १५—"तू" का पाठांतर 'तो'। 'तू' रहने से 'दीना' का अर्थ 'दिया' और 'हौं' का अर्थ 'मैं' होगा वा 'मुझे'। मुझे दिया सिद्धफल। अथवा 'तू दीन हो जा' यह अर्थ होगा।

तौ वैठा छाजं[1] अंवरि गाजं रण मे राजं नहिं भाजं ।
जो कीया काजं जोड़ी साजं तोड़ी लाजं यह पाजं ॥
उन सब सिरताजं तवहिं निवाजं आनँद आजं[2] अकेला[3] ।
दादू का चेला चेतनि भेला सुंदर मारग वूझेला ॥ ६ ॥

(१४) भ्रमविध्वंस अष्टक

[८ त्रिभंगी छंदो का यह अष्टक है जिनके आदि मे २ दोहे और अंत में २ छप्पय हैं । त्रिभंगी छंद का अंतिम पाद "दादू का चेला भरम पछेला सुंदर न्यारा है पेला" यह है । इस अष्टक मे यह वात दिखाई है कि अनेक मतो को देखा और खोजा परंतु किसी से तृप्ति न हुई, सवको सदोष पाया । किसी भी मत से भ्रमरूपी तिमिर दूर न हुआ । सद्गुरु "दादू दयाल" के प्रसाद से आत्मज्ञान प्राप्त होकर प्रकाश उत्पन्न हुआ, मतमतांतर के वाद विवाद से छुटकारा मिला ।]

दोहा छंद

सुंदर देष्या सोधि कै, सव काहू का ज्ञान ।
कोई मन मानै नहीं, विना निरंजन ध्यान ॥ १ ॥
पट दर्शन हम षोजिया, योगी जंगम शेष ।
संन्यासी अरु सेवड़ा[4] पंडित भक्ता भेष ॥ २ ॥

त्रिभंगी छंद

तौ भक्तन भावैं दूरि वतावैं तीरथ जावैं फिरि आवैं ।
जो कृत्तम गावैं पूजा लावैं झूठ दिढावैं महिकावैं ॥

१—सवसे ऊपर वैठकर छाजना सिराहना । २—आज—अव । ३—न्यारा—भिन्न, अद्वय । ४—जती से वडे—जैन यती वा साधु ।

अरु माला नावैं[1] तिलक बनावैं क्या पावैं गुरु बिन गैला ।
दादू का चेला भरम पछेला[2] सुंदर न्यारा ह्वै पेला ॥ १ ॥
तौ ये मति हेरे सबहिन केरे गहि गहि गेरे बहुतेरे ।
तब सतगुरु टेरे[3] कानन मेरे जाते फेरे आघेरे ॥
उन सूर सवेरे उदै किए रे सबै अँधेरे नासेला ।
दादू का चेला भरम पछेला सुंदर न्यारा ह्वै पेला ॥ ८ ॥

---

(१५) गुरु कृपा अष्टक

[१ दोहा और १ त्रिभंगी छंद इस तरह आठ युग्मो का अष्टक है और अंत मे १ छप्पय है । यह दादूजी की दिव्य महिमा का स्तवन है, उनकी रचित वाणी की भी प्रशंसा आ गई है । जिन्होंने दादूजी का जीवनचरित्र वा उनकी वाणी को पढ़ा, सुना और समझा है, जिनको ब्रह्मविद्या का कुछ भी चस्का है और जिन्होंने योगियो और संतो की अपार गति का कुछ भी मर्म जाना है वे इन अष्टको को पढ अत्युक्ति नहीं कहेंगे ।]

दोहा छंद

दादू सद्गुरु के चरण, अधिक अरुण[4] अरविंद[5] ।
दु:खहरण तारणतरण, मुक्तकरण सुखकंद ॥ १ ॥

१–नाम अथवा क्रियार्थ में धारे । २–भ्रम पीछे रह गया, छूट गया जिसका । ३–बुलावे-शब्द सुनाया । ४–लाल अथवा अरुणोदय के से प्रकाशवाले । ५–कमल-चरणारविंद ।

त्रिभंगी छंद

तौ चरण तुम्हारा प्राण हमारा तारण-हारा भव पोत[1] ।
ज्यौं गहै विचारा लगै न वारा विनश्रम पारा सो होतं ॥
सब मिटै अंधारा होइ उजारा निर्मल सारा[2] सुखराशी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनाशी ॥ १ ॥

दोहा छंद

सद्गुरु सुधा समुद्र हैं, सुधामई हैं नैन ।
नख सिख सुधा स्वरूप पुनि, सुधा सु बरषत बैन ॥ ८ ॥

त्रिभंगी छंद

तौ जिनि की वानी अमृत बषानी संतनि मानी सुखदानी ।
जिनि सुनि करि प्रानी हृदये आनी बुद्धि थिरानी उनि जानी ॥
यह अकथ कहानी प्रगट प्रवानी नाहिन छानी गंगा सी ।
दादू गुरु आया शब्द सुनाया ब्रह्म बताया अविनासी ॥ ९ ॥

छप्पय छंद

सद्गुरु ब्रह्म स्वरूप रूप धारहि जग माहीं ।
जिनके शब्द अनूप सुनत संशय सब जाहीं ॥
उर महिं ज्ञान प्रकाश होत कछु लगे न वारा ।
अंधकार मिटि जाइ कोटि सूरज उजियारा ॥

१—नाव । चरणों को नाव की उपमा देना कवियों का काम ही है । मिलाओ 'विश्वेशपादाम्बुजदीर्घनौका' इत्यादि । २—सार—तथ्य वस्तु, ब्रह्मज्ञान ।

दादू दयाल दह दिशि प्रगट भगरि भगरि द्वै पप[1] थकी ।
कहि सुंदर पंथ प्रसिद्ध यह सम्प्रदाय परब्रह्म[2] की ॥ ६ ॥

---

(१६) गुरुउपदेश अष्टक

[१ दोहा और १ गीतक छंद ऐसे आठ युग्मों का अष्टक है। छंद का अंतिम चरण "दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रणाम है" यह है। यह अष्टक भी गुरु महिमा संबंधी ही है परंतु इसमें गुरु के ब्रह्मविद्या के उपदेश का वर्णन करते हुए महिमा कही है।]

दोहा छंद

सुंदर सद्गुरु यौं कहै, याही निश्चय आनि ।
ज्यौं कछु सुनिए देषिए, सर्व सुप्र करि जानि ॥ ५ ॥

*गीतक छंद

यह स्वप्न तुल्य दिषाइ दिए जे स्वर्ग नरक उभै कहहिं ।
सुख दु.ख हर्ष विषाद पुनि मानापमान सबै गहहिं ॥
जिनि जाति कुल अरु वर्ण आश्रम कहे मिथ्या नाम हैं ।
दादू दयाल प्रसिद्ध सद्गुरु ताहि मोर प्रणाम हैं ॥ ५ ॥

१–हिंदू और मुसलमान। २–दादूजी की संप्रदाय का नाम ब्रह्म-संप्रदाय भी है। इससे माध्वी संप्रदाय को न समझा जावे। ब्रह्म-संप्रदाय कहे जाने के दो कारण हैं—एक तो केवल ब्रह्म की उपासना है, दूसरे दादूजी के गुरु वृद्धानंद का साचात् श्रीकृष्ण ब्रह्मस्वरूप होना जन्मलीला से लिखा है।

*यह 'हरिगीतिका' छंद है २८ मात्राओं का, १६ + १२ पर विश्राम।

(१७) गुरुदेव महिमा स्तोत्र अष्टक

[आठ भुजंगप्रयातो का यह अष्टक है, आदि अंत में दो दो दोहे भी हैं। केवल गुरु (दादूजी) की महिमा का स्तवन है।]

दोहा

परमेश्वर अरु परम गुरु, दोऊ एक समान।
सुदर कहत विशेप यह, गुरुतें पावै ज्ञान ॥ १ ॥

छंद भुजंगप्रयात

प्रकाशं स्वरूपं हृदै ब्रह्मज्ञानं। सदाचार येही निराकार ध्यानं।
निरीहं निजानंद जानं जुगादू। नमो देव दादू नमो देव दादू ॥ १
क्षमावंत भारी दयावत ऐसे। प्रमाणीक आगे भए संत जैसे।
गह्यौ सत्य सोई लह्यौ पंथ आदू। नमो देव दादू नमो देव दादू ॥ [illegible]

दोहा

परमेश्वर महिं गुरु वसै, परमेश्वर गुरु माहि।
सुंदर दोऊ परसपर, भिन्न भाव सो नाहिं ॥ [illegible]
परमेश्वर व्यापक सकल, घट धारैं गुरुदेव।
घट कौं घट उपदेश दे, सुंदर पावै भेव ॥

---

(१८) रामजी अष्टक

*मोहनी छद

आदि तुमही हुते अवर नहीं कोइ जी
अकह अति अगह अति वर्णनहिं होइ जी

---

* यह मोहनी छद नहीं है किंतु २० मात्रा का छंद है जिसमें १० + १० मात्रा पर विश्राम है। अंत मे

रूप नहिं रेष नहिं स्वेत नहि श्याम जी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ १ ॥
प्रथम ही आपुतैं मूल माया करी।
बहुरि वह कुर्व्विकरि*त्रिगुन ह्वै विस्तरी ॥
पंच हू तत्त्व तें रूप अरु नामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ २ ॥
विधि रजोगुण लिएँ जगत उतपति करै।
विष्णु सतगुण लिएँ पालना उर धरै ॥
रुद्र तमगुण लिएँ संहरै धामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ३ ॥
इंद्र आज्ञा लिएँ करत नहिं और जी।
मेघ वर्षा करैं सर्व्व ही ठौर जी ॥
सूर शशि फिरत है आठहू यामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ४ ॥
देव अरु दानवा यच्छ ऋषि सर्व्व जी।
साधु अरु सिद्ध मुनि होहि निहगर्व्व जी ॥
शेष हूँ सहस्र मुख भजत निःकामजी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ५ ॥
जलचरा थलचरा नभचरा जतजी।
चारिहू षानि के जीव अगिनंत जी ॥

---

* पाठांतर 'कुरुविकरि'। 'त्रिविधिकरि' अर्थात् क्रिया और विकारांतर के अर्थ।

सर्व उपजैं षपैं पुरुष अरु वाम जी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ६ ॥
भ्रमत संसार कतहू नहीं वोर[1] जी।
तीनहूँ लोक में काल को सोर[2] जी॥
मनुष तन यह वड़े भाग तें पाम[3] जी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ७ ॥
पूरि दशहूँ दिशा सर्व्व में आप जी।
स्तुतिहि को करि सकै पुन्य नहिं पाप[4] जी॥
दास सुंदर कहै देहु विश्राम जी।
तुम सदा एक रस रामजी रामजी ॥ ८ ॥

---

(१९) नामाष्टक

[5]मोहनी छंद

आदि तूं अंत तूं मध्य तूं व्योमवत्।
वायु तूं तेज तूं नीर तूं भूमि तत्॥
पंच हू तत्त्व तूं देह तैं ही करे।
हे हरे हे हरे हे हरे हे हरे ॥ १ ॥

१—ओर छोर। २—शोर—जोर शोर। ३—मिलता है। ४—आपका वह स्थान है जहाँ पुण्य और पाप रूपी कर्म्म रहते ही नहीं। अथवा सब पुण्यमय हो पाप का लेश नहीं रहता। ५—यह 'स्त्रग्विणी' है, ४ रगण का 'मोहनी' नहीं है।

च्यारिहू षानि के जीव तैं ही सृजे।
जोनि ही जोनि के द्वार आए वृजे[1] ॥
ते सवैं दुःख मैं जे तुम्हैं वीसरे।
ईश्वरे ईश्वरे ईश्वरे ईश्वरे[2] ॥ २ ॥

जे कछू ऊपजे व्याधिहू आधवे[3]।
दूरि तूही करै सर्व जे वाधवे[4] ॥
वैद तूं औषदी सिद्ध तूं साधवे[5]।
माधवे माधवे माधवे माधवे ॥ ३ ॥

ब्रह्म तू विष्णु तूं रुद्र तू वेष[6] जी।
इंद्र तूं चंद्र तूं सूर तूं शेष जी ॥
धर्म तूं कर्म तूं काल तूं केशवे।
केशवे केशवे केशवे केशवे ॥ ४ ॥

देव मैं दैत्य मैं ऋष्य मैं यत्त मैं।
योग मैं यज्ञ मैं ध्यान मैं लत्त मैं ॥
तीनहूँ लोक मैं एक तू ही भजे[7]।
हे अजे हे अजे हे अजे हे अजे[8] ॥ ५ ॥

राव मैं रंक मैं साह मैं चौर मैं।
कीर मैं काग मैं हस मैं मैार मैं ॥

१–गए–शरीर त्यागकर। २–(भाषा में) अनुप्रास के मिलाने को ऐसा संवोधन दिया गया है। ३–आधि—दुःख। ४–बाधा—विकार। ५–साधक। ६–रूप। अथवा प्रधान मुख्य। ७–उपासनीय। ८–अजन्मा।

सिंह मैं स्याल मैं मच्छ मैं कच्छये।
अच्छये अच्छये अच्छये अच्छये ॥ ६ ॥

बुद्धि मैं चित्त मैं पिंड मैं प्राण मैं।
श्रोत्र मैं बैन मैं नैन मैं घ्राण मैं ॥
हाथ मैं पाव मैं सीस मैं सोहने।
मोहने मोहने मोहने मोहने ॥ ७ ॥

जन्म तैं मृत्यु तैं पुन्य तैं पाप तैं।
हर्ष तैं शोक तैं शीत तैं ताप तैं ॥
राग तैं दोष तैं द्वंद तैं है परे।
सुंदरे सुंदरे सुंदरे सुंदरे ॥ ८ ॥

---

(२०) आत्मा अचल अष्टक

[८ कुंडलिया छंदों में आत्मा की अचलता को और जन-साधारण में जो विपरीत ज्ञान हो रहा है उसको लौकिक दृष्टांतों से स्पष्ट कर दिखाया है, यथा आकाश मे बादल दौड़ते हैं परंतु चंद्रमा दौड़ता दिखाई देता है इसलिये चंद्रमा को दौड़ता हुआ कहते हैं। दीपक में तेल और बत्ती जलती है परंतु दीपक ही को जलता कहते है। इसी तरह अन्य स्थल जानना।]

कुंडलिया छंद

पानी चलस[1] सदा चलै चलै लाव अरु बैल।
पानी चलतो देखिए कूप चलै नहि गैल ॥

१—चरस।

कूप चलै नहिं गैल कहै सब कूवौ चालै।
ज्यूं फिरतौ नर कहै फिरै आकाश पतालै॥
सुंदर आतम अचल देह चालै नहिं ज्ञानी।
कूप ठौर को ठौर चलत है चलसरु पानी॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

तेल जरै बाती जरै दीपक जरै न कोइ।
दीपक जरता सब कहै भारी अचरज होइ॥
भारी अचरज होइ जरै लकरी अरु घासा।
अग्नि जरत सब कहैं होय यह बडा तमासा॥
सुंदर आतम अजर जरै यह देह विजाती।
दीपक जरै न कोइ जरत हैं तेलरु बाती॥ ३॥
बादल दौरे जात हैं दौरत दीसै चंद।
देह संग तैं आतमा चलत कहै मतिमंद॥
चलत कहै मतिमंद आतमा अचल सदाही।
हलै चलै यह देह थापिलै[1] आतम माँही॥
सुंदर चंचल बुद्धि समझि तातें नहिं बौरे[2]।
दौरत दीसै चंद जात हैं बादल दौरे॥ ४॥
गंगा बहती कहत हैं गंगा वाही ठौर।
पानी बहि बहि जात हैं कहैं और की और॥
कहैं और की और परत हैं देखत षाड़ी।
गड़ी ऊषली कहैं कहैं चलती कौं गाडी॥

१—आरोपित कर लेते हैं। २—भिन्न—अन्य।

सुंदर आतम अचल देह हल चल ह्वै भंगा।
पानी वहि वहि जाइ वहै कबहूँ नहिं गंगा॥ ५॥
कोल्हू चालत सब कहैं समझ नहीं घट माहिं।
पाटि लाठि मकड़ी[1] चलै बैल चलै पुनि जाहिं॥
बैल चलै पुनि जाहिं चलत है हाँकनहारौ।
पेली घालत चलै चलत सब ठाठ विचारौ॥
सुंदर आतम अचल देह चंचल है मोल्हू[2]।
समझि नहीं घट माहिं कहत हैं चालत कोल्हू॥ ६॥

---

(२१) पंजाबी भाषा अष्टक

[यह पंजाबी बोली में ८ चौपइया छंदों का अष्टक है। सुंदरदासजी पंजाब में बहुत रहे हैं। इनकी बनावट से स्पष्ट होता है कि पंजाबी का इनको कैसा अच्छा अभ्यास था। पंजाब वेदांत का घर है। वहाँ चरखा कातनेवाली लुगाइयाँ भी "अहं ब्रह्मास्मि" का गीत गाया करती हैं। फिर वहाँ की वाणी की नस नस में वेदांत रस बसा रहे इसमें अचरज ही क्या ? पंजाबी भाषा बड़ी प्यारी है। इसमें ओज और वीर रस स्वाभाविक है। पंजाबी भाषा के पदों का लालित्य भी अकथनीय है। पंजाबी गवैए भी बढ़िया होते हैं। सुंदरदासजी ने भी कई पद पंजाबी में बनाए हैं। इस अष्टक में परमात्मा की खोज, उसके खोजनेवालों और खोज के फल (अर्थात् जिसको खोजते थे वह अपने आप में मिला) इत्यादि बातों का बखान है।

१—लाठ पर जो कब्जे की सी लकड़ी दाबकर फिरती है। २—मूर्ख। (मोलिया का रूपांतर है)।

चौपइया छंद

वहु दिलदा[1] मालिक दिलदी जाणौं दिल मों[2] वैठा देपै।
हुण[3] तिसनो[4] कोई क्यों करि पावै जिसदै[5] रूप न रेपै ॥
वै गौस[6] कुतव[7] पैकंवर वक्कै पीर अवलिया सेपै[8]।
भी[9] सुंदरि कहि न सकै कोई तिसनो जिसदी सिफ्ति[10] अलेपै ॥१॥
वहु[11] षोजनहारा तिसनौ पूछै जे वाहरि नों दौड़े।
वै कोई जाइ गुफा मौं वैठे कोई भौजत चौड़े ॥
भी दिट्ठै[12] सोक[13] हजारनि दिट्ठे दिट्ठे लष्षु करौड़े।
कहि सुंदर षोजु बतावै प्रभुदा वै कोई जगमौं थौड़े ॥ २ ॥
भी· उसदा षोजु करैं वहुतेरे षोजु तिणांदे[14] वोलै।
वह भुल्ले नौं भुल्ला समुझावै सो भी भुल्ला डोलै ॥
वह जित्थैं कित्थै[15] फिरै विचारा फिरि फिरि छिल्लकु[16] छोलै।
कहि सुंदर अपना वंधुन कप्पै[17] सोई वंधनु षोलै ॥ ३ ॥
भी षोजे जती तपी संन्यासी सभनो[18] दिट्ठे रोगी।
वह उसदा षोजु न पाया कीन्ही दिट्ठे ऋषि मुनि योगी ॥

१–का। २–में। ३–और। ४–को। ५–के। ६–कुतुव का नायव। दाहिना या बायाँ एक दूसरा वली (सिद्ध)। ७–वह वली (सिद्ध) जो किसी देश वा स्थान-विशेष का नियामक वा नियंता समझा जाता है। ८–शेख–मुसल्मानी आचार्य या महंत। ९–भाई। और–फिर। १०–सिफत—गुण। ११–वह–और, फिर। १२–देखे। १३-सैकड़ों। १४–उनके। १५–इधर उधर–यहाँ वहाँ। १६–छिलका। वृथा काम। १७–काटै। १८–सब ही।

वै बहुते फिरैं उदासी जगमौं बहुते फिरैं वियोगी[१] ।
कहि सुंदर कोई विरले दिट्ठे अमृत रस दे भोगी ॥ ४ ॥
वहु खोजी बिना षोजु नहिं निकले षोजु न हथ्थों[२] आवै ।
पंषीदा षोजु मीनदा मारगु तिसनों क्यौ करि पावै ॥
है अति बारीकु षोजु नहिं दरसै नदरि[३] किथैं[४] ठहरावै ।
कहि सुंदर बहुत होइ जब नन्हा नन्हेनौ[५] दरसावै ॥ ५ ॥
भी षोजत षोजत सभु जग हंड्या[६] षोज किथैं नहि पाया ।
तूं जिसनौ षोजै षोज तुसीमौं सतगुरु षोज बताया ॥
तैं अपुना आपु सही जब कीता[७] षोज इथां[८] ही आया ।
जब सुंदर जाग पया[९] सुपनै थैं[१०] सभु संदेह गमाया ॥ ६ ॥
भी जिसदा आदि अंतु नहिं आवै मध्यहु तिसदा नाहीं ।
वहु बाहरि भीतरु सर्व निरंतरु अगम अगोचर माहीं ॥
वह जागि न सोवै षाइ न भुष्या जिसदै धुप्पु न छांहीं ।
कहि सुदर आपै आपु अखडत शब्द न पहुँचै तांहीं ॥ ७ ॥
वै ब्रह्मा विष्णु महेस प्रछेमौं जिसदी पुसै न रूंही[११] ।
भी तिसदा कोई पारु न पावै शेषु सहसफणु मूंहीं[१२] ॥
भी यहु नहिं यहु नहिं यहु नहिं होवै इसदै परै सुतूंहीं ।
वह जो अवशेष रहै सो सुंदर सो तूंहीं सो हूहीं ॥८॥

१—वैरागी—योगी । २—हाथ में (आवे) । ३—नजर, दृष्टि । ४—किधर को । ५—बारीक—झीणों को । ६—खोजा । ७—किया । ८—यहीं । ९—पड़ा । १०—से । ११—रोवां, वाल, पशम । १२—मुखवाला ।

(२२) ब्रह्मस्तोत्र अष्टक

[आठ भुजंगप्रयात संस्कृत भाषामय छंदो में परमात्मा का विधि-निषेधार्थवाची शब्दों में स्तवन है। संस्कृत मे ऐसे स्तोत्रो की कुछ कमी नहीं, इससे यहाँ बानगी ही अलम् होगी।]

छंद भुजंगप्रयात

अखंडं चिदानंद देवाधिदेव[1] । फणींद्रादि[2] रुद्रादि इंद्रादि सेवं[3] ।
मुनींद्रा कवींद्रादि चंद्रादिमित्रं । नमस्ते नमस्ते नमस्ते पवित्र ॥१॥
न छाया न माया न देशो न कालो । न जाग्रन्न स्वप्नं न वृद्धो न बालो।
न ह्रस्वं न दीर्घं न रम्यं अरम्य[4]। नमस्ते नमस्ते नमस्ते अगम्यं॥५॥[5]

---

(२३) पीरमुरीद अष्टक

[आठ चामर छद और एक दोहा छंद का यह अष्टक है। इसमे सूफियों (मुसल्मान वेदांतियों) के ढंग का पीर (मुर्शिद) और मुरीद का स्वल्प परंतु अत्यंत सारपूरित संवाद उर्दूमय भाषा में है। एक तालिब (जिज्ञासु) ने ढूँढ़ते ढूँढते योग्य गुरु पाया, तो गुरु से अपनी अभीष्ट जिज्ञासा की। पीर ने 'मिहर' कर कहा कि 'खूद बदगी करता रहेगा तो इस सीधी राह से महबूब (इष्टदेव) को पावेगा'। यह हुई **'शरीयत'**। फिर पूछा कि कैसे बदगी करूँ। तो मुर्शिद ने बताया।]

१–सर्व देवों में बड़ा। २–शेषनाग। ३–सेवैं वा सेव्य। ४–जिसमें बुद्धि आदि रम सकें ऐसा भी नहीं और उसके प्रतिकूल भी नहीं। ५–संस्कृतमय ही कृति है, नितांत संस्कृत बनावट करना स्वामीजी को कभी अभिप्रेत नहीं था। इसी से आधी तीतर आधी बटेर सी बनावट दी गई है कि जिससे दोनों का स्वाद मिले।

चामर छंद[1]

तब कहै पीर मुरीद सौं तूं हिर्सेरा बुगुजार[2] ।
यह बंदगी तब होयगी इस नफ्स कौं[3] गहि मार ॥
भी दुई दिल तैं दूर करिए और कछु नहिं चाह ।
यह राह तेरा तुझी भीतर चल्या तूं ही जाह ॥ ३ ॥

[यह हुई तरीक़त'। फिर मुरीद ने सवाल किया कि इस 'बारीक राह' को बिना देखे कैसे 'बंदा' चल सकता है, आप बता दीजिए। तब पीर ने रास्ता पहचनवाने का 'अमल' बताया। अर्थात् उसी (इस्मेआज़म') राम नाम की विधि बताई, जिससे उसको पहिचान लेगा और उस ठौर पहुँच जायगा। 'जहाँ अरस[4] ऊपर आप बैठा दूसरा नहि और'। यह हुई 'मारिफ़त'। अब मुरीद आगे बढ़ चुका था। 'ठौर' और 'बैठा' ये शब्द सुन बोला कि जो अजन्मा है, जिसके मा बाप नहीं, वह कैसा है सो यथार्थ बताओ और जब वह 'बेवजूद'[5] है तो उसके 'ठौर' होना और उसका बैठना उठना कैसे बन सकते हैं, वह 'बेचून ६ (अद्वितीय-असम) है और 'बेनमूने' भी है। तब पीर ने यह कहकर मौन धारण किया "कौ कहैगा न कह्या न किन हूँ अब कहै कहि कौन"। और मुरीद की ओर देखकर (अर्थात् मर्म की सैन करके) आँखे 'मूँद' लीं। यह हुई 'हक़ीक़त'। इन चारो योग विधियों द्वारा जो स्थान (मंज़िल वा मुक़ाम) प्राप्त होते हैं वा

१—यह कामरूप छंद २६ मात्रा का, ६+७+१० पर यति। २—हिर्स = इच्छा। रा = को। बुगुज़ार = छोड़ दे। ३—नफ़स = अहंकार 'नफसकुशी' अहंकार का मारना। 'तरीक़त' का गुर (वुसूल) है। ४ अर्श = आकाश, स्वर्ग। ५—अशमीर, अस्थूल। ६—विस्मित, अचर भरा। शून्य ध्यान के अनंतर यह एक अवस्था होती है जब स्वात्म-ज्ञ की प्राप्ति होने लगती है। 'आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनं' (गीता)।

प्रतिपादित होते हैं उनको सूफ़ी लोग (१) 'मलकूत', (२) 'जब्र-रूत' (३) 'लाहूत' और (४) 'हाहूत' कहते हैं, जैसे चार प्रकार की मुक्तियाँ संस्कृत ग्रंथों में वर्णित हैं।]

हैरान[1] है हैरान है हैरान निकट न दूर।
भी सपुन[2] क्योंकरि कहै तिसकौं सकल है भरपूर॥
संवाद पीर मुरीद का यह भेद पावै कोइ।
जो कहै सुंदर सुनै सुंदर उही सुंदर[3] होइ॥ ८॥

---

(२४) अजब ख्याल अष्टक

[इस अष्टक में भी सूफ़ियों के ढंग की बातें हैं। इसको ऐसा उर्दू-फारसी-मय शब्दों और वाक्यों से बनाया है कि मुसलमानों को भी इसमें मनोरंजन हो सकता है। कुछ दुर्वेशी का हाल, दुर्वेश उस मंजिल तक कैसे पहुँच सकते हैं, "इश्क हक़ीक़ी" और उससे "हक़ेताला" का मिलना, उससे गाफ़िल और हाजिर कौन है, ईश्वर की महिमा और गुणानुवाद का वर्णन है। इसमें १० दोहे और ८ गीतक छंदों के युग्म हैं। कुछ नमूने देते हैं।]

दोहा छंद

सुंदर जो गाफिल[4] हुआ, तौ वह सांई दूर।
जो बंदा हाजर हुआ, तौ हाजरा हजूर॥ ७॥

१—विस्मय और आश्चर्य में है। २—बात, वर्णन। ३—उत्तम, सिद्ध। सुंदर सा सिद्धि को पहुँचनेवाला। ४—विस्मृत—भूला हुआ। ईश्वरसिद्धि और इष्टप्राप्ति में निरंतर स्मरण और भजन ही प्रधान साधन है। इसमें भक्ति, ज्ञान, विवेक, विचार आदि योग इसी लिये महात्माओं ने अपने अनुभव से कहे हैं।

गीतक छंद

हाजर हजूर कहैं गुसंइयां गाफिलों कौं दूरि है।
निरसंध[1] इकलस[2] आप वोही तालिवां[3] भरपूरि[4] है ॥
वारीक सौं वारीक कहिए वड़ौं वड़ा विसाल है।
यौ कहत सुंदर कब्ज[5] दुंदर अजब ऐसा ख्याल है ॥६॥

दोहा छंद

सुंदर सांई हक्क है, जहाँ तहाँ भरपूर।
एक उसीके नूर[6] सो, दीसैं सारे नूर ॥ ८ ॥

गीतक छंद

उस नूर तैं सब नूर दीसै तेज तैं सब तेज है।
उस जोति सौं सब जोति चमकै हेज[7] सों सब हेज है ॥
आफताब[8] अरु महताब[9] तारे हुकम उसके चाल है।
यो कहत सुंदर कब्ज दुंदर अजब ऐसा ख्याल है ॥ ७ ॥

दोहा छंद

ख्याल अजब उस एक का, सुंदर कह्या न जाइ।
सखुन वहाँ पहुँचै नहीं, थक्या उरैं ही आइ ॥ १० ॥

१—निर = नहीं, संध = मिला हुआ। जिससे अन्द किसी का मिलाव नहीं। अद्वय। २—अफअल के वजन पर अखलस = अत्यंत शुद्ध, पवित्र। ३—ढूँढ़नेवालों को—जिज्ञासुओं, भक्तों को। ४—प्रत्यक्ष है—भक्तों के तो पास ही है। ५—जिसकी द्वंद्वता मिट गई है, अथवा जिस परमात्मा में द्वंद्व का प्रवेश नहीं हो सकता। ६—प्रकाश—ज्योति स्वरूप। ७—यहां अस्ति का अर्थ इससे लिया जा सकता है। ८—सूर्य। ९—चांद।

(२५) ज्ञानझूलना अष्टक

[इस अष्टक में भी वही सूफियों के ढंग का सा मिला जुला रंग आया है। "तसव्वुफ" के अनुसार इस अष्टक में "मारेफत" या "हकीकत" की झलक दरसाई गई है। तालिब (जिज्ञासु) जिस पद्धति से आत्मानुभव की प्राप्ति की तरफ बढता है, अथवा गुरु शिष्य को जिस प्रकार ब्रह्मज्ञान की सूक्ष्म बातें बताता है, वैसी ही कुछ भेद-भरी बातें संक्षेप में महात्मा सुंदरदासजी ने भी कही है, जैसा कि उदाहरणरूप छंदो से प्रगट होगा।]

झूलना[1] छंद

उस्ताद के कदम सिर पै धरौं, अब झूलना षूब बषानता हूँ।
अरवाह[2] में आप विराजता है वह जान का जान[3] है जानता हूँ॥
उसही के डुलाए डोलता हूँ दिल षोलता बोलता मानता हूँ।
उसही के दिषाए मैं देखता हूँ सुन सुंदर यौं पहिचानता हूँ॥१॥
कोई योग कहै कोई जाग[4] कहै कोई त्याग वैराग बतावता है।
कोई नाव रटै कोई ध्यान ठटै[5] कोई षोजत ही थकि जावता है॥
कोई और ही और उपाय करै कोई ज्ञान गिरा[6] करि गावता है।
वह सुंदर सुंदर सुंदर[7] है कोई सुंदर होई सो पावता है॥४॥

१–झूलना छंद २४ वर्ण का, जिसमें ७ सगण और ६ यगण होते हैं। (छंदरत्नावली हरिराम कृत) यहाँ इस नियम के अनुसार नहीं है, केवल २४ अक्षर और अंत यगण है। २–आत्माएँ। 'मलकूत को मकामे अरवाह' सूफी मजहब में कहा है। ३–जीव, आत्मा। ४–यज्ञ। 'यज्ञो वै विष्णु' यह श्रुति है। ५–ठहरै, ठाठ रखै। ६–वाणी। ७–वह सुंदरों से भी अति सुंदर है। चौथे सुदर का अर्थ पवित्र, मलरहित है।

नहीं गोस[१] है रे नहीं नैन है रे नहीं मुष है रे नहीं बैन है रे।
नहिं ऐन[२] है रे नहिं ग़ैन[३] है रे नहिं सैन[४] है रे न असैन[५] है रे॥
नहिं पेट है रे नहिं पीठ है रे नहिं कड़वा है नहिं मीठ है रे।
नहिं दुश्मन है नहिं ईठ[६] है रे नहिं सुंदर दीठ[७] अदीठ है रे॥७॥

---

(२६) सहजानंद ग्रंथ

[यह सहजानंद ग्रंथ २४ चौपाई दोहों मे वर्णित है। इसमे यह बात दिखलाई है कि हिंदू और मुसल्मान आदि के धर्म की प्रक्रियाओ मे कई विधि विधान आडंबर दिए हैं। परंतु विना अनेक कर्मों के अनुष्ठान के ही तथा विना ही विधि विधान और आडंबर के भी ज्ञान वा आनंद की सहज मे प्राप्ति हो सकती है। उसका एक उपाय यह है कि परमात्मा का निरतर ध्यान और इसका नाम निरंतर रटना। इस साध
से पूर्वकाल मे तथा इस काल मे ब्रह्मादिक इंद्रादिक देवता और ऋ
और नारदादिक मुनि और कबीरदास रैदास और दादूदास आदिक त

१—गोश (फारसी) कान, कर्णेंद्रिय। २—३—यह ऐन गैन
मसला सूफी मत में एक समझौती है। ऐन कहने से निर्गुण तत्त्व
और गैन (नुकता लगाने से) सगुणरूपता का बोध होता है।
मसला कुरान में भी आया है। "सिफातुल्लाहेलैसो ब ऐनेजा
और कहा है "जब कि इस नुकत-ए-हस्ती को दिया दिल से उठा
में गैन ने क्या फेर है अल्ला अल्ला।" ४—समझौती, इशारा।
नीय होने से केवल अनुभव प्राप्त महात्माओ के इशारों से नि
जिज्ञासु भेद को समझ सकता है। इससे 'सैन' रूप है ऐस
५—असैन—सैन रहित। पूर्व से विपरीत। अर्थात् उसको य
मे सैन भी काम नहीं देती। ६—इष्ट, मित्र, इष्टदेव। ७—
अदीठ इसका विपरीत।

तारण हो गए हैं। कुछ उदाहरण भी देते हैं। वेदांत का सिद्धांत है कि सत्य ज्ञान की प्राप्ति जब होती है तो मूल सहित पूर्वसंचित कर्मों का नाश और आगे होनेवाले कर्मों का निरोध आप ही हो जाता है। सहजानंद के कहने में यही तात्पर्य है।]

चौपाई छंद

चिन्ह बिना सब कोई आए। इहाँ भए दोइ पथ चलाए ॥
हिंदू तुरक उठ्यो यह भर्मा। हम दोऊँ का छाड्या धर्मा ॥ २ ॥
ना मैं कृत्तम कर्म बषानौं। ना रसूल[1] का कलमा[2] जानौं ॥
ना मैं तीन ताग गलि नाऊँ[3] । ना मैं सुन्नत[4] करि बौराऊँ[5] ॥ ३ ॥
सहजै ब्रह्म अगिन[6] परजारी[7]। सहजि समाधि उनमनी[8] तारी[9]।
सहजै सहज राम[10] धुनि होई। सहजै माँहि समावै सोई[11] ॥४॥

दोहा छंद

जोई आरंभ कीजिए, सोई ससय काल।
सुंदर सहज सुभाव गहि, मेट्यौ सब जंजाल ॥

चौपाई छंद

सहज निरजन सब मैं सोई। सहजै संत मिलै सब कोई ॥
सहजै शंकर लागे सेवा। सहजै सनकादिक शुकदेवा ॥१६॥

१—पैगबर (यहाँ मोहम्मद)। २—दीन इसलाम का मुख्य मंत्र 'लाइलाहे' इत्यादि। ३—पहनूँ। ४—मुसलमान होने का एक प्रधान संस्कार। ५—बावला बनूँ। ६—ब्रह्मरूपी अग्नि। ७—जलाई, प्रत्यक्ष की। ८—उन्मनिमुद्रा। ९—ताली लगाई उन्मनि से तिर गया। १०—स्मरण सिद्धि से समाधि में अनाहत नाद होने लगा। ११—इस प्रकार ज्ञान ध्यान करनेवाला।

सोजा[1] पीपा[2] सहजि समाना। सेन[3] धना[4] सहजै रस पाना॥
जन रैदास[5] सहज कौं वंदा। गुरु दादू सहजै आनंदा॥२३॥

---

(२७) गृह वैराग बोध ग्रंथ

[इसी २१ छंदो के ग्रंथ मे गृहस्थी और वैरागी का संवाद है। गृहस्थी गृहस्थपने को मुख्य मानता है और वैरागी के दोष बताता है, और वैरागी गृहस्थी में सांसारिकता के अवगुण आरोपण करके गर्हित बताता है। अंततोगत्वा यह निर्णय हुआ कि विरक्त का धर्म गृहस्थ से बना रहता है और गृहस्थ का निस्तारा वैरागी से होता है, जैसा कि नीचे के छदों मे दिखाया है। दोनों के संवाद का सार यह है (१) गृहस्थी ने वैरागी से कहा कि या तो तुमसे परमेश्वर रूठ गया है या तुमको किसी ने बहका दिया है कि तुम विरक्त हुए। तुमने बुरा किया कि बिना विचारे ही घर छोड़ आए क्योंकि जनक वसिष्ठ आदि महात्माओं ने तो घर ही में सब कुछ पाया है, घर में स्त्री पुत्रादिक का जो सुख है उसको छोड़कर जो मुक्ति चाहता है वह ज्ञानी नहीं है क्योंकि उनको देखने से सब दु ख भाग जाते हैं, वह आनद कोटि मुक्तियों मे भी नहीं प्राप्त होता। तुमने पुत्र-कलत्र को छोड़ा सही पर तुमसे माया नहीं छूटी। फिर तुम क्या वैरागी हो ? तुम्हारी वासना मिटती

१—सोजजी भक्त भगवान के भक्त थे। २—पीपाजी भक्त रामानदजी के शिष्य थे। गागरोन का राज्य छोड़कर भक्ति ज्ञान में तत्पर होकर भगवत्कृपा के भागी हुए। ३—सेनजी भक्त रामानंदजी के तीसरे शिष्य थे। बांधोगढ़ के राजा के नाई थे। भगवान ने एक बार इनकी एवज का काम किया था। ४—धनाजी भक्त रामानंदजी के शिष्य थे। इनका खेत भगवान ने निपजाया था। ५—रैदासजी भक्त, पूर्व जन्म में और इस जन्म में भी श्रीरामानंदजी के शिष्य थे।

ही नहीं, हम गृहस्थियों से आशा किया करते हो। चील की नाईं आकाश में उड़ गए तो क्या हुआ, देखते तो हो भोजनाच्छादन रूपी धरती ही की तरफ। याद रखो, गृहस्थी का आश्रम बड़ा है जहाँ जती संत चले आते हैं, और वैरागियों के मन का डाँवाडोलपना तभी मिटता है जब भोजन पेट में पड़ता है। (२) इसके उत्तर में वैरागी ने कहा कि मुझको वैराग्य धारण से ज्ञान का प्रकाश मिला है, संसार को उदासीन देखकर वैरागी हुआ हूँ, प्राय विरक्त लोगों ने संसार ही छोड़ा है जैसे ऋषभदेव, जड़भरत आदि। घर दु खो का भाण्डार है, जो इस अंधकूप में पड़ा रहे वह मुक्ति को क्या जाने। सच है, नरक का कीड़ा नरक ही को पसंद करता है, चंदन को वह नहीं चाहता। इस शरीर को—जिसमें हाड़, मांस, मेद और मज्जा भरे है और नव द्वार से निरंतर मल निकला करता है—वैरागी घोर नरक समझता है। माया वही है जिससे आदमी बँधा रहे। वैरागी के कोई वांछा नहीं रहती, उसकी वांछाएँ अनायास ही पूरी हो जाती हैं। उसका शरीर इस संसार में जल में कमल के समान निर्लिप्त है। भोजनादि का चाहना शरीर का धर्म है, इसके लिये गृहस्थी के यहाँ जाना कोई दोष नहीं। वैरागी गृहस्थी के घर आकर जब भोजन पाता है तो गृहस्थी के पंच दोष (चूल्हा, चाकी, भुवारी आदि जन्य) छूट जाते है।]

रुचिरा छंद[1]

विरक्त धर्म रहै जु गृही तें गृहि कौं विरकत तारै[2] जू।

१—रुचिरा द्वितीय प्रकार में विषम चरण १६ के और सम १४ मात्रा के होते हैं (छंदप्रभाकर)। २—गृहस्थ के होने से विरक्त की भिक्षा आदि सेवा रक्षा होती है। सभी विरक्त हो जाते तो शीघ्र प्रलय हो जाता। और विरक्त धर्म के मर्म्म को गृहस्थियों को उपदेश करके उनको सन्मार्ग पर लाकर भवसागर से पार उतार देते है।

ज्यों बन करै सिंह की रक्षा सिंहसु बनहिं उवारै[1] जू ॥२९॥
विरकत सुतौ भजै भगवंतहिं गृही सु ताकी सेवा[2] जू ।
हय के कान[3] बराबर दोऊ जती सती को भेवा[4] जू ॥३०॥

---

(२८) हरिबोल चितावनी ग्रंथ

[सुंदरदास जी ने 'हरिबोल चितावनी', 'तर्क चितावनी और विवेक चितावनी' ऐसे तीन छोटे ग्रंथ लिखे हैं और सवैया (सुंदर विलास) में भी 'उपदेश चितावनी' और 'काल चितावनी' ये दो अंग आए है। 'चितावनी' शब्द से अभिप्राय सावधान वा चैतन्य करने का है। जिस उपदेश से मनुष्य की भूल, असावधानी, भ्रम वा विपरीत ज्ञान दूर किया जाय उसके लिये 'चितावनी' ऐसा नाम दिया जाता है। इन ग्रंथो में छंदों का चतुर्थ पाद प्रायः ऐसा है जो चितावनी करने में मुख्य प्रयोजन रखता है और वह प्रत्येक छंद मे बार बार आता है। यथा, इस प्रथम 'चितावनी' में "हरि बोलौ हरि बोल" यह चरण तीसौं दोहों में बराबर आया है। इस चितावनी में मनुष्य-जन्म की महिमा और उसका वृथा खोने का उलाहना और उपहास्य तथा भगवद्भजन सदा प्रत्येक अवस्था में करते रहने का प्रबोधन किया है। इन चितावनियों मे एक मुख्य चमत्कार यह भी है कि इनकी भाषा चटकीली और मुहावरेदार है जिसमें प्रायः ऐसे शब्दों और वाक्यो का प्रयोग है कि जो लोकप्रिय, जनश्रुत वा सर्व-व्यवहृत होते हैं। कुछ दोहे छाँट कर देते हैं।]

दोहा छंद

रचना यह परब्रह्म की, चौराशी झकझोल[5] ।

१—सिंह के भय से बन को कोई काट नहीं सकता। २—सेवा करे। ३—घोड़े के दोनों कान बराबर होना ही शोभा है। ४—भेद। जोड़ा। ५—झगड़ा, झञ्झट।

मनुष देह उत्तम करी, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥१॥
मेरी मेरी करत है, देषहु नर की भोल[1] ।
फिरि पीछै पछितायँगे, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥४॥
हा[2] हा हू हू मैं मुवौ, करि करि बोल मथोल[3] ।
हाथि कछू आयौ नहीं, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥८॥
धाम[4] धूम बहुतैं करी, अंध अंध धमसोल[5] ।
धेवक धीना[6] ह्वै गए, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥१०॥
मोटे मीर कहावते, करते बहुत ढफोल[7] ।
मरद गरद में मिलि गए, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥१८॥
तेरौ तेरैं पास है, अपने माँहि टटोल ।
राई घटै न तिल बढ़ै, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥२८॥
सुंदरदास पुकारि कै, कहत बजाएँ ढोल ।
चेति सकै सो चेतियौ, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ॥३०॥

---

(२८) तर्क चितावनी ग्रंथ

[५६ चौपाई छंदो में मनुष्य की देह की चारो पनोतियों का मनोग्राही वर्णन और उनमें प्रभु का विस्मरण रहकर मायाजाल के बंधन में पड़े रहना और तत्त्वज्ञान को बिसर जाना और ममता की पोट सिर पर धरे धरे जन्म भर भ्रमते रहना, अंत में हीन दीन होकर अपनी पाली

१—भूल । २—हँसी ठट्ठा—हलकी बातें । ३—सलाह—मनसूबे । ४—मार धाड़—धामक धड़िया । ५—धमसोल—ऊधम । ६—धीया—बिगड़ गए । किया कराया सब मिट्टी हो गया । ७—शेखी भरे दिखाऊ काम । निरर्थक बड़ाई ।

ऐसी प्यारी देह को छोड़कर चला जाना और फिर इस जन्म के किए पर पछताना, इत्यादि बातों का सूक्ष्म रीति से ऐसा सुंदर चित्र सुंदरदास जी ने खींचा है मानो किसी चित्रकार ने "मीनियेचर पेंटिंग" (Miniature painting) का ही काम कर दिखाया है। प्रत्येक चौपाई का चौथा चरण "श्रहया मनुषहुं बूझि तुम्हारी" ऐसा आया है। कुछ चौपाइयाँ देते है।]

चौपाई छंद

पूरण ब्रह्म निरंजन राया।
जिन यहु नख सिख[1] साज बनाया॥
ताकहुँ भूलि गए बिभचारी।
श्रहया[2] मनुषहुं बूझि[3] तुम्हारी॥ १ ॥
गर्भ माँहि कीनो प्रतिपाला।
तहाँ बहुत होते बेहाला॥
जनमत ही वह ठौर बिसारी[4]।
श्रहया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ २ ॥
बालापन महिं भए अचेता।
मात पिता सौं बाँध्यो हेता॥
प्रथमहिं चूके सुधि न सँभारी।
श्रहया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ३ ॥
बहुरि कुमार अवस्था आई।
ताहू माँहि नहीं सुधि काई॥

१—सिर से पाँव तक—सांगोपांग शरीर। २—श्रहया = संबोधनार्थ, अरे, हे। ३—समझ। ४—भूल गए। जो प्रण गर्भ में किया सो याद न रहा।

षाइ षेलि हँसि रोइ गुदारी[1]।
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ४ ॥
भयौ किशोर काम जब जाग्यौ।
परदारा कौं निरषन लाग्यौ ॥
व्याह करन की मन महिं धारी।
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥ ५ ॥
भयौ गृहस्थ बहुत सुख पाया।
पंच सषी मिलि मंगल गाया ॥
करि संयोग वही झषमारी।
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ७ ॥
जौ त्रिय कहै सु अति प्रिय लागै।
निशि दिन कपि ज्यूँ नाचत आगै ॥
मार न सहै सहै पुनि गारी।
अइया मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥ १५ ॥
यौं करते संतति होइ आई।
तब तौ फूल्यो अंग न माई ॥
देत बधाई ता परिवारी।
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ २० ॥
पुत्र पौत्र बंध्यौ परिवारा।
मेरे मेरे कहै गँवारा ॥

१—गुजारी, गमाई, खोई।

करत बड़ाई सभा मँझारी।
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ २३ ॥
उद्यम करि करि जोरो माया।
कै कछु भाग्य लिख्यौ सो पाया ॥
अजहूँ तृष्णा अधिक पसारी[१]।
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ २४ ॥
निपट वृद्ध जब भयौ शरीरा।
नैननि आवन लाग्यौ नीरा[२] ॥
पौरी परयो करै रषवारी।
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ २६ ॥
कानहु सुनै न आँषिहु सूझै।
कहै और की औरे बूझै ॥
अब तौ भई बहुत विधि ख्वारी।
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ३० ॥
बेटा बहू नजीक न आवैं।
तू तौ मति चल कहि समुझावैं ॥
टूक देंहि ज्यों स्वान विलारी[३]।
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ३१ ॥
ताकौ कह्यौ करै नहि कोई।
परवस भयौ पुकारै सोई ॥

१—फैली। २—निर्बलता से जल पड़ने लगा। ३—बिलाई, बिल्ली।

मारी अपने पाँव कुदारी[1] ।
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ३५ ॥

अब तौ निकट मौति चल आई ।
रोक्यौ कठ पित्त कफ वाई ॥
जम दूतनि फाँसी विस्तारी[2] ।
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ३७ ॥

हंस[3] वटाऊ किया पयाना ।
मृतक देषि के सबै डराना ॥
घर महिं तै ले जाहु निकारी ।
अइया मनुषहु बूझि तुम्हारी ॥ ३९ ॥

लै मसान मैं आए जबही ।
कीए काठ एकठे सबही ॥
अग्नि लगाइ दियौ तन जारी ।
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ४३ ॥

सुकृत न कियौ न राम सँभार्यौ ।
ऐसो जन्म अमोलिक हार्यौ ॥
क्यौं न मुक्ति की पौरि[4] उघारी ।
अइया मनषहुं बूझि तुम्हारी ॥ ४८ ॥

१–कुल्हारी—अपने पाँव कुल्हारी मारना—अपना बुरा आप करना (मुहावरा है)। २–फाँसी को गले पर फेंका। ३–प्राण-पखेरू—जीव। ४–द्वार—मुक्ति का द्वार ज्ञान और भक्ति है। उसका उघारना उसका साधन।

कबहुँ न कियौ साधु कौ संगा।
जिनकै मिलै लगै हरि रंगा॥
कलाकंद तजि बनजी षारी[१]।
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ४६॥
सकल शिरोमनि[२] है नरदेहा।
नारायन कौ निज घर येहा॥
जामहिं पइए[३] देव मुरारी।
अइया मनुषहुं बूझि तुम्हारी॥ ५५॥

---

(३०) विवेक चितावनी ग्रंथ

[४० चौपाई छंदों में शरीर की अनित्यता, मृत्यु अवश्य ही होगी, इस उपदेश के साथ विवेक की उत्तेजना की गई है कि यह शरीर अनित्य है, इसका अन्य व्यक्तिगत संबंध भी अनित्य है, जैसे शरीर की स्थिति का निश्चय नहीं वैसे मृत्यु के आने का निश्चय भी नहीं। न जाने कब शरीरपात हो जाय, इसलिये अमरत्व के हेतु ब्रह्मनिष्ठ होना ही एक उपाय है। सब ही छंदो में "समझि देपि निश्चै करि मरना" यह अंत्य चरण है। इसका ढंग नीचे लिखे छंदों से प्रतीत होगा जो उदाहरणवत् दिए जाते हैं।]

१—खराब खार, जो पुराने समयों में बहुत सस्ता होता था। २—मनुष्य शरीर अन्य योनियों की अपेक्षा उत्तमतर है क्योंकि इसमें विवेकादि विशेष है जिनसे परमार्थ साधन हो सकता है। अन्य योनियो में यह शक्ति नहीं है इससे वे निकृष्ट और यह श्रेष्ठ है सो स्पष्ट है परंतु मनुष्य इस बात को शीघ्र ही भूल जाता है। ३—पाइए। मिल जाते है। भगवत्साक्षात्—ब्रह्म की प्राप्ति।

माया मोह माँहि जिनि[१] भूलै ।
लोग कुटंव देखि मत फूलै ॥
इनके संग लागि क्या जरना[२] ।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ ३ ॥
अपने अपने स्वारथ लागै ।
तूँ मति जानै मोसन[३] पागै[४] ॥
इनकौं पहिले छोडि निसरना ।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ ५ ॥
या शरीर सौं ममता कैसी ।
याकी तौ गति दीसत ऐसी ॥
ज्यौं पाले का पिंड पिघरना ।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ ९ ॥
दिन दिन छीन होत है काया ।
अँजुरी मैं जल किन ठहराया ॥
ऐसी जानि वेगि निस्तरना ।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ ११ ॥
षंड विहंड काल तन करिहै ।
संकट महा एक दिन परिहै ॥
चाकी माँहि मूँग ज्यौं दरना ।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ १३ ॥

१–मत । २–जलना, मरना । क्या इनका इतना घनिष्ट संबंध रहेगा कि सती की नाईं इनके साथ ही जलेगा । ३–साथ । ४–लिपटे ।

काल खड़ा सिर ऊपर तेरे ।
तू क्या गाफिल इत उत हेरे ॥
जैसे व्धिक हतै तकि हरना ।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ १७ ॥

जोरि जोरि धन भरे भँडारा ।
अर्ब षर्ब कछु अंत न पारा ॥
षोषो[1] हाथो हाथि पकरना ।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ १९ ॥

वहु विधि संत कहत हैं टेरै ।
जम की मार परै सिर तेरै ॥
धर्मराइ कौं लेषा भरना ।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ २४ ॥

वेद पुरान कहै समुझावै ।
जैसा करै सु तैसा पावै ॥
तातैं देखि देखि पग धरना ।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ २९ ॥

काम क्रोध वैरी घट माहीं ।
और कोउ कहुँ वैरी नाहीं ॥
राति दिवस इनहीं सौं लरना ।
समझि देखि निश्चै करि मरना ॥ ३१ ॥

१—खाली—रीती ।

गर्व न करिए राजा राना।
गए विलाइ देव अरु दाना॥
तिनके कहूँ पोजहू पुर[1] ना।
समझि देखि निश्चै करि मरना॥ ३९॥
जुदा न कोई रहने पावै।
होइ अमर जो ब्रह्म समावै॥
सुंदर और कहूँ न उबरना[2]।
समझि देखि निश्चै करि मरना॥ ४०॥

---

(३१) पवंगम छंद

[इस ग्रंथ का नाम ग्रंथकर्ता ने और कुछ न रखकर केवल "पवंगम" ही रख दिया जो उस छंद का नाम है जिसमें यह ग्रंथ वर्णित है। इसमें पवंगम (अरिल) के १८ छंदों में विरहिनी का मनोविकार वा पुकार कही गई है। प्रत्येक छंद के चरण के अंत्य पद में "लाटानुप्रास" की रीति से, शब्दालंकार की चतुराई से, वेदांत के कई रहस्य बताए हैं। एक ही शब्द को चार चार अर्थों में सरसता से प्रयोग किया है। सब छंद देते हैं।]

पवंगम[3] छंद (अरिल छंद)

पिय के विरह वियोग, भई हूँ बावरी।
सीतल मंद सुगंध, सुबात न बावरी॥

१—पाँव—खोज, खुर = निशान। २—बचना। बचने का और दूसरा उपाय ही नहीं है। ३—पवंगम (प्लव गम) छंद—२१ मात्रा का जिसमें आदि गुरु हो, अंत में रगण हो वा गुरु हो। यह साधारण मत है। जब ११ + १० पर यति हो तो प्राय अरिल कहाता है और इसी

अब मोहिं दोष न कोइ परौंगी बावरी।
(परि हाँ) सुंदर चहुँ दिशि विरह सुघेरी बावरी* ॥१॥
विरहनि के मन माहिं, रहै यह सालरी।
तजि आभूषण सकल, न ओढ़त सालरी॥
वेगि मिलै नहिं आइ, सु अबकी सालरी।
(परि हाँ) सुंदर कपटी पीव, पढ़ै किहि सालरी† ॥६॥
दूभर रैनि विहाय, अकेली सेजरी।
जिनके संग न पीव, विरहिनी सेजरी॥
विरहै सकल वाहि, विचारी सेजरी।
(परि हाँ) सुदर दु.ख अपार न पाऊँ सेजरी‡ ॥११॥

को चांद्रयाण भी कहते हैं जब ११ मात्रा जगणांत और १० मात्रा रगणांत हो। (छंदप्रभाकर पृ० ५०) इस छंद में 'पर हाँ' सुखोच्चारण वा गान के अर्थ सिवाय लगा दिया जाता है, छंद में उसकी गणना नहीं है।

* प्रथम छंद मे 'बावरी' शब्द में ४ अर्थ हैं—(१) पगली (२) पवन+री (अरी सखी), (३) वापी—बावली, (४) वावर=घेरा।

† छठे छंद मे 'सालरी' के ४ अर्थ हैं—(१) खटका—काँटा, (२) एक प्रकार की ओढ़नी, दुपट्टा, (३) साल=संवत्+(री), (४) शाल=चटसाल।

‡ ११ वें छंद में—दूबरे=दुखदायिनी, बिहाय=छोड़ वा हाय! और 'सेजरी' के ४ अर्थ—(१) पलंग, बिछौना (री), (२) से=वे+जरी=जली, बली, (३) से=वह+जरी=जड़ी, बँधी। (४) से=वह, जरी=जड़ी, बूटी, दवा।

पीव विना तन छीन, सूकि गई सापरी ।
हाड़ रहै कै चाम, विरहनी सापरी ॥
निशि दिन जोवै माग, विचारी सापरी ।
(परि हाँ) सुदरपति कौं छाँड़ि, फिरत है सापरी* ॥१४॥

---

(३२) अडिल्ला[1] छंद

[उपर्युक्त 'पवंगम' ग्रंथ की नाईं यहा छुड-भेद से अर्थात् अडिल्ला छंदों में विरहिनी की कथा गाई गई है और वहीं लाटानुप्रास का प्रयोग करके अनेकार्थ का संयोग किया गया है जैसा, नीचे के छंदों से ज्ञात होगा ।]

पिय विन सीस न पारौं पाटी ।
पिय बिन आँषिनि बाँधौं पाटी ॥

---

* १४ वें छंद में 'सापरी' के ४ अर्थ—(१) साख = फसल, (२) शाखा = डाली, अथवा साँख (पतली), (३) सा = वह + खरी = खड़ी, (४) सा = वह, खरी = गधी । अर्थात् दीन-हीन दशा में ।

१—अडिल्ला छुद—चौपाई छंद का एक भेद है । इसमें १६ मात्रा अत्य लघु और युग्मचरण वा चरण चतुष्टय में अंत में यमक हो अर्थात् वही शब्द अर्थांतराद से आवे । सुंदरदासजी ने अंत के चारों चरणों में यमक दिया है और अडिल्ला कहा है । और आगे ३३ वे ग्रंथ में मडिल्ला में 'मडिल्ल' छुद के दो दो चरणों में यमक रखा है । (हरिदास कृत छंद-रत्नावली) । 'छंदप्रभाकर' में इसी को 'डिल्ली' लिखा है और लक्षण यह दिया है कि अत में भगण प्रत्येक चरण में हो, यमक का कुछ नियम नहीं दिया है ।

पिय विन और लिपूँ नहिं पाटी ।
सुंदर पिय विन छतियाँ पाटी[1] ॥ ५ ॥
मैं तौ प्रीति करत नहिं जाना ।
पीव सु लै आए नहि जाना ॥
निशि दिन विरह जरावत जाना ।
सुंदर अब पियही पै जाना[2] ॥ ६ ॥
पिय विन जागी रजनी सारी ।
पिय विन कबहुँ न पहरी सारी ॥
सुंदर विरह करवत सारी ।
विरहनि कहौ रहैं क्यों सारी[3] ॥ १० ॥
मात पिता अरु काका काकी ।
सुत दारा गृह संपति काकी ॥
ज्यों कोइल सुत सेवै काकी ।
सुंदर रिद्ध रापि करि काकी[4] ॥ १३ ॥

१—पाटी के चार अर्थ—(१) पटिया । सीमंत । (२) पट्टी । किसी को न देखूं । (३) पत्री । अथवा पाटी पर चित्र । (४) ढकी वा गडी ।

२—'जाना' के चार अर्थ—(१) सीखा, (२) बरात, (३) जीव, (४) चलना ।

३—'सारी' के चार अर्थ—(१) सब, (२) ओढनी, (३) खैंचीं वा सार की बनी हुई । (४) साबित वा स्वस्थ सँवारी हुई ।

४—'काकी' के चार अर्थ—(१) चाची, (२) किसकी, (३) कव्वी, (४) क्या किया ।

गर्भ माहिं तब किन तूँ पाला।
अब माया कौं दौडत पाला॥
ऐसी कुबुद्धि ढाँक दे पाला।
सुंदर देह गले ज्यौं पाला[१] ॥ १५ ॥
आगैं महापुरुष जे भूता।
तिनि बसि कीया पंचौ भूता॥
अब ये दीसत नाना भूता।
सुंदर ते मरि मरि ह्वै भूता[२] ॥ २० ॥
ऐसे रटि जैसे सारंगा।
अनत न भ्रमि जैसे सारंगा॥
रसिक होइ जैसे सारंगा।
तो सुंदर पावै सारंगा[३] ॥ २४ ॥
रिपु क्यौं मरै ज्ञान कौ सरना।
तातैं मन में वासी सरना॥
देषि बिचारि बहुरि औसरना।
सुंदर पकरि राम को सरना[४] ॥ २६ ॥

१—'पाला' के चार अर्थ—(१) पोषण किया, (२) पैदल, (३) पाल, ढक्कन, (४) बरफ।

२—'भूता' के चार अर्थ—(१) हुए, (२) पच महाभूत, (३) प्राणी—नानात्व करके, (४) भूत पिशाच।

३—'सारंगा' के चार अर्थ—(१) पपीहा, (२) हिरण, (३) मोर, (४) शारंगपाणि—अर्थात् परमात्मा अथवा वह + रंग।

४—'सरना' के ४ अर्थ—(१) तीर + नहीं, (२) सड़ना—बिगड़ना, (३) अवसर + नहीं, (४) शरण।

(३३) मडिल्ला[1] छंद ग्रंथ

[" पवगम छंद" और " अडिल्ला छंद" नाम वाले ग्रंथों की भांति " मडिल्ला छंद" नाम का भी ग्रंथ २० मडिल्ला (चौपाई) छंदों में लिखा है परंतु इसमें विरहिन की पुकार की जगह उपदेश-रत्न भिन्न भिन्न लिखे है। भेद इतना ही हैं कि इसमें लाटानुप्रास के स्थान में यमक आए है अर्थात् दो चरणों में एक शब्द और दो चरणों में दूसरा शब्द।]

बंधन भयौ प्रीति करि रामा। मुक्त होइ जौ सुमरे रामा[2] ॥
निश दिन याही करै विचारा। सुंदर छूटै जीव विचारा[3] ॥१॥
एक कर्म बंधन ह्वै मोटा। तैं बंधो कर्मन को मोटा[4] ॥
याही सीष सुनै किन काना। सुंदर देह जगत सौं काना[5] ॥२॥
मूरष तृष्णा बहुत पसारी। हरद हींग लै भया पसारी[6] ॥
औरनि कौं ठगि ठगि धन साँचा। सुंदर हरिसौं होइ न साँचा[7]॥३॥
तृष्णा करि करि परजा भूले। तृष्णा करि करि राजा भूले[8]॥

१—मडिल्ला छंद का किसी छंद-ग्रंथ में नाम नहीं मिला। परंतु लक्षण से यह अडिल्ला छंद होता है। इसमें दो दो चरणों में यमक है।

२—रामा (१) स्त्री, (२) राम, भगवान्।

३—विचारा (१) विचार, (२) बेचारा, गरीब।

४—मोटा (१) भारी, बडा, (२) मोट, गठरी।

५—काना (१) कान, कर्ण, (२) कनी, तरह।

६—पसारी (१) फैलाई, (२) दवा बेचनेवाला।

७—साँचा (१) संचित किया, (२) सच्चा, निष्कपट।

८—भूले (१) भूल गये (ईश्वर को), (२) भू = पृथ्वी, ले = लेते हैं।

तृष्णा लगि दशहूँ दिश धाया। सुंदर भूषा कबहुँ न धाया[१] ॥४॥
पाट पटंबर सोना रूपा। भूल्यौ कहा देषि यह रूपा[२] ॥
छिन मैं विलै जात नहि वारा। सुंदर टेरि कह्या कै वारा[३] ॥६॥
जौ तूं देहि धणी कौ लेषा। तौ तूं जौ जानै सो लेषा[४] ॥
जौ तो पै नहिं आवै जावा। तौ सुंदर टूटैगी जावा[५] ॥१०॥
बरषा सीस शीत मधि नीरा। उष्ण काल पावक अति नीरा[६] ॥
ऐसी कठिन तपस्या साधी। सुंदर राम विना का साधी[७] ॥१२॥
सिर पर जटा हाथ नष राषा। पुनि सब अंग लगाई राषा[८] ॥
कहै दिगंबर हम औधूता। सुंदर राम विना सब धूता[९] ॥१४॥
योगी सो जु करे मन न्यारा। जैसे कंचन काटै न्यारा[१०] ॥
कान फड़ाये कोइ न सीधा। सुंदर हरि मारग चलि सीधा[११] ॥१५॥
जौ सब तै हूआ वैरागी। सो क्यों होइ देह वैरागी[१२] ॥

१—धाया (१) गया, (२) धाया, अघाया।
२—रूपा (१) चाँदी, (२) रूप।
३—वारा (१) देर, समय, (२) बार, दफे।
४—लेखा (१) हिसाब, (२) ले = लेकर + खा = खाजा।
५—जावा (१) जवाब, (२) जबाड़ी, जीभ।
६—नीरा (१) जल, (२) निकट।
७—साधी (१) साधन की, (२) सा = वह + धी = बुद्धि।
८—राखा (१) रखे, (२) राख, भस्म।
९—औधूता = अवधूत। धूता = धूर्त्तता।
१०—न्यारा (१) भिन्न, (२) न्यारिया, जो सोने चाँदी को साफ करता है।
११—सीध (१) सिद्ध, (२) सही, जो टेढ़ा न हो।
१२—वैरागी (१) विरक्त, (२) विशेष अनुरागी।

निश दिन रहै ब्रह्मसौं राता । सुंदर सेत पीत नहि राता[१] ॥१६॥
जीव दया कहा कीनी जैना । ज्ञान दृष्टि अभिअंतर जैना[२] ॥
जीव ब्रह्म कौ लह्यौ न षोजा । सुंदर जती भये ज्यौं षोजा[३] ॥१८॥
कथा कहै बहु भांति पुराणी । नीकी लागै बात पुराणी[४] ॥
दोष जाइ जब छूटै रागा । सुंदर हरि रीझै सो रागा[५] ॥२०॥

---

(३४) बारह मासिया ग्रंथ

[काव्य की सब प्रकार की कृतियो वा बनावटों में मुमुक्षु जनों तथा जिज्ञासुओं की रुचि बढाना वा अद्वैत-ब्रह्मविद्या के उपयोगी सिद्धांतों को मनोरंजक बनाकर दिखाना, यही सुंदरदासजी का अभीष्ट रहा है, तदनुसार बहुत से छुद्र ग्रंथों की रचना की गई है और काव्य के प्रायः अगों का समावेश किया गया है। 'बारह मासिया' लिखना कवियों की एक चाल है परंतु वेदांत का पंडित भी बारह मासिया लिखे यह कौतूहलवर्धक है। बारह मासियो मे प्रायः विरहिनी की पुकार होती है। प्रत्येक मास में जो व्यथा ऋतु के अनुसार उसके तन और मन पर बीतती है, उस ही की राम-कहानी वह कहती है। सुंदरदास जी के

१—राता (१) रत, अनुरक्त, (२) लाल अर्थात् भेद भाव नहीं रहे।

२—जैना (१) जैन, जिन मतधारी, (२) ज = जो यदि। ना = नहीं।

३—खोजा (१) खोज, पता, (२) नपुंसक (ख्वाजासरा से खोजा)।

४—पुराणी (१) पुराण शास्त्र की, (२) प्राचीन।

५—रागा (१) मोह, विषयानुराग, (२) राग, गान।

बारह मासिए में विरहिनी तो यह जीवात्मा है, जो स्वारोपित वा स्वोपार्जित उपाधि (अभ्यास) के प्रभाव से निज भाव की भिन्नता मान-कर और फिर अपने 'पीव' मूल ब्रह्म के वियोग में विह्वल ज्ञान के उदय की अवस्था में होकर विरह दशा को प्राप्त होती है। वास्तव में यह भी भक्ति का एक प्रकार है जो पूर्वसंचित गुरुकृपा और भगवदिच्छा से प्राप्त होता है। इस दशा को भोगनेवाले बहुत थोड़े पुरुष दिखाई देते है। उस प्यारे "पीव" परमात्मा के विरह में जीवात्मा कैसे कातर होता है, उसी को महात्मा सु दरदासजी कैसे सीधे ढंग से वर्णन करते हैं, सो नीचे के उदाहरणों से प्रगट होगा।]

पवंगम छंद (अरिल[1] छंद)

प्रथम सषी री चैत वर्ष लागौ नयौ।
मेरौ पिव परदेश बहुत दिन कौ गयौ॥
विरह जरावै मोंहि विथा कासौं कहौं।
(परि हाँ) सु'दर ऋतु बसंत कंत बिन क्यौं रहौं॥ १॥

भादौं गहर गँभीर अकेली कामिनी।
मेघ रह्यौ झर लाय चमकत दामिनी॥
बहुत भयानक रैन पवन चहुँ दिशि वहै।
(परि हाँ) सु'दर बिन उस पीव बिरहिनी क्यौं रहै॥ ६॥

पोस मास की राति पीव बिन क्यौं कटै।
तलफि तलफि जिव जाय करेजा अति फटै॥

१—इस बारह मासिया का वेदांतिक वा पराभक्ति संबंधी अर्थ अध्यात्म रीति से भिन्न होता है जिसको विस्तार से यहाँ देने की आव-श्यकता नहीं। पाठक स्वयं विचार सकते हैं। साधारण अर्थ तो स्पष्ट ही है।

सूनी सेज संताप सहै सो बावरी।
(परि हाँ) सुंदर काढ़ौं प्रान सुश्रवहिं उतावरो ॥ १० ॥

---

(३५) आयुर्बल भेद आत्मा विचार ग्रंथ

[यह तेरह चौपाई का छोटा सा ग्रंथ काल और आयु की महिमा का है। इसमें जो जो दशाएँ आयु की मनुष्यलोक और अन्य लोको में होती है उनसे शरीर की अनित्यता और क्षणभंगुरता की प्रतीति दृढ़ होती है। सतयुगादि में मनुष्य की आयु बहुत बड़ी होती थी। उत्त-रोत्तर घटते घटते कलियुग में सौ वर्ष की आ ठहरी, परंतु पूर्णायु सब की नहीं होती। बहुत से अल्पायु ही पाते हैं, और क्या अल्पायु और क्या दीर्घायु सबका अंत आ ही जाता है, घटते घटते घट ही जाता है, यहाँ तक कि वर्षों के महीने, महीनों के दिन, दिनों की घड़ियाँ, और घड़ियों के पल रह जाते है।]

चौपई छंद [1]

एक पलक षट[2] स्वासा होइ, तासौं घटि बढ़ि कहै न कोइ।
पंच च्यारि त्रिय द्वैइक स्वास, अर्ध पाव अधपाव विनाश[3] ॥८॥
यौं आयुर्बल घटतौ जाइ, काल निरंतर सब कौं षाइ।
ब्रह्मा आदि पतंग जहाँ लौं, उपजै विनसै देह तहाँ लौं ॥९॥

१—चौपई १५ मात्रा की अत्यलघु प्राय। २—एक पलक, एक घड़ी, एक मुहूर्त, दिन रात्रि आदि में जितने जितने स्वास साधारण स्वस्थ पुरुष लेता है वह शास्त्रों में बहुत स्थलों में वर्णित है।
३—आयु के साथ स्वासों की गणना भी घटती जाती है यही विनाश का क्रम है।

यथा बाँस लघु दीरघ दोइ, तिनकी छाया घट विधि होइ ।
जब सूरज आवै मध्यान, दोऊ छाया एक समान[1] ॥१०॥
यौं लघु दीरघ घट कौ नाश, आतम चेतन स्वय प्रकाश ।
अजर अमर अविनाशी अंग, सदा अखंडित सदा अभग ॥११॥
घटै न बढ़ै न आवै जाइ, आतम नभ ज्यौं रह्यौ समाइ ।
ज्यौं कोई यह समझै भेद, सत कहै यौं भाषै वेद ॥ १२ ॥

---

(३६) त्रिविध अंतःकर्ण भेद ग्रंथ

[वेदात में अत कर्ण-चतुष्टय मन, बुद्धि, चित्त और अहकार नामों से प्रसिद्ध है । सुदरदासजी ने प्रत्येक के प्रश्नोत्तर मे तीन तीन भेद दिखाए हैं । एक बाह्य दूसरा अतः और तीसरा परम इस प्रकार अंत कर्ण के बारह भेद प्रभेद हुए ।]

उत्तर । चौपाई छद

वहै वहिर्मन भ्रमत न थाकै, इद्रियद्वार विषै सुख जाकै ॥
अंतर्मन यौं जानै कोहं, सुदर ब्रह्म परम मन सोहं ॥२॥
बहिर्बुद्धि रजतम गुण रक्ता, अंतर्बुद्धि सत्व आसक्ता ॥
परम बुद्धि त्रयगुण ते न्यारी, सुदर आतम बुद्धि विचारी ॥४॥
बहिर्चित्त चितवै अनेकं, अंतर्चित्त चितवन एक ॥
परम चित्त चितवन नहिं कोई, चितवन करत ब्रह्ममय होई॥६॥

१—सूर्य के उतार चढ़ाव से छाया का न्यूनाधिक्य और मध्य में मध्याह्न का दृष्टात छाया का लघुतम रूप बताया है ।

वहि जो अहं देह अभिमानी, चारि वर्ण अंतिज लों प्रानी ॥
अंतः अहं कहै हरिदास, परम अहं हरि स्वयं प्रकाशं[1] ॥८॥

---

(३७) "पूरबी भाषा बरवै"

[२० बरवा छंदों में पूर्वी भाषामय कविता के ढंग पर, विपर्यय गूढ़ार्थ वत्, ब्रह्मज्ञान के भेद को लिखा गया है यथा—]

नंदा छंद (बरवा छंद)

सद्गुरु चरण निनाऊँ[2] मस्तक मोर।
बरवै सरस सुनावउँ अदभुत जोर ॥ १ ॥
औरउ अचिरज देषल[3] बाँझ क[4] पूत ।
पंगु चढल[5] पर्वत पर वह अवधूत ॥ ५ ॥
वहुत जतन कैला[6]वल अदभुत बाग।
मूल उपर तर डरियां देषहु भाग[7] ॥ ८ ॥
सहज फूल फर लागल[8] बारह मास।
भँवर करत गुजारनि विविध विलास ॥ ९ ॥
अंबडार पर वैसल[9] कोकिल कीर।
मधुर मधुर धुनि बोलहि सुख कर सीर[10]॥ १० ॥

* * * * *

१–तीन भेद तीन शरीरों के–स्थूल, सूक्ष्म, कारण—अन्नमय, प्राण मय, विज्ञानमय कोशों के अनुसार हैं। यह क्रम पूर्ण रीति से सोदाहरण हृदयंगम होने से वेदांत की परिपाटी में कुछ आक्षेप को स्थान न रहता। २–नवाऊँ। ३–देखा। ४–क = के। ५–चढ़ा। ६–किया ७–भागकर वा कैसा अचरज है। ८–लगे। ९–बैठे। १०–धारा

सुख निधान परमातम आतम अस।
मुदित सरोवर महिया क्रीड़त हस[1] ॥ २६ ॥
रस मंहियां रस होइहि नीरहि नीर।
आतम मिलि परमातम षीरहि षीर ॥ २८ ॥
सरिता मिलहि समुद्रहिं भेद न कोइ।
जीव मिलहि परब्रह्महि ब्रह्महि होइ[2] ॥ २९ ॥

---

(३८) फुटकर काव्यसार

[सुंदरदासजी ने जो फुटकर काव्य किया वह उनकी मूल प्राचीन पुस्तक मे एक स्थानी है तदनुसार ही यहाँ भी क्रम रखा गया है। इसमें चौबोला, गूढार्थ, आद्यक्षरी, अत्याक्षरी, मध्याक्षरी, चित्रकाव्य, गणागण विचार, नवनिधि, अष्टसिद्धि आदि है। इनमें पिछले प्राय छप्पय छद ही में है, फिर अतर्लापिका, वहिर्लापिका, निर्मात, निगड-बंध, सिंहावलोकनी, अत समय की साषी आदि है। इनमें से कुछ चाशनी की भाँति लिख दिए जाते है।]

(क) चौबोला से दोहा छद

पी पर देशै गवन करि, बरवट गए रिसाइ।
परासषी मो रोवना, सालरि दै नहिं जाइ[3] ॥ १ ॥

१—जीवात्मा, महात्मा। २—जीव ब्रह्मरूप है इसलिये ब्रह्म में मिलना एक व्यवहार पक्ष में कथनमात्र है। सुंदरदासजी का ढग इस विषय के वर्णन का ऐसा सुदर और सुगम है कि इस बडी कठिन बात को फूलों की सी माला कर दिखाया है। ३—पीपरदा = गाँव का नाम है। 'पी पर देशै' इसका श्लेष है। वरवट = गाँव का नाम है। वरवट = फरवट, शीघ्र। परास और मोर = गाँवो के नाम है। श्लेष मे

वहै रावरे कौन दिसि, आव राषि मन मोर ।
हररैं हररैं जिमि फिरहु, रहु कृपा की कोर[१] ॥ २ ॥
दुवा तिहारी लेत ही, कलमष रहे न कोइ ।
काग दशा सब मिटि गई, लेषकर्म यों होइ[२] ॥ ११ ॥
आगरासु मम पीव है, दिलि मैं और न कोइ ।
पटनारी तातैं भई, राजमहल में सोइ[३] ॥ १४ ॥
काशी लागा बहुत ही, गया और ही वाट ।
अजो ध्यान अब करत हौं, तिरवेनी के घाट[४] ॥ १५ ॥

सखी मुझे रोना पड़ा । सालरदा = गाँव का नाम । श्लेष में हृदय की साल जाइ (मिटै) नहीं ।

१—बहेरा = बहेड़ा (औषधि) । रावरे = आपके कौन सी तरफ वा देश में वह रहता है वा बसता है । अथवा रे राव (पीतम) कौन देश वा किस धुन में फिरते हो । आवरा = आँवला (औषधि) और आव मेरा मन रख । हरड़ै (औषधि) हल जाकर जैसे लौट आता है अथवा हर महादेव जैसे प्रसन्न हो जाता है वैसे लौट आओ । इसमें त्रिफला का नाम भी आ गया और दूसरा अर्थ भी आ गया । २—दुवात—कलम—कागज—लेख— ये शब्द और अर्थ दूसरा आता है । 'तिहारी' दुआ (दवा) से पाप (रोग) नहीं रहा । कव्वे की दशा पाप वा रोग की अवस्था मिट गई । ३—आगरा, दिल्ली, पटना और राजमहल शहरों के नाम हैं । श्लेष का अर्थ—मेरा पीव अति चतुर और प्रवीण है । मेरे मन में पीव को छोड़ कुछ समा नहीं सकता । मैं राजमहल (परागति) में इसलिये जाता हूँ कि मैं पटनारी (परमभक्त वा कृपापात्र) बन चुका हूँ । ४—काशी, गया, अयोध्या और त्रिवेनी (प्रयाग) तीर्थ स्थानों वा शहरों के नाम हैं । दूसरा अर्थ—(काशिन् = चमकनेवाला) योग

(ख) गूढार्थ से दोहा छंद

रसु सोई अमृत पिवै, रन सोई जिह ज्ञान ।
सुप सोई जो बुद्धि बिन, तीनौं उलटे जान[१] ॥ १५ ॥
तारी बाजैं कुंभ ज्यौं, पैरा गर्व गुमान ।
लैबो मिथ्या रात दिन, लाभ न होइ निदान[२] ॥ १६ ॥
कर्म काटि न्यारा भया, बोसौं विस्वा संत ।
रमैं रैनि दिन राम सौं, जीवै ज्यौं भगवंत[३] ॥ २१ ॥
नाम हृदै निश दिन सुनै, मगन रहै सब जाम ।
देषै पूरन ब्रह्म कौं, वहाँ एक विश्राम[४] ॥ २२ ॥

(ग) मध्याचरी

शंकर कर कहि कौन	पिनाक ।
कौन अंबुज रस रंगा ।	भ्रमर ।

तपने चमकने लगा अथवा आसन (काशी = आसन) पर बैठकर बहुत योग वा तप किया तो संसार छूट परमार्ग चला गया । तो (अजो = अजपा, वा मुख्य) अजपा का वा ब्रह्म का (अज = अजन्मा) ध्यान अब करता हूँ । जिससे इडा, पिंगला और सुषुम्ना के घाट मार्ग में रहता हूँ ।

१—रसु का उलटा सुर । रन का उलटा नर । सुप का उलटा पसु (पशु) । २—तारी का उलटा रीता । पैरा का राखै । लैबो का बोलै । लाभ का भला । ३—क + बी + र + जी चारों चरणों के पहले अक्षर जोड़ने से । ४—नामदेव—चारों चरणों के पूर्वाक्षर जोड़ने से ।

अति निलज्ज कहि कौन गनिका।
कौन सुनि नादहि भंगा। कुरंग।
काम अंध कहि कौन कुंजर।
कौन कै देषत डरिए। पन्नग।
हरिजन त्यागत कौन कलेस।
कौन षाएँ तें मरिए। मोहुरौ।
कहि कौन धात जग में खनं कनक।
रसना कौं को देत वर। सारदा।
अब सुंदर ह्वै पषि त्याग कैं,
नाम निरंजन लेह नर[1] ॥ १ ॥

(घ) काव्य-लक्षण और गणागण

छप्पय छंद

नख शिख शुद्ध कवित्त पढ़त अति नीको लगै।
अंग हीन जो पढ़ै सुनत कपिजन उठि भगै॥
अक्षर घटि बढ़ि होइ षुडावत नर ज्यौं चल्लै।
मात घटै बढ़ि कोइ मनौ मतवारौ हल्लै॥
औढेर[2] कांण[3] सो तुक अमिल अर्थहीन अंधो यथा।
कहि सुंदर हरिजस जीव[4] है हरिजस विन मृत कहितथा॥२५।

१—'नाम' ..आदि अक्षर 'पिनाक' आदि के मध्य से निकलते हैं। २—चहंगा, एक आँख से टेढा देखनेवाला। ३—कांणा, एकाक्षी। ४—जीवनमूल है। शांतरस भगवत्गुणानुवाद वा ब्रह्मविद्या ही काव्य का मुख्य गुण हो सकता है, शृंगारादि नहीं।

माधोजी है मगण यहै है[१] यगण कहिज्जै ।
रगण राम[२]जी होइ सगण सगलै[३] सुलहिज्जै ॥
तगण कहै तारक[४] जरात[५] सु जगण कहावै ।
भूधर[६] भणियें भगण नगण सुनि निगम[७] बतावै ॥
हरिनाम सहित जे उच्चरहिं तिनकौं सुभगण अट्ठ हैं ।
यह भेद जके जानै नहीं सुंदर ते नर सट्ठ हैं ॥ २६ ॥

सप्तवार, बारहमास, बारह राशि नाम

प्रगट होइ आदित्य सोम[८] जब हृदये आवै ।
मंगल दशहू दिशा बुद्ध[९] तब ही ठहरावै ॥
बृहस्पति[१०] ब्रह्म स्वरूप शुक्र[११] सब भाषत ऐसैं ।
थावर जंगम[१२] मध्य द्वैत भ्रम रहै सु कैसैं ॥

१–'इदमस्ति' 'अयमात्मा' का अनुवाद है । २–रमयतीति राम । ३–सर्वव्यापक । ४–तारनेवाला वा तारक मंत्र । ५–जरा बुढ़ापा जिसमें नहीं अर्थात् अजर—नित्य । ६–भूधर भगवान् का नाम अथवा शेष (पिंगल) । ७–वेद वा भगवान् । भगवान् वा देवता के नाम वा गुणमय जो छंद हो उसमें गुण दोष नहीं माना जाता । ८–चंद्रनाडी की सिद्धि से सूर्य्यनाडी (पिंगला) की सिद्धि हो अथवा शीतलता शांति के होने से ज्ञानरूपी सूर्य्य उदय हो । ९–जो सर्वत्र मंगलमय ब्रह्म को मानता है वही बुद्ध = ज्ञानी है । १०–बृहस्पति भी 'वीर्यो वै ब्रह्म' ऐसा कहता है । ११–शुक्र = शुक्राचार्य वा वीर्य । क्या देवता क्या दानव दोनों के ही गुरु ब्रह्म का स्वरूप 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' ऐसा कहते हैं—यह भी अर्थ होता है । अथवा वे 'थावर जंगम' इत्यादि वाक्य कहकर ब्रह्म की सर्वव्यापकता बताते हैं । १२–जो पुरुष स्थावर को अनात्म कहते हैं सो

है अति अगम्य अरु सुगम पुनि सद्गुरु बिन कैसे लहैं ।
यह बारहि बार[1] विचार करि सप्त बार सुंदर कहैं ॥२९॥
कार्त्तिक काटै कर्म मार्गसिर गति यज्ञासा[2] ।
पोष मिल्यौ सतसंग माघ सब छाड़ी आसा ॥
फाल्गुण प्रफुलित अंग चैत्र सब चिंता भागी ।
बैशाष अति फली जेठ निर्मल मति जागी ॥
आषाढ़ भयो आनंद अति श्रावण स्रवति अमी सदा ।
भाद्रव द्रवति परब्रह्म जदि अश्वनि शांति सुदर तदा ॥३०॥
मीन स्वाद सौं बँध्यौ मेष मारन कौं आयौ ।
वृष[3] सूकौ तत्काल मिथुन करि काम बहायौ ॥
कर्क[4] रही उर माहिं सिंघ आवतौ न जान्यौ ।
कन्या चंचल भई तुलत अकतूल[5] उड़ान्यौ ॥
वृश्चिक विकार विष डंक लगि, सु दर धन मितन भयौ ।
परि मकर न छाड़्यो मूढ़ मति कु भ फूटि नरतन गयौ ॥३१॥

भ्रम में हैं। किंतु क्या स्थावर और क्या जंगम सब ही ब्रह्ममय हैं इनका भेद देखकर द्वैतभाव नहीं लाना।

१—बार बार (निरंतर) अथवा वरे ही वरे। आगे पहुँचने की गम्य नहीं। वा वारो के नामों को विचारकर यह श्लेष काव्य बनाया। २—जिज्ञासु। बारह महीनों में उत्तरोत्तर ज्ञानोन्नति हुई सो ही नाम में सार्थक होना दिखाते हैं। ३—वृष = वृच। ४—कर्क = कडक—हिम्मत वा कसक—कमी। ५—फंडी, गावटा (यह शब्द सुंदरदासजी ने अपभ्रंश करके लिखा है)।

मन गयद । छप्पय

मन गयद बलवंत तास के अंग दिपाऊँ ।
काम क्रोध अरु लोभ मोह चहुँ चरन सुनाऊँ ॥
मद मच्छर[1] है सीस सुंडि तृष्णा सुडुलावै ।
द्वंद दसन हैं प्रगट कल्पना कान हलावै ॥
पुनि दुविधा दृग देषत सदा पूँछ प्रकृति पीछै फिरै ।
कहि सुंदर अंकुस ज्ञान कै पीलवान गुरु वसि करै ॥३२॥

च्यार अवस्था, च्यार वर्ण

अंत्यज देह स्थूल रक्त मल मूत्र रहे भरि ।
अस्थि मांस अरु मेद चर्म आच्छादित ऊपरि ॥
शुद्र सुलिंग शरीर वासना बहु विधि जामहिं ।
वैश्यहु कारण देह सकल व्यापार सु तामहिं ॥
यह चत्रिय साची आत्मा तुरिय चढें पहिचानिए ।
तुरिया अतीत ब्राह्मण वही सुंदर ब्रह्म बषानिए ॥३६॥

सप्त भूमिका

प्रथम भूमिका श्रवन चित्त एकाग्रहि धारै ।
द्वितीय भूमिका मनन श्रवन करि अर्थ विचारै ॥
तृतीय भूमिका निदिध्यान नीकी विधि करई ।
चतुर भूमि साचात्कार संशय सब हरई ॥
अब तासौं कहिए ब्रह्म विंदु वर वरियान वरिष्ठ है ।
यह पंच षष्ठ अरु सप्तमी[2] भूमि भेद सुंदर कहै ॥ ३८ ॥

१–मात्सर्य । २–सप्त व्याहृती सात लोकों (जगत् वा अस्ति मात्र

सुख दुख नींद अरूप जबहिं आवैं तब जानैं।
शीतहुँ उष्ण अरूप लगें ते सब पहिचानैं॥
शब्द रु राग अरूप सुनें तें जानें जाँहीं।
वायु हु व्योम अरूप प्रगट बाहरि अरु माँही॥
इहिं भाँति अरूप अखंड है सो कैसैं करि जानिएँ[१]।
कहि सुंदर चेतन आतमा यह निश्चय करि आनिएँ॥३९॥

एक सत्य परब्रह्म एक तें गनती गनिए।
दस दस आगैं एक एक सौ ताईं भनिए॥
एकहि को विस्तार एक को अंत न आवै।
आदि एक ही होइ अंत एकहि ठहरावै॥
ज्यौं लूता तंत पसारि कै बहुरि निगलि लूता रहै।
यौं सुदर एक अनेक ह्वै अंत वेद एकै कहै[२] ॥४०॥

के द्योतक वर्णों) के सांकेतिक रूप है। जिनके प्रवेश मार्ग-चार रूपवान् और तीन अरूपवान् परस्पर है उनको वर—वरियान और वरिष्ट कहा है। उत्तरोत्तर उन्नत और सूक्ष्म है।

१—रूपरहित अनेक पदार्थ हैं जो इंद्रियों से प्रत्यक्ष नहीं हो सकते, बुद्ध्यादि से उनकी प्रतीति होती है। इस ही प्रकार बुद्धि से परे जीवात्मा वा ब्रह्म है सो बुद्धि से तो प्रत्यक्ष नहीं हो सकता उसका ज्ञान योगमार्ग से संभव है। उत्तरोत्तर उत्क्रांति इस ज्ञान में भी है जो "स्थूलारुंधात न्याय" से सिद्ध होती है। साइंस, विज्ञान, के धुरंधर 'हक्सले' 'टिंडल' आदि ने भी इस बात को माना है। यही बात हमारे देश के भिक्षुक साधुओं तक को ज्ञात रही है। यहाँ की अध्यात्म विद्या की महिमा है। २—लूता (मकडी) का दृष्टांत उपनिषद और ब्रह्मसूत्र आदि में ठौर

(छ) अंतर्लापिक

लक मारि क्षत्रिय प्रहारि हलधारि रहै कर ।
महीपाल गोपाल व्याल पुनि धाइ गहै वर ॥
मेघ श्वास धुनि प्यास नाश रुचि कँवल वास जिहिं ।
वृद्धतात हनुतात प्रगट जगतात जानि तिहिं ॥
तुम सुनहु सकल पंडित गुनी अर्थहि कहो विचार करि ।
चत्वार शब्द सुंदर वदत रामदेव-सारंगहरि[1] ॥ ४३ ॥

(ज) निगडबंध

अधर लगै जिन कहत वर्ण कहि कौन आदि कौ ।
सब ही तें उत्कृष्ट कहा कहिए अनादि कौ ॥
कौन बात सो आहि सकल संसारहि भावै ।
घटि बढि फेरि न होइ नाम सो कहा कहावै ॥

ठौर आया है । यहाँ सृष्टि का विस्तार और उसका लय, एक से अनेक और पुन अनेक से एक—अन्वय व्यतिरेक—सृजन और संहार—उत्पत्ति और नाश रूपेण—जानना । प्रसिद्ध ग्रीक (यूनानी) दार्शनिक 'अरस्तू' और 'अफलातून' ने भी 'एक और तीन' और 'एक से अनेक' की और 'लौटकर अनेक से एक' की ऐसी ही युक्तियाँ दी हैं ।

१—राम = (१) रामचंद्र, (२) परशुराम, (३) बलराम । देव = (१) राजा, (२) भगवान्, (३) शिव (सर्पधारी) । सारंग = (१) मोर, (२) पपीहा, (३) भौंरा । हरि = (१) चंद्रमा, (२) पवन, (३) विष्णु वा ब्रह्मा । गुनी = गुणी गुणवान् पंडित अथवा गुनी + अर्थ त्रिगुण अर्थ, तीन तीन अर्थ ।

कहि संत मिले उपजै कहा दृढ करि गहिए कौन कहि ।
अब मनसा वाचा कर्मना सुंदर भजि परमानँद हि[1] ॥४८॥

(झ) चित्रकाव्य के बंध

(१) छत्रबंध[2] । छप्पय छंद

सुनहु अंक की आदि दशा इक विधि सुत केते ।
रस भोजन पुनि जान भनौ योगागहि जेते ॥

१—'प + र + मा + न + द' इन अक्षरों में ओष्ठ्य 'पकार' प्रथम है पवर्ग में । फिर आगे का एक अक्षर 'रकार' जोड़ने से 'पर' हुआ जिसका अर्थ परमात्मा । ऐसे ही 'रमा' = लक्ष्मी जो सबको प्रिय है और 'परमा' = सुखमा = शोभा यह भी सबको भाती है । आगे 'परमान' = नाप, तोल, प्रमाण, परिमान—जो अटल हैं, घट बढ़ नहीं सकता । अंत में 'परमानंद' = ब्रह्मानंद जो संत और सद्गुरु की कृपा से मिलता है । इसी आनंद वा परमगति को दृढ कर पकडना सिद्धों का काम है और दृढ़ता निश्चय का बोधक है सो 'हि' शब्द से लिया जा सकता है जो 'परमानंद' शब्द के अंत में है अर्थात् परमानंद ही दृढ़ कर रखना चाहिए । 'परमानंद' शब्द में 'नकार' के ऊपर का अनुस्वार छंद के अर्थ बोला जायगा । २—अंक का आदि 'एक' वा 'एका' है । विधिसुत = सनकादिक चार और रस छः है (भोजन चार प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) । योगांग—अष्ट अंग योग के हैं । जलज नाभि = ब्रह्मा, उसके कमल के दल, पत्र दश हैं । कंचन वाणी = बारह हुई । भुवन = लोक चौदह है (सात ऊपर सात नीचे) । रंभा की अवस्था सोलह वर्ष की । पुराण अठारह । नंदन = पुत्र, उसके हाथ पांव के नख बीस हैं । 'दशाइक' का अर्थ यह भी सुना है कि 'सुन' हु अंक का आदि

जलज नाभि दल बूझि हुई कै कंचन वानी ।
निरपि भवन कै कहै रंग वय किती वपानी ॥
जग मांहि जु प्रगट पुरान कै नदन नष कर पग गनं ।
सब साधन के सिरछत्र यह सु दर भजहु निरंजनं ॥ १ ॥

(२) नागपाश[1] बंध । मनहर छद

जनम सिरानो जाय भजन विमुख सठ ।
(देखो "सवैया" में उपदेश चितावनी छंद २९) ॥

(ब) "दशों दिशा" के सवैयो से

[सु दरदासजी ने भारतवर्ष के वहुत से विभागों में भ्रमण किया था, इस भ्रमण का कुछ वृत्तात उन्होंने १० सवैयों में लिखा है, उनमें से कुछ यहाँ उद्धृत करते हैं । यह सवैया आज तक कहीं मुद्रित नहीं हुए थे ।]

छंद इदव

हिक्क[2] लहौर दा नीर भी उत्तम हिक्क लहौर दा वाग सिराहे ।
हिक्क लहौर दा चीर भी उत्तम हिक्क लहौर दा मेवा सिराहे ॥
हिक्क लहौर दे हैं विरहीजन हिक्क लाहौर दे सेवग भाए ।
कितक वात भली लाहौर दी वाहिते सु दर देषने आए ॥ ४ ॥
त्रिच्छ न नीर न उत्तम चीर न देशन मे गत देश है मारू ।

अर्थात् अंक का आदि पहिले शून्य है । और दिशा भी शून्य हैं और एका पर शून्य धरने से दश होता है और एक पर एक अर्थात् आपस में मिलने वा जुड़ने से १ + १ = २ दो होते है । या दशाइक = दो का अर्थ हुआ सो नहीं । सात 'सु दर भजहु निरंजन' इसका छत्रबंध ग्रंथ के आदि में दिया है ।

१—नाग-पाश का चित्र भी आदि में है । २—इक = एक ।

पाँव मे गोषरू भुर्ट[१] गड़ैं अरु आँष मैं आइ परै उड़ि धारू ॥
रावरि छाछि पिवैं सब कोइ सुताहि ते षाज रतौंधुरु[२] नारू ।
सुंदरदास रहो जनि बैठि के बेगि करो चलिबे को बिचारू ॥६॥
भूमि पवित्रहु लोग विचित्रहु रागरु रंग उठै तव ही तें ।
उत्तम अन्न प्रसन्न वसन्न प्रसन्न ह्वै मन्न जु षात षही तें ॥
भिच्छ अनंत रु नीर वहंत रु सुंदर संत विराजत ही तें ।
नित्य सुकाल पड़ै न दुकाल सु मालव देश भलौ सबही तें ॥७॥
पूरब पच्छिम उत्तर दच्छिन देश विदेश फिरे सब जानें ।
केतक द्यौस फतेपुर माहि सु केतक द्यौस रहे डिंडवानें ॥
केतक द्यौस रहे गुजरात उहाँहुँ कछू नहि आन्यौ है ठानें ।
सोच विचारि कै सुंदरदास जु याहिते आन रहे कुरसाने ॥८॥
सुच्छि अचार कछू न बिचार सुमास छठैं कवहूँ कस न्हाहीं ।
मूँड षुजावत बार परै गिरते सब आटै मैं ओसनि जाहीं ॥
वेटी रु बेटन कौ मल धोवत वैसेहि हाथन सो अन षाहीं ।
सुंदरदास उदास भयौ मन फूहड़ नारि फतेपुर माहीं ॥ ९ ॥
कंद रु मूल भले फल फूल सुरस्सरि कूल वनें जु पवित्तर ।
आधि न व्याधि उपाधि नहीं कछु तारि लगैं ते हरैं जमनुत्तर[३] ॥
ज्ञान प्रकाश सदाहि निवास सुसुंदरदास तरै भव दुस्तर ।
गोरषनाथ सराहि है जाहि सुजोग के जोग भली दिश उत्तर ॥१०॥

१—भरभूट । २—रतौंधी रोग । ३—मन्वंतर, दीर्घकाल (तक तारी = समाधि लगी रहे) ।

जलज नाभि दल बूझि हुई कै कचन बानी ।
निरपि भवन कै कहौ रंग वय किती वपानी ॥
जग माँहि जु प्रगट पुरान कै नंदन नष कर पग गनं ।
सब साधन कै सिरछत्र यह सु दर भजहु निरजनं ॥ १ ॥

(२) नागपाश[1] बध । मनहर छद

जनम सिरानो जाय भजन विमुख सठ ।
(देखो "सवैया" में उपदेश चितावनी छद २९) ॥

(ञ) "दशों दिशा" के सवैयो से

[सु दरदासजी ने भारतवर्ष के बहुत से विभागो मे भ्रमण किया था, इस भ्रमण का कुछ वृत्तात उन्होंने १० सवैयो में लिखा है, उनमें से कुछ यहाँ उद्धृत करते है । यह सवैया आज तक कहीं मुद्रित नहीं हुए थे ।]

छद इंदव

हिक्क[2] लहौर दा नीर भी उत्तम हिक्क लहौर दा बाग सिराहे ।
हिक्क लहौर दा चीर भी उत्तम हिक्क लहौर दा मेवा सिराहे ॥
हिक्क लहौर दे हैं विरहीजन हिक्क लाहौर दे सेवग भाए ।
कितक वात भली लाहौर दी ताहिते सु दर देषने आए ॥ ४ ॥
त्रिच्छ न नीर न उत्तम चीर न देशन में गत देश है मारू ।

अर्थात् अक का आदि पहिले शून्य है । और दिशा भी शून्य है और एका पर शून्य धरने से दश होता है और एक पर एक अर्थात् आपस में मिलने वा जुड़ने से १ + १ = २ दो होते हैं । या दशाइक = दो का अर्थ हुआ सो नहीं । सात 'सु दर भजहु निर जन' इसका छत्रबध ग्र थ के आदि में दिया है ।

१—नाग-पाश का चित्र भी आदि में है । २—इक = एक ।

शिष्य को क्या समृद्धि प्रदान कर गए। धन्य ऐसे गुरु और ऐसे शिष्य को जिन्होंने ब्रह्म-विद्या का पुष्कल दान ससार को किया और अगाध शिष्य-प्रेम और गुरु-भक्ति प्रकाशित की।]

इंदव छंद

मौज[1] करी गुरुदेव दया करि शब्द सुनाइ[2] कह्यौ हरि नेरौ।
ज्यौं रवि कैं प्रगट्य निशजात[3] सु दूरि कियौ भ्रम भांनि[4] अँधेरौ॥
काइक वाइक मानस[5] हू करिहै गुरुदेवहि वदन[6] मेरौ।
सुंदरदास कहै कर जोरि जु दादू दयाल कौ हूँ नित चेरौ[7] ॥१॥
पूरण ब्रह्म विचार निरंतर काम न क्रोध न लोभ न मोहै[8]।
श्रोत्र त्वचा रसना अरु घ्राणसु देखि कछू कहुँ नैनन मोहै[9]॥
ज्ञान स्वरूप अनूप निरूपण जासु गिरा सुनि मोहन मोहै[10]।
सुंदरदास कहै कर जोरि जु दादू दयालहि मोर नमो[11] है ॥२॥
धीरजवंत अडिग्ग जितेंद्रिय निर्मल ज्ञान गह्यौ दृढ आदू।
शील संतोष छमा जिनकै घट लागि रह्यौ सु अनाहद नादू॥

१—मौज (फारसी अ०) = लहर, हुलूर, आनंद। २—सर्व अध्यात्म दीक्षाओं में मंत्र, शब्द, इंगित ही प्रथम प्रवेश का कारण होता है। नेरौ = नीडा, निकट, ब्रह्म हमारे भीतर है, दूर ढूँढने की आवश्यकता नहीं, यही दादूजी का चरम सिद्धात था। ३—मिट जाती है जैसे। ४—भांज कर = दूर करके। ५—कायिक, वाचिक, मानसिक। ६—वंदनीय अथवा गुरु के अर्थ वंदन नमस्कार। ७—यहाँ नित (नित्य वा नियत शब्द आने से चेरो शब्द के अर्थ में विशेषता आ गई है। सदा दास। ८—मोह है (संज्ञा)। ९—मोह को प्राप्त (नहीं) होवै। १०—नमन अर्थात् दमन हुआ है। ११—नमस्कार है।

सुंदर विलास

अथ सवैयासार

["सवैया" ग्रंथ के संबंध की बातें विशेषतया भूमिका में लिख दी गई हैं। स्वामी सुंदरदासजी की कविता का यह ग्रंथ शिरोमणि और इससे उतर कर 'ज्ञानसमुद्र' है। क्या काव्यछटा और क्या ज्ञान की शैली, जिस माधुर्य्य और ओज आदि गुणों के समारोह से इन दोनों ग्रंथ-रत्नों में वर्णित है वैसे भाषा-साहित्य भर में स्यात् कठिनाई ही से किसी अन्य ग्रंथ में मिले। इस 'सार' में हम उन छंदों को छाँटकर रखते है जो क्या दादूपंथियों में और क्या सर्व साधारण काव्यप्रेमी और ज्ञानरसिकों में प्रसिद्ध या प्रियतर हैं या प्रचलित या प्राय कंठस्थ किए जात हैं अथवा जो हमारी बुद्धि में कितने ही कारणों से चुने जाने के योग्य प्रतीत हुए हैं।]

---

(१) गुरु देव को अंग

[इस अंग के छंदों को पढ़कर प्रतीत होगा कि पहिले समयो में गुरु-भक्ति कैसी हुआ करती थी। हमारे जान भारतवर्ष की बड़ी गहन विद्याओं और विशेषत. अध्यात्मविद्याओं की उन्नति का मूल कारण यह गुरु-भक्ति ही रही होगी। सुंदरदासजी बचपन ही से दादूजी के शिष्य हुए थे, तब भी उनकी प्रगाढ़ गुरु-भक्ति को देखने से उनके चित्त और बुद्धि का कैसा अच्छा अनुमान हो जाता है। वास्तव में स्वामी ने गुरु की कृपा का फल पा लिया था। 'दयालु' की दयालुता भी इससे भली भांति प्रगट हो जाती है कि थोड़े ही दिनों में अपने एक बालक

व्यापक ब्रह्म विचार अखंडित द्वैत उपाधि सबै जिनि टारी ।
शब्द सुनाय संदेह मिटावत सुंदर वा गुरु की बलिहारी ॥८॥
पूरण ब्रह्म बताय दियो जिनि एक अखंडित व्यापक सारै ।
रागरु दोष करैं अब कौन सौं जोइ है मूल सोई सब डारै ॥
संशय सौक मिट्यौ मन कौ सब तत्व विचार कह्यौ निरधारै ।
सुंदर सुद्ध किए मल धोइ सु है गुरु को उर ध्यान हमारै ॥९॥
ज्यौं कपरा दरजी गहि ब्यौंतत काष्ठहि कौं बढ़ई कसि[1] आनैं ।
कंचन कौं जु सुनार कसै पुनि लोह को घाट[2] लुहारहि जानैं ॥
पांहन कौं कसि लेत सिलावट पात्र कुम्हार कै हाथ निपानैं[3] ।
तैसैं हि शिष्य कसै गुरुदेवजु सुंदरदास तबैं मन मानैं ॥१०॥

मनहर छंद

शत्रु ही न मित्र कोऊ जाकैं सब हैं समान,
देह को ममत्व छांडे आतमा ही राम हैं ।
औरऊ उपाधि जाकैं कबहूँ न देषियत,
सुख के समुद्र मैं रहत आठौं जाम हैं ॥
ऋद्धि अरु सिद्धि जाके हाथ जोरि आगे षरी,
सुंदर कहत ताकै सब ही गुलाम हैं ।
अधिक प्रशंसा हम कैसैं करि कहि सकैं,
ऐसै गुरु देव कौं हमारे जु प्रनाम हैं ॥ ११ ॥

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

१—कसौटी पर धरकर, भला बुरा परखकर । २—डौल, गढ़ने का ढंग । ३—बने, लिपकर तैयार हो ।

भेष न पच्छ निरंतर लच्छ जु और नहीं कछु वाद विवादू ।
ये सब लच्छन हैं जिन माहि सुसुंदर कै उर है गुरु दादू ॥३॥
भौजल में बहि जात हुते जिनि काढि लिए अपने कर आदू ।
और संदेह मिटाय दियौ सब काननि टेर सुनाइ कै नादू ॥
पूरण ब्रह्म प्रकास कियौ पुनि छूटि गयौ यह वाद विवादू ।
ऐसी कृपा जु करी हम ऊपर सुंदर कै उर है गुरु दादू ॥४॥
कोउक गोरख को गुरु थापत कोउक दत्त[1] दिगंवर आदू ।
कोउक कंथर[2] कोउक भरथर[3] कोउ कबीर को राखत नादू ॥
कोउ कहै हरदास[4] हमार जु यों करि ठानत वाद विवादू ।
और तो संत सबै सिर ऊपर सुंदर कै उर है गुरु दादू ॥५॥

* * * *

जोगी कहैं गुरु जैन कहैं गुरु बोध कहैं गुरु जंगम[5] मानैं ।
भक्त कहैं गुरु न्यासी[6] कहैं वनवासी कहैं गुरु और बखानैं ॥
शेष[7] कहैं गुरु सोफी[8] कहैं गुरु याही ते सुंदर होत हरानैं ।
बाहु कहैं गुरु बाहु कहैं गुरु है गुरु सोई सबै भ्रम भानैं ॥७
सो गुरुदेव लिपै न छिपै कछु सत्व रजो तम ताप निवारी
इंद्रिय देह मृषा[9] करि जानत सीतलता समता उर धारी ॥

१—दत्तात्रेय योगीश्वर दिगंबर योगियों के पथ के आदि आचार्य
२—कंथरनाथ योगी । ३—भर्तृनाथ प्रसिद्ध भर्तृहरि राजाजी योगी हु
४—यह हरिदास निरंजनी डिंडवाने (मारवाड़) में हुए, दादूजी के शि
थे । फिर कबीर पथ में हो गए और भिन्न पथ चलाया । ५—योगियों
एक पथ जो लिंगपूजक और नंदीसेवक है । ६—संन्यासी । ७ मुसल
धर्म का आचार्य्य । ८—मुसलमानी वेदांत का अनुयायी । ९—मिथ्य

भ्रमहू कौ नाश नाहिं संशय रहतु है।
गुरु बिन बाट नाहिं कौड़ी बिन हाट नाहिं[1],
सुंदर प्रगट लोक वेद यौं कहतु है॥ १५॥
पढ़े कै न बैठो पास अषिर न बाँचि सकै,
बिनहि पढै तें कैसें आवत है फारसी।
जौहरी के मिलें बिन परष न जानै कोइ,
हाथ नग लिएं फिरै संशै नहिं टारसी॥
बैद न मिल्यो कोऊ बूँटी को बताइ देत,
भेद बिनु पाएं वाके औषद है छारसी।
सुंदर कहत मुख रंचहूँ न देष्यौ जाइ,
गुरु बिन ज्ञान ज्यौं अँधेरे मांहि आरसी॥ १६॥

*   *   *   *

गुरु तात गुरु मात गुरु बंधु निज गात,
गुरु देव नखसिख सकल सँवार्यो है।
गुरु दिए दिव्य नैन गुरु दिए मुख बैन,
गुरु देव श्रवन दे सब्द हू उचार्यौ है॥
गुरु दिए हाथ पाँव गुरु दियौ शीस भाव,
गुरु देव पिंड माँहि प्रान आइ डार्यौ है।
सुंदर कहत गुरु देवजू कृपालु होइ,

१—'हाट बाट' और 'कौड़ी बिन हाट' ये लोक-श्रुतियां है। इसी प्रकार अनेक कहावतें और मुहाविरे "सवैया" ग्रंथ में हैं।

काहू सौं न रोष काहू सौं न राग दोष,
काहू सौं न बैरभाव काहू की न घात है।
काहू सौं न बकवाद काहू सौं नहीं विषाद,
काहू सौं न संग न तौ कोऊ पक्षपात है॥
काहू सौं न दुष्ट वैन काहू सौं न लैन दैन,
ब्रह्म कौ विचार कछु और न सुहात है।
सुंदर कहत सोई ईसनि कौ महा ईस,
सोई गुरु देव जाकै दूसरी न बात है॥ १३॥
लोह कौं ज्यौं पारस पषान हू पलटि लेत,
कंचन छुवत होइ जग में प्रमानिए।
द्रुम कौं ज्यौं चंदनहुं पलटि लगाई वास,
आपुके समान ताके शीतलता आनिए॥
कीट कौं ज्यौं भृंगहुं पलटि के करत भृंग,
सोउ उडि जाइ तातै अचिरज मानिए।
सुंदर कहत यह सगरै प्रसिद्ध बात,
सद्य शिष्य पलटै सुसद्य गुरु जानिए॥ १४॥
गुरु बिन ज्ञान नाहीं गुरु बिन ध्यान नाहीं,
गुरु बिन आत्मा विचार ना लहतु है।
गुरु बिन प्रेम नाहिं गुरु बिन प्रीति नाहिं,
गुरु बिन शीलहू संतोष ना गहतु है॥
गुरु बिन प्यास[1] नाहिं बुद्धि कौ प्रकास नाहिं,

१—ज्ञान और मुक्ति की इच्छा, जिज्ञासुता—मुमुक्षुता।

(ऐसी कौन भेंट गुरुदेव आगे राषिए)

चिंतामनि पारस कलपतरु कामधेनु,
औरऊ अनेक निधि वारि वारि नाषिए।
जोई कछु देषिए सु सकल विनासवंत,
बुद्धि मैं विचार करि बहु अभिलाषिए॥
तातैं अब मन वच क्रम करि कर जोरि,
सुंदर कहत सीस मेल्हि दीन भाषिए।
बहुत प्रकार तीनौं लोक सब सोधे हम,
ऐसी कौन भेंट गुरुदेव आगैं राषिए॥ २३॥

* * * *

जोगी जैन जंगम संन्यासी बनवासी बोध,
और कोऊ भेष पच्छ सब भ्रम भान्यौ[1] है।
तापस ऋषीसुर मुनीसुर कवीसुर ऊ,
सवनि को मत देषि तत पहिचान्यौ है॥
वेदसार तंत्रसमर समृति पुरान सार,
ग्रथनि को सार सोई हृदै माहिं आन्यौ[2] है।
सुंदर कहत कछु महिमा कही न जाइ,
ऐसो गुरुदेव दादू मेरे मन मान्यौ है॥ २६॥

१—तोड़ा है, निवारण किया है। २—लाए हैं।

फेरि घाट घरि करि मोहिं निसतार्यौ है[1] ॥ १९ ॥

भूमि हू की रेनु की तो संख्या कोऊ कहत हैं,
भार हु अठारा द्रुम तिनके जो पात हैं।
मेघनि की संख्या सोऊ ऋषिनि कही विचारि,
बुंदनि की संख्या तेऊ आइकैं बिलात हैं॥
तारनि की संख्या सोऊ कही है पुरान माहिं,
रोमनि की संख्या पुनि जितनेक गात हैं।
सुंदर जहाँ लौं जंत सब ही को होत अंत,
गुरु के अनत गुन कापै कहे जात हैं॥ २१ ॥

(गुरु की तौ महिमा अधिक है गोविंद तें)

गोविंद के किए जीव जात हैं रसातल कौं,
गुरु उपदेशे सु तौ छूटे जम फंद तें।
गोविंद के किए जीव बस परे कर्मनि के,
गुरु के निवाजे सो फिरत हैं स्वछंद तें॥
गोविंद के किए जीव बूडत भौसागर में,
सुंदर कहत गुरु काढे दुख द्वंद तें।
और हू कहाँ लौं कछु मुख तें कहैं बनाइ,
गुरु की तौ महिमा अधिक है गोविंद तें॥ २२ ॥

१—जैसे द्विजातियों में द्विजन्मा होने का अर्थ है वैसे ही गुरु से शिष्यता में घटांतर होने में है। ज्ञान की दीक्षा से मनुष्य की काया पलट हो जाती है।

है गुनहगार[१] भी गुनह ही करत है,
षाइगा मार तब फिरै रोता ॥
जिन तुझे षाक सौं अजब पैदा किया,
तूं उसे क्यौं फरामोश[२] होता।
दास सुंदर कहै सरम तब ही रहै,
हक्क तूं हक्क तूं बोलि तोता ॥ २ ॥

(भी तुही भी तुही बोलि तूती)

आब[३] की बूँद औजूद पैदा किया,
नैन मुख नासिका करि संजूती[४]।
ख्याल ऐसा करै वही लीए फिरै,
जागि कै देखि क्या करे सूती ॥
भूलि उस षसम[५] कौं काम तैं क्या किया,
वेगि दै यादि करि मरि निपूती।
दास सुंदर कहै सर्व सुख तौ लहै,
भी तुही भी तुही बोलि तूती ॥ ३ ॥

(एक तूं एक तूं बोलि मैंनां)

अव्वल उस्ताद के कदम की षाक हो,
हिरस[६] बुगुजार[७] सब छोड़ि फैना[८]।

१—पापी। २—भूलता। ३—पानी (वीर्य)। ४—संयुक्त। बनीठनी। ५—मालिक और पति स्त्री को उलाहना देने में कड़ा शब्द है गाली के बराबर तथा सत्य भी है कि ईश्वर से मालिक को भूली। ६—हिर्स = कामना, इच्छा, लोभ। ७—बुगुजार = छोड़ दे। ८—फेनपिंड = मिथ्या वस्तुओं को अथवा ग्रामीण भाषा में फैन = मिथ्या कर्म।

(२) उपदेशचितावनी[1] कौ अंग

हंसाल छंद *

(राम हरि राम हरि बोलि सूवा)

तौ सही[2] चतुर तू जान[3] परवीन अति,
परै जनि पिंजरे[4] मोह कूवा ।
पाइ उत्तम जनम लाइ[5] लै चपल मन,
गाइ गोविंद गुन जीति जूवा ॥
आपु ही आपु अज्ञान नलिनी[6] बँध्यौ,
बिना प्रभु विमुख कै बेर मूवा[7] ।
दास सुंदर कहै परम पद तौ[8] लहै,
राम हरि राम हरि बोलि सूवा ॥ १ ॥

(हक्क तूं हक्क तू बोलि तोता[9])

नफ्स[10] शैतान कौं आपुनी कैद करि,
क्या दुनी मैं फिरै षाइ गोता ।

१–चिताने—चैतन्यता उपजानेवाला । कोई कोई चि तामणि लिखते हैं सो अशुद्ध है । *२७ मात्रा का । २० + १७,२० पर यति । मात्रा छंद । २–इसका संबंध—'चतुर तौ तू सही' (ठीक खरा) परंतु जान (बूझ कर) 'पिंजरे मत परै' । ३–छापे की पुस्तकों में 'तू जान' का 'सुजान' देकर पाठ भ्रष्ट कर दिया जिससे छंद भंग अलग हुआ । ४–किसी किसी प्रति में 'पजरे' पाठ है सो शुद्धता में ठीक है । ५–पकड़ । ६–सूवे का नलिनी (नालिका) पर अपने पजों से लटकना प्रसिद्ध है । ७–मरा इसलिये फिर जन्मा । ८–निश्चय ही जब तौ । ९–हक्क = सत्य ईश्वर । 'हक्क तू' (हक्क तू) ऐसा शब्द तोतों को प्राय मुसलमान पढ़ाते हैं । और भी तुही 'नबीजी' आदि भी । १०–अहंकार रूपी शैतान (महाशत्रु) ।

है गुनहगार[१] भी गुनह ही करत है,
षाइगा मार तब फिरै रोता ॥
जिन तुझे षाक सौं अजब पैदा किया,
तूं उसे क्यों फरामोश[२] होता ।
दास सुंदर कहै सरम तब ही रहै,
हक्क तूं हक्क तूं बोलि तोता ॥ २ ॥

(भी तुही भी तुही बोलि तूती)
आब[३] की बूँद मौजूद पैदा किया,
नैन मुख नासिका करि संजूती[४] ।
ख्याल ऐसा करै उही लीए फिरै,
जागि कै देखि क्या करे सूती ॥
भूलि उस षसम[५] कौं काम तैं क्या किया,
वेगि दै यादि करि मरि निपूती ।
दास सुंदर कहै सर्व सुख तौ लहै,
भी तुही भी तुही बोलि तूती ॥ ३ ॥

(एक तूं एक तूं बोलि मैंना)
अव्वल उस्ताद के कदम की षाक हो,
हिरस[६] बुगुजार[७] सब छोड़ि फैना[८] ।

१–पापी । २–मूलता । ३–पानी (वीर्य) । ४–संयुक्त । बनीठनी । ५–मालिक और पति स्त्री को उलाहना देने में कड़ा शब्द है गाली के बराबर तथा सत्य भी है कि ईश्वर से मालिक को भूली । ६–हिर्स = कामना, इच्छा, लोभ । ७–बुगुजार = छोड़ दे । ८–फेनपिंड = मिथ्या वस्तुओं को अथवा ग्रामीण भाषा में फैन = मिथ्या कर्म ।

यार दिलदार दिल मांहि तूं याद कर,
है तुझको पास तूं देपि नैना ॥
जान का जान[1] है जिंद का जिंद[2] है,
है सपुन का सपुन[3] कछु समुझि सैनां।
दास सुंदर कहै सकल घट मैं रहै,
एक तू एक तूं बोलि मैंना ॥ ४ ॥

मनहर छंद

बार बार कह्यो तोहि सावधान क्यों न होहि,
ममता की मोठ सिर काहे कौं धरतु है।
मेरौ धन मेरौ धाम मेरौ सुत मेरी वाम,
मेरे पशु मेरौ ग्राम भूल्यो यौं फिरतु है॥
तूं तौ भयौ बावरौ बिकाइ गई बुद्धि तेरी,
ऐसो अंध कूप गृह तामैं तूं परतु है।
सुंदर कहत तोहि नेक हूँ न आवै लाज,
काज कौं बिगारि कैं अकाज क्यौं करतु है ॥ ६ ॥
तेरै तौ कौं पेच परौ गाँठि अति घुरि गई,
ब्रह्मा आइ छोरै क्यौं हिं छूटत न जबहू।
तेल सौं भिजोइ करि चोथरा लपेट राषै,
कूकर की पूँछ सूधी होइ नहीं तबहू ॥

१—ज्ञानी—जाननेवाला, जीव। २—जीव। भूत। ३—बात। भेद की बात।

सासू देत सीष बहू कीरी कौं गनति जाइ,
कहत कहत दिन बीत गह्यो सबहू ।
सुंदर अज्ञान ऐसौं छाड़्यो नहिं अभिमान,
निकसत प्रान लषै चेत्यो नहिं कबहू ॥ ७ ॥

बालू मांहि तेल नहिं निकसत काहू बिधि,
पाथर न भीजै बहु बरषत घन[1] है ।
पानी कै मथें तें कहुँ घीव नहिं पाइयत,
कूकस कै कूटें नहिं निकसत कन है ॥
सून्य कूं मूठो भरे तें हाथ न परत कछु,
ऊसर कैं बाहें कहाँ उपजत अन्न है ।
उपदेश औषध कवन विधि लागै ताहि,
सुंदर असाध्य रोग भयौ जाकै मन है ॥ ८ ॥

बारू कै मंदिर मांहि बैठि रह्यौ थिर होइ,
राषत है जीवने की आसा केऊ दिन का ।
पल पल छीजत घटत जात घरी घरी,
बिनसत बार कहा षबरि न छिन की ॥
करत उपाइ झूठै लैनदैन षान पान,
मूसा इत उत फिरै ताकि रही मिनकी[2] ।
सुंदर कहत मेरी मेरी करि भूल्यौ सठ,
चंचल चपल माया भई किन किन की ॥ १० ॥

घरी घरी घटत छीजत जात छिन छिन,

१—मेघ । बादल । २—बिल्ली ।

भीजत ही गरि जात माटी कौसौ ढेल है।
मुकति कै द्वारे आइ[1] सावधान क्यौं न होहि,
वार वार चढ़त न त्रिया कौ सौ तेल है॥
करि लै सुक्रित हरि भजन अखंड उर,
याही मैं अंतर[2] परै यामैं ब्रह्म मेल है।
मनुष जनम यह जीति भावै हारि अब,
सुंदर कहत यामैं जुवा कौ सौ षेल है॥ १३॥
जोवन कौ गयौ राज और[3] सब भयौ साज,
आपुनि दुहाई फेरि दमामो वजायौ[4] है।
लकुटी हथ्यार लिए नैनन की ढालि[5] दिए,
सेत वार भए ताकौ तंवू सौ तनायौ है॥
दसन गए सु मानौं दरवान दूर कीए,
जौंगरो[6] परो सु औरै विछौना विछायौ है।
सीस कर कपत सु सुंदर निकारयौ रिपु,
देषत ही देषत बुढ़ापौ दौरि आयौ है॥ १४॥

इंदव छंद

पाइ अमोलिक देह इहै नर क्यों न विचार करै दिल अंदर।
कामहु क्रोधहु लोभहु मोहहु लूटत हैं दसहूँ दिसि द्वुंदर[7]॥

१—मनुष्य देह पाकर। २—ब्रह्म से दूरी। ३—अन्य भिन्न। ४—नक्कारा बजा चुका। ५—अंधा हो गया। आंख की ढकनी ढाल सी है सो ही ढाल हो गई। जैसे ढाल आगे आने से आगे कुछ नहीं दिखाई देता। ६—झुरी, लुरी, बुढ़ापे से सिमटी खाल। ७—दुंद मचा कर। 'अंदर' अनुप्रास मानैं तो 'सुंदर' को 'स्वंदर' पढ़ें।

तू अब वंछत है सुरलोकहि कालहु पाय परै सु पुरंदर।
छाडि कुबुद्धि सुबुद्धि हृदै धरि आतमराम भजै किन सुंदर[१]॥१७॥
इंद्रिनि के सुख मानत है सठ या हित ते वहुतै दुख पावै।
ज्यौं जल मैं झष मांसहि लीलत स्वाद बंध्यौ जल बाहरि आवै॥
ज्यौं कपि मूठि न[२] छाडत है रसना वसि बंदि परयो बिललावै।
सुंदर क्यौं पहिले न सँभारत जो गुर षाई सुकान बिंधावै॥१८॥
देषत के नर दीसत है परि लच्छन तो पशु के सब ही हैं।
बोलत चालत पीवत षात सुवै घर वे वन जात सही हैं॥
प्रात गए रजनी फिरि आवत सुंदर यों नित भारवही हैं।
और तो लच्छन आइ मिले सब एक कमी सिर सिंग नहीं हैं॥२१॥
तूं ठगि कैं धन और को[३] ल्यावत तेरेउ तौ घर औरइ फोरै।
आगि लगै सब ही जरि जाय सु तू दमरी दमरी करि जोरै॥
हाकिम कौ डर नाहिंन सूझत सुंदर एकहि बार निचोरै।
तू षरचै नहिं आपुन षाइसु तेरिहि चातुरि तोहि लै बोरै॥२५॥

मनहर छंद

करत प्रपंच इनि पंचनि कै बस परयौ,
परदारा रत भै[४] न आनत बुराई कौ।

१—इसमें आठ भगण (ऽ।।) होने से २४ अक्षर किरीट सवैया है, इंदव नहीं। आगे १८ आदि संख्या के छंद इंदव ही है। २—मटकी में खाने के लालच से बंदर ने हाथ डाला कि फंदे में हाथ फँस गया। (देखो 'पंचेंद्रिय चरित्र' का उपदेश ३)। ३—यहाँ इंदव के लक्षणानुसार ह्रस्व वर्ण होना था परंतु सुंदरदासजी प्रायः गण नियम नहीं निबाहते। ४—भय, डर।

परधन हरै परजीव की करत घात,
मद्य मास षाइ लव लेश न भलाई कौ ॥
होइगौ हिसाव तब मुख तें न आवै ज्वाव,
सुंदर कहत लेपा लेत राई राई कौ।
इहाँ तो किए विलास जम की न तोहि त्रास,
उहाँ तौ न ह्वैहै कछु राज पोपांवाई[1] कौ ॥ २६ ॥
दुनिया को दौरता है औरति कौ लौरता[2] है,
औजूद[3] को मोरता है वटोही सराई[4] का।
मुरगी कौ मोंसता है वकरी कौ रोंसता[5] है,
गरीब कौ पोसता है बेमिहर[6] गाइ का।
जुलम कौ करता है धनी सौं न डरता है,
दोजष कौ भरता है षजाना बलाइ का।
होइगा हिसाव तब आवैगा न ज्वाब कछु,
सुंदर कहत गुनहगार है षुदाइ का ॥ २७ ॥
कर कर आयौ[7] जब षर षर काट्यो नार,[8]
भर भर बान्यौ ढोल घर घर जान्यौ है।
दर दर दौरयौ जाइ नर नर आगे दीन,
बर बर बकत न नैंक अलसान्यौ है ॥

१—पोल का राज। २—लडता है। ३—शरीर, काया। ४—संसाररूपी सराय का मुसाफिर। ५—मार खाता है। ६—शत्रु। ७—पूर्व जन्म के कर्म करके यहाँ जन्म लिया। ८—नाग (बच्चे की नाभि का नाल) काटा अर्थात् सब जन्मक्रिया हुई।

सर सर सोधै धन वर तर तोरै पात,[1]
जर जर काटत अधिक मोद मान्यौ है।
फर फर फूल्यौ फिरै डर डरपै न मूढ,
हर हर हँसत न सुंदर सकान्यौ है॥ २८॥

जनम सिरानौ[2] जाय भजन विमुख सठ,
काहे कौं भवन[3] कूप बिन मीच मरिहै।
गहत अविद्या जानि शुक नलिनी ज्यौं मूढ़,
करम विकरम करत नहिं डरिहै॥
आपुहि तैं जात अंध नरकनि वार वार,
अजहूँ न शंक मन मांहि अब करिहै।
दुख कौ समूह अवलोकि कै न त्रास होइ,
सुंदर कहत नर नागपासि[4] परिहै॥२९॥

(३) काल चितावनी को अंग

इंदव छंद

तैं दिन चारि विराम लियौ सठ तेरे कहैं कछु ह्वै गइ तेरी।
जैसहिं बाप ददा गए छाड़ि सु तैसहिं तूं तजि है पल फेरी॥

१–जैसे रोंख से पत्ता तोडकर भरोटा बनाया जाता है। २–बीता जाता है। ३–घर—शरीर वा संसार। ४–यह छंद चित्रकाव्य की रीति से नागबध रूप में आता है। लिखित प्राचीन पुस्तक में सुंदरदासजी ने अपने हाथ से यह चित्र बनाया है। इसी से यहाँ भी दिया है। नागपाश प्राचीन काल में एक महाअस्त्र होता था जिससे बड़े बड़े योद्धा बाँधे जाते थे। यह संसार भी वैसा ही बंधन है।

मारिहै काल चपेटि अचानक होइ घरीक में राप की ढेरी ।
सुंदर लै न चलै कछु संग सु भूलि कहै नर मेरि हि मेरी ॥ ३ ॥
कै यह देह जराइ कैं छार किया कि किया कि किया कि किया है ।
कै यह देह जिमीं महिं पोदि दिया कि दिया कि दिया कि दिया है ॥
कै यह देह रहै दिन चारि जिया कि जिया कि जिया कि जिया है ।
सुंदर काल अचानक आइ लिया कि लिया कि लिया कि लिया है[1] ४
तू कछु और विचारत है नर तेरौ विचार धर्यौ हि रहैगौ ।
कोटि उपाय करै धन कै हित भाग लिख्यौ तितनौहि लहैगौ ॥
भोर कि साँझ घड़ी पल मांझ सु काल अचानक आइ गहैगौ ।
राम भज्यौ न कियौ कछु सुकृत सुंदर यौं पछिताइ कहैगौ ॥ ७ ॥
सोइ रह्यौ कहा गाफिल ह्वै करि तौ सिर ऊपर काल दहारै[2] ।
धामस धूमस लागि रह्यौ सठ आय अचानक तोहि पछारै ॥
ज्यौं वन में मृग कूदत फाँदत चित्रक[3] लै नख सौं उर फारै ।
सुंदर काल डरै जिहि कै डर ता प्रभु कौं कहि क्यों न सँभारै ॥१०॥

मनहर छंद

करत करत धंध कछुव न जानैं अंध,
आवत निकट दिन आगिलौ चपाकि दै[4] ।

१—क्रिया की पुनरुक्ति कालक्रम और फल निश्चय के दिखाने को है ।
२—गर्जना करै । ३—चीता । ४—झट—अचानक बिजली की नाईं ।
'दै' शब्द रजवाड़ी भाषा में क्रियाविशेषण होता है जिसका अर्थ 'कर के' होता है । इसका दूसरा रूप 'देनी' भी होता है, जैसे, 'झटदेणी' ।

जैसे बाज तीतर कौं दाबत अचानचक,
जैसे बक मछरी कौ लीलत लपाकि दै[१] ॥
जैसे मक्षिका की घात मकरि करत आइ,
जैसे साँप मूषक कौं ग्रसत गपाकि दै[२] ।
चेत रे अचेत नर सुंदर सँभारि राम,
ऐसैं तोहि काल आइ लेइगौ टपाकि दै[३] ॥ १४ ॥
मेरौ देह मेरौ गेह मेरौ परिवार सब,
मेरौ धन माल मैं तो बहु विधि भारौ हौं[४] ।
मेरे सब सेवक हुकम कोऊ मेटैं नाहिं,
मेरी जुवती कौ मैं तो अधिक पियारो हौं ॥
मेरौ वंस ऊँचौ मेरे बाप दादा ऐसे भए,
करत बड़ाई मैं तौ जगत उजारौ हौं ।
सुंदर कहत मेरौ मेरौ कर जानैं सठ,
ऐसै नहिं जानैं मैं तो कालही को चारौ हौं ॥ १५ ॥
ऊठत बैठत काल जागत सोवत काल,
चलत फिरत काल काल वीर घस्यौ है ।
कहत सुनत काल खातहू पिवत काल,
काल ही के गाल महिं हर हर हँस्यौ है ॥

१—झप से निगले। २—एक सपट्टे में ग्रास कर ले। ३—चट उठा लेगा यह अभिप्राय है। ४—'हूं' को कहीं कहीं 'हौं' भी लिखा है। 'हौं' का अर्थ 'मैं' भी है।

तात मात बंधु काल सुत दारा गृह काल,
सकल कुटुंब काल कालजाल फँस्यौ है।
सुंदर कहत एक राम विन सब काल,
काल ही को कृत[1] कियौ अंत काल ग्रस्यौ[2] है॥ १७॥
बरषा भए तें जैसें बोलत भमीरी[3] सुर,
षंडन[4] परत कहुँ नैक हूँ न जानिए।
जैसें पूंगी बाजत अखंड सुर होत पुनि,
ताहू मैं न अंतर अनेक राग गानिए॥
जैसें कोऊ गुडी[5] कौं चढावत गगन माहिं,
ताह की तौ धुनि सुनि वैसे ही[6] बषानिए।
सुंदर कहत तैसें काल कौ प्रचंड वेग,
रात[7] दिन चल्यौ जाइ अचिरज मानिए॥ २१॥
झूठे हाथी झूठे घोरा झूठे आगै झूठा दोरा,
झूठा बंध्या झूठा छोरा[8] झूठा राजा रानी है।
झूठी काया झूठी माया झूठा झूठे धंधे लाया,

१–कर्म—रचना। २–खाया। काल ही करता है, वही मारता है। ३–झींगरी, झिल्ली। ४–ठहराव। ५–कनकव्वा। ढुगडा जिसको घुँघरू बाँधकर रात को चराग सहित चढा देते है। ६–लगातार शब्द होना। ७–रात दिन ही मानो काले धौले संकेतद्योतक है। भागवत में इनको काले धौले चूहे कर आयु काटने के कारण कहा है। ८–छोड़ा—मुक्त किया। मुक्ति भी मिथ्या भ्रम है।

झूठा मूवा झूठा जाया झूठी याकी वानी है ॥
झूठा सोवै झूठा जागै झूठा जूझै झूठा भागै,
झूठा पीछै झूठा लागै[१] झूठे झूठी मानी है।
झूठा लीया झूठा दीया झूठा षाया झूठा पीया,
झूठा सौदा झूठै कीया ऐसा झूठा प्रानी है ॥ २५ ॥

झूठ सौ बँध्यौ है लाल[२] ताही तैं ग्रसत काल,
काल विकराल व्याल सब ही कौं षात है।
नदी कौ प्रवाह चल्यौ जात है समुद्र माहिं,
तैसैं जग काल ही के मुख मैं समात है[३] ॥
देह कौ महत्व तातैं काल कौं भै मानत है,
ज्ञान[४] उपजें तें वह काल हू बिलात है।
सुंदर कहत परब्रह्म है सदा अखंड,
आदि मध्य अंत एक सोई ठहरात[५] है ॥ २६ ॥

इंदव छंद

काल उपावत[६] काल षपावत[७] काल मिलावत है गहि माटी।
काल हलावत काल चलावत काल सिषावत है सब आँटी[८] ॥

१—पीछा करे, अनुसरे। ＊ यह छंद सर्व दीर्घाक्षरी है जो चित्र काव्य का एक रूप है। २—प्यारा, पुत्र। ३—गीता में विराट् स्वरूप के वर्णन में "यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगा." इत्यादि है। ४—ज्ञान की उत्पत्ति से कोई भय नहीं। ५—दिक् का अभाव। ६—उपजाता है, बनाता है। ७—नष्ट करता है, लय करता है। ८—चतुर इर्या, चक्कर।

काल बुलावत[1] काल भुलावत[2] काल डुलावत[3] है वन घाटी ।
सुंदर काल मिटै तब ही पुनि ब्रह्म विचार पढै जब पाटी[4] ॥२७॥

---

(४) देहात्मा बिछोह को अंग

इंदव छंद

मात पिता जुवती सुत बांधव लागत है सबकौं अति प्यारौ ।
लोग कुटंब घरौ हित राषत होइ नहीं हमतैं कहुँ न्यारौ ॥
देह सनेह तहाँ लग जानहुँ बोलत है मुख शब्द उचारौ ।
सुदर चेतनि शक्ति गई जब बेग कहै घर माहि[5] निकारौ ॥३॥

मनहर छंद

कौन भाँति करतार कियौ है शरीर यह,
पावक[6] के मध्य देषौ पानी सो जमावनौं ।
नासिका श्रवन नैन वदन रसन वैन,
हाथ पाँव अंग नख शिख कौ बनावनौं ॥
अजब अनूप रूप चमक दमक ऊप[7],
सुंदर सोभित अति अधिक सुहावनौं ।

१—खैंचता है । २—आदि सत्य अवस्था का विस्मरण करा देता है । ३—कर्म के फेर में डालकर इतस्तत ले जाता है । ४—जैसे चटशाल में बालक पढे वैसे।बाल्यावस्था से ही पढे । ५—माहि—से, बाहर । ६—जठराग्नि मे बिंदु का बढना और शरीर बनना । ७—ओप—चमक वा शोभा ।

जाही छन चेतना शकति जब लीन होइ,
ताही छन लगत सवनि कौं अभावनौं ॥ ५ ॥
रज अरु वीरज कौ प्रथम सँयोग भयौ,
चेतना शकति तब कौन भांति आई है।
कोऊ एक कहैं वीज मध्य ही कियौ प्रवेश,
किनहूँक पंच मास पीछै कै सुनाई है ॥
देह कौ विजोग जब देषत ही होइ गयौ,
तब कोऊ कहौ कहां जाइकै समाई है।
पंडित ऋषीस्वर तपीस्वर मुनीस्वरऊ,
सुंदर कहत यह किनहूँ न पाई है[1] ॥ ६ ॥
देह तौ सुरूप तौलौं जौलौं है अरूप माहिं,
सब कोऊ आदर करत सनमान है।
टेढ़ी पाग बाँधि वार वार ही मरोरै मूँछ,
वाँह उसकारै[2] अति धरत गुमान है ॥
देस देस ही के लोग आइकैं हजूर होहिं,
वैठ कर तषत कहावै सुलतान है।
सुंदर कहत जब चेतना सकति गई,
वहै देह ताकी कोऊ मानत न आन[3] है ॥ ११ ॥

१—यह विषय कैसा विचार करने के योग्य है सो पाठक स्वय ध्यान दें। २—उकसावै, कुछ कुछ उठावै फिर मरोड़ै। ३—सौगंद, आतंक।

(५) तृष्णा को अंग

इंदव छंद

नैननि की पलही पल मैं चण आध घरी घटिका जु गई है ।
जाम गयौ जुग जाम गयौ पुनि साँझ गई तव राति भई है ।।
आज गई अरु कालिह गई परसौं तरसौं कछु और ठई है ।
सुंदर ऐसै हि आयु गई तृष्णा दिन ही दिन होत नई है ।। १ ।।

डुमिला छंद[1]

कनहीं कन कौ विललात फिरै सठ जाचत है जनही जन कौं ।
तनही तन को अति सोच करै नर पात रहै अनही अन कौं ।।
मन ही मन की तृष्णा* न मिटी पुनि धावत है धन ही धन कौं ।
छिन ही छिन सुंदर आयु घटी कबहूँ न गयौ बन हो बन कौं [2]।।२।।

इंदव छंद

लाष करोरि अरब्ब षरब्बनि नीलि पदम्म तहाँ लग षाटी ।
जोरिहि जोरि भँडार भरे सब और रही सु जिमीं तर दाटी[3] ।।
तौहुं न तोहि संतोष भयौ सठ सुंदर तै तृष्णा नहि काटी ।
सूझत नाहिंन काल सदा सिर मारि कैं थाप मिलाइहै माटी।।४।।
भूष नचावत रंकहि राजहि भूष नचाइ कै विश्व बिगोई ।
भूष नचावत इंद्र सुरासुर और अनेक जहाँ लग जोई ।।

१—यह गणछंद २४ अचर का है जिसमें ७ सगण (।।ऽ) होते हैं ।
* छंद के नियम से 'तृसना' पढ़ना चाहिए । २—इसमें से चित्र बनता है । ३—पृथ्वी में गाढ़ दी ।

भूष नचावत है अध ऊरध तीनहुँ लोक गनै कहा कोई।
सुंदर जाइ तहाँ दुख हो दुख ज्ञान विना न कहूँ सुख होई॥६॥

(हे तृसना कहि कै तुहि थाक्यौ)

तैं कछु कान धरी नहिं एकहु बोलत बोलत पेटहि पाक्यौ।
हौं कोउ बात बनाइ कहूँ जब तैं सब पीसत हो सब फाँक्यौ[1]॥
केतक द्यौस भये परमोधत[2] तैं अब आगहिं[3] कौं रथ हाँक्यौ[4]।
सुंदर सीष गई सब ही चलि तृसना कहि कैं तुहि थाक्यौ॥१२॥

—

(६) अधीर्य उराहने को अंग

[उपनिषदो में ऐसा वर्णन आया है कि सृष्टि के आदि, अंत और मध्य तीनो में क्षुधा प्रधान है। तृष्णा भी उसी क्षुधा का अंग है। सर्वभक्षक, सर्वव्यापक अग्नि भी विराट विश्व की भूख ही कही जाती है, सब भूतव्यापिनी यह क्षुधा जीवों को कर्मों में प्रेरणा करती रहती है। इष्ट, भोज्य और अभिलषित पदार्थों के न मिलने से प्राणियो को अधीरता होती है, विशेष करके उत्कट क्षुधा जब व्याप्त होती है उस समय धीरो का भी धैर्य छूट जाता है। इस क्षुधा का प्रधान स्थान पेट है। यह पेट पापी जो कुछ नाच नचाता है नाचना पड़ता है। राजा, रंक, ज्ञानी, ध्यानी, पंडित, मूर्ख आबाल वृद्ध सब इसके वशीभूत है। इसी पेट की महिमा को अथवा तज्जनित अधैर्य की व्यवस्था को

१—'पीसते फाँकना' मुहावरा है। काम के होने से पहले ही उतावलापन कर काम बिगाड़ना। २—प्रबोधन करते, समझाते। ३—आगे को ही। ४—रथ हाँकना, मुहावरा है। जैसे रथ में बैठनेवाला किसी की प्रतीक्षा न कर अभिमान से आगे चला जाता है। यहाँ तृष्णा की वृद्धि से प्रयोजन है।

महात्मा सुंदरदास जी ने सुललित शब्दावरण में द्वादश छंदों में वर्णन किया है। इस अंग को "पेट का अंग" भी कहा जाता तो ठीक होता। इस पेट की विपत्ति से उकता कर मनुष्य कभी कभी परमेश्वर को भी उपालंभ देने लग जाता है और अपनी प्रारब्ध को भी कोसता है। ऐसी बातों को भी चोज भरे वाक्यों में ग्रंथकर्त्ता ने लिखा है।]

इंदव छंद

पाव दिए चलनै फिरनै कहुँ हाथ दिए हरि कृत्य करायौ।
कान दिए सुनिए हरि कौ जस नैंन दिए तिनि माग दिपायौ॥
नाक दियौ मुख सोभत ताकरि जीभ दई हरि कौ गुन गायौ।
सुंदर साज दियौ परमेश्वर पेट दियौ परि पाप लगायौ॥ १॥

कूप भरै अरु वापि[1] भरै पुनि ताल भरै वरपा रितु तीनौं।
कोठि भरै घट माट भरै घर हाट भरै सब ही भर लीनौं॥
षंदक षास उषारि भरै पर पेट भरै न बड़ौ दर[2] दीनौं।
सुंदर रीतुई[3] रीतु रहै यह कौन षडा परमेश्वर दीनौं॥ २॥

मनहरन छंद

किधौ पेट चूल्हा किधौ भाटी किधौं भार आहि,
जोई कछु झोंकिए सु सब जरि जातु है।
किधौं पेट थल किधौं वावी किधौं सागर है,
जितौ जल परै तितौ सकल समातु है॥
किधौं पेट दैत्य किधौं भूत प्रेत राक्षस है,
षावुँ षावुँ करै कहूँ नैकु न अघातु है।

---

[1]—[illegible]ी। [2]—दर दर, दीन करनेवाला। [3]—रीता।

सुंदर कहत प्रभु कौन पाप लायौ पेट,
जब तें जनम भयौ तब ही कौ षातु है ॥ ३ ॥
पाजी[1] पेट काज कोतवाल कौ अधीन होत,
कोतवाल सु तौ सिकदार आगे लीन है।
सिकदार दीवान कै पीछे लग्यो डोलै पुनि,
दीवान हूँ जाइ पातिसाह आगें दीन है॥
पातसाहि कहै या षुदाइ मुझे और देइ,
पेट ही पसारै नहिं पेट वसि कीन है।
सुंदर कहत प्रभु क्यौं हुँ नहिं भरै पेट,
एक पेट काज एक एक कौ अधीन है ॥ ५ ॥

इंदव छंद

पेटहि कारन जीव हतै बहु पेटहिं मांस भषैरु सुरापी[2] ।
पेटहि लैकर चोरि करावत पेटहि कौं गठरी गहि कापी[3] ॥
पेटहि पांसि गरे महिं डारत पेटहि डारत कूपहु वापी।
सुंदर काहि को पेट दियौ प्रभु पेट सो और नहीं कोउ पापी ॥ ६॥
औरन कौ प्रभु पेट दियौ तुम तेरे तौ पेट कहूँ नहिं दीसै।
ये भटकाइ दिए दशहूँ दिशि कोउक रांधत कोउक पोसै ॥
पेटहि कारनि नाचत हैं सब ज्यौं घर ही घर नाचत कीसै[4] ।
सुंदर आपु न षाहु न पीवहु कौन करी इनि ऊपर रीसै[5] ॥१०॥

१—पयादा। २—सुरा पीनेवाला होता है। ३—काटी। ४ बंदर। ५—कोप।

मनहर छंद

काहे कौं काहू कै आगै जाइ कै अधीन होइ,
दीन दीन वचन उचार मुख कहते।
जिनि कै तौ मद अरु गरव गुमान अति,
तिनि कै कठोर बैन कबहूँ न सहते॥
तुम्हारेई भजन सौं अधिक लैलीन अति,
सकल कौं त्यागि कै एकंत जाइ गहते।
सुंदर कहत यह तुमहीं लगायौ पाप,
पेट न हुतौ तौ प्रभु बैठि हम रहते॥ ११॥

---

(७) विश्वास कौ अंग

[उपर्युक्त अंग में अधैर्य्य और पेट की पुकार से मानो एक प्रकार अविश्वास की नकल दीख पडती है। इसके साथ ही ग्रंथकर्ता ने विश्वास का अंग जुटा दिया है जिसमें जगद्भर्ता की पोषण-शक्ति और उसके अद्भुत प्रबंध को दिखाया है कि वह ईश्वर ऐसा शक्तिमान् है कि जीव की उत्पत्ति के साथ ही उसके पालन पोषण का प्रबंध कर देता है। जिसको चोंच देता है उसको चून भी देता है, जिसका जैसा आहार है उसको वैसा ही पहुँचता है, कीड़ी को कण और हाथी को मण। कोई भी जंतु जीव भूखा रहकर नहीं सोता, ईश्वर सबको पहुँचाता है। इसलिये उस पर विश्वास रखना चाहिए और वृथा पेट की पुकार नहीं करनी चाहिए।]

इंदव छंद

होहि निचिंत करै मति चिंतहि चंच दई सोइ चिंत करैगौ।
पाँव पसारि परयौ किन सोवत पेट दियौ सोइ पेट भरैगौ॥

जीव जितै जल कै थल कै पुनि पाहन मैं पहुँचाइ धरैगौ ।
भूषहि भूष पुकारत है नर सुंदर तूँ कहा भूष मरैगो ॥ १ ॥
धीरज धारि विचार निरंतर तोहि रच्यौ सु तौ आपुहि ऐहै[१] ।
जेतक भूष लगी घट प्राणहि तेतक तू अनयासहि पैहै[२] ॥
जौ मन मैं तृसना करि धावत तौ तिहुँ लोकन षात अघैहै[३] ।
सुंदर तू मति सोच करै कछु चंच दई सोइ चूनिहु दैहै ॥ २ ॥

मनहर छंद

काहे कौं वयूरा[४] भयौ फिरत अज्ञानी नर,
तेरौ तो रिजक तेरे घर बैठें आइहै ।
भावै तूँ सुमेरु जाहि भावै जाहि मारू देश,
जितनौक भाग लिष्यौ तितनौ हि पाइहै ॥
कूप माँझ भरि भावै सागर कै तीर भरि,
जितनौक भाँडौ नीर तितनौ समाइहै ।
ताहितै संतोष करि सुंदर विश्वास धरि,
जितनौ रच्यौ है घट सोइ जु भराइहै* ॥ ८ ॥
देषि धौं सकल[५] विश्व भरत भरनहार,
चूंच कै समान चूनि सबहि कौं देत है ।
कीट पशु पंषी अजगर मच्छ कच्छ पुनि,
उनके न सोदा कोउ न तौ कछु षेत है ॥

१—आ जायगा वा आ जाता है। २—पायगा। ३—तृप्त होगा या होता है। ४—पवन का ववूला। * पाठांतर—'अमराइहै'। ५—तू देख तो सही, क्या तू नहीं देखता।

पेटहि कै काज राति दिवस भ्रमत सठ,
मैं तो जान्यौ नीकै करि तू तौ कोउ प्रेत है।
मानुष शरीर पाइ करत है हाइ हाइ,
सुंदर कहत नर तेरै सिर रेत[१] है॥ ११॥

---

(८) देहमलिनता गर्वप्रहार को अंग

[इस चणभंगुर काया के स्थूलांश के गुणों से गर्वित होनेवाले अल्पज्ञों के उपदेश निमित्त यह चेतावनी है। इस देह में अनेक मल भरे है। हाड़, मास, रक्त, कफ आदि मल से पूरित रहते हैं तिस पर भी लोग ऐंठते और गर्व में भरे रहकर ईश्वर और सुकार्यों को भूले रहते हैं सो ही दुःख का कारण होता है।]

मनहर छंद

देह तौ मलीन अति बहुत विकार भरे,
ताहू माहिं जरा व्याधि सब दुख रासी है।
कबहूँक पेट पीर कबहूँक सिरवाहि[२],
कबहूँक आँखि कान मुख मैं बिथा सी है॥
औरऊ अनेक रोग नख सिख पूरि रहे,
कबहूँक स्वास चलै कबहूँक खाँसी है।
ऐसौ या शरीर ताहि आपनौं कै[३] मानत है,
सुंदर कहत यामैं कौन सुखबासी है॥ १॥

१—धूल, मिट्टी, क्योंकि मनुष्य होकर पशुओं से भी हीन दशा को असंतोष से पहुँच गया। २—'मथवाय'—शिरःपीड़ा। ३—कैसे, क्या, क्योंकर।

जा शरीर माहिं तूं अनेक सुख मानि रह्यौ,
ताहि तूं विचारि यामैं कौन बात भली है।
मेद मज्जा मांस रग रगनि माहीं रकत,
पेटहूँ पिटारीसी मैं ठौर ठौर मली है॥
हाड़नि सौं मुख भर्‌यौ हाड़ ही के नैन नाक,
हाथ पाँव सोऊ सब हाड़ ही की नली है।
सुंदर कहत याहि देषि जनि भूलै कोइ,
भीतर भंगार[1] भरी ऊपर तै कली[2] है॥ २॥

---

(८) नारीनिंदा को अंग

[निज स्थूल देह के अभिमान में तो मनुष्य मरै सो मरै यह अन्य शरीर अर्थात् नारी के रूप रंग से भी विवश हो जाता है क्योंकि यह इस बात को भूला हुआ है कि नारी का शरीर भी तो वही मलिन पदार्थों का संघट है, उपरांत वह मोह-पाश में बद्ध और काम-बाण से विद्ध होकर इस लोक और परलोक दोनों को बिगाड़ती है। परमार्थ तत्व के अर्थियों को नारीरूपी विघ्न से सदा बचना ही हितकारी है, यह इस लोक में नरक वर्ग-साधक और अपवर्ग-बाधक शत्रु है। इस अंग के छंद बड़े ही रोचक और प्रसिद्ध है।]

मनहर छंद

कामिनि को तन* मानो कहिए सघन वन,
वहां कोऊ जाइ सु तो भूलिकैं परत है।

१—टूटी चीजें, कूड़ा कर्कट। २—कलई, रांगे वा सफेदी की पुताई। * पाठांतर—देह।

कुंजर है गति कटि केहरी को भय जामैं,
वेनी काली नागनीऊँ फन कौं धरतु है ॥
कुच हैं पहार जहाँ काम चौर रहै तहाँ,
साधिकैं कटाच्छ वान प्रान कौं हरतु है।
सुंदर कहत एक और डर अति तामैं,
राच्छस वदन षाउँ षाउँ ही करतु है ॥ १

विष ही की भूमि माहि विष के अँकूर भए,
नारी विष वेलि वढ़ी नख सिख देखिए।
विष ही के जर मूर विष ही के डार पात,
विष ही के फूल फर लागे जू विसेषिए ॥
विष के तंतू पसारि उरझाए आँटी मारि[1],
सब नर वृच्छ पर लपटी ही लेषिए।
सुंदर कहत कोऊ सत तरु वंचि गए,
तिनकै तो कहूँ लता लागी नहिं पेषिए ॥ २ ॥

रसग्रंथों की निंदा। कुंडलिया छंद

रसिकप्रिया[2] रसमंजरी[3] और सिंगार[4] हि जानि।
चतुराई करि बहुत विधि विषै वनाई आनि[5] ॥

१—कटाच्छ हावभाव आदि ततु फैलाकर, वल्लरी के समान, माया-जाल में फँसा वा लपेटकर। आँटी = पेंच, लपेट। मारि = डालकर।
२—केशवदासकृत (नायिका-भेद का) रसिकप्रिया ग्रंथ। ३—संस्कृत में नायिका-भेद का ग्रंथ। इसी का अनुवाद 'सुंदर शृंगार' ग्रंथ है।
४—सुंदर कवि आगरेवाले ने 'रसमंजरी' संस्कृत का छंदोबद्ध अनुवाद सं० १६८८ मे किया था। ५—लाकर वा मर्यादा।

विषै बनाई आनि लगत विषयिन कौं प्यारी।
जागै मदन प्रचंड सराहैं नखसिख[१] नारी॥
ज्यौं रोगी मिष्टान्न षाइ रोगहि विस्तारै।
सुंदर यह गति होइ जु तौ रसिक प्रिया धारै॥ ५॥

(१०) दुष्ट को अंग

मनहर छंद

आपने न दोष देषै पर के औगुन पेषै,
दुष्ट को सुभाव उठि निंदाई करतु है।
जैसै काहू महल सँवार राष्यौ नीकैं करि,
कोरी तहाँ जाइ छिद्र ढूँढ़त फिरतु है॥
भोर ही ते साँझ लग साँझ ही तें भोर लग,
सुंदर कहतु दिन ऐसें ही भरतु[२] है।
पाव के तरोस की न सूझै आगि मूरष कौं,
और सौं कहतु सिर ऊपर बरतु है॥ १॥

इंदव छंद

घात अनेक रहे उर अंतर दुष्ट कहै मुष सौं अति मीठी।
लोटत पोटत व्याघ्र[३]हि ज्यौं नित ताकत है पुनि ताहि की पीठी॥

१—'नखशिख' काव्य-लक्ष्य किस पर था, यह विदित नहीं है किसी का नाम नहीं दिया है। २—पूरा करता है—बिताता है ३—चीता।

ऊपर तें छिरकै जल आनि सु हेठ[१] लगावत जारि अँगीठी ।
या महिं कूर कछू मति जानहु सुंदर आपुनि आँखिनि दीठी ॥२॥
आपुने काज सँवारन कै हित और कौ काज विगारत जाई ।
आपुनौ कारज होउ न होउ बुरौ करि और को डारत भाई ॥
आपुहु षोवत औरहु षोवत षोइ दुवों घर देत वहाई ।
सुंदर देषत ही बनि आवत दुष्ट करै नहिं कौन बुराई ॥३॥
सर्प डसै सुन हो कछु तालक[२] वीछु लगै सु भलौ करि मानौं ।
सिंहहु षाइ तौ नाहिं कछू डर जौ गज मारत तौ नहिं हानौं ॥
आगि जरौ जल वूड़ि मरौ गिरि जाय गिरौ कछु भै मति आनौं ।
सुंदर और भले सबही दुख दुर्जन संग भलौ जनि जानौं ॥५॥

---

(११) मन को अंग

[मन का स्वभाव, मन का वेग, मन का वल, मन की चचलता तथा मन के अवगुण, और फिर मन के गुण इस प्रकार बुराई भलाई सब अंशो का वर्णन २६ छंदों में हुआ है। यह मन वह पदार्थ है जिसके वर्णन में बडे बडे शास्त्र लिखे गए हैं, जिसके निरोध और वश करने के उपायो के विषय में राजयोग, हठयोगादि अनेक सिद्धात विद्यमान है, जिसकी बुराई है तो इतनी है कि जानने से इसी को अति निकृष्ट प्रमाणित किया है और जिसकी भलाई है तो इतनी है कि इस ही को ब्रह्म रूप बता दिया है। मन सबधी विज्ञान और दर्शन शास्त्र इस संसार में अति विस्तृत है। यह आतरिक सूक्ष्म शक्ति का समुदाय है अथवा एक ही शक्ति अनेक गुण या वृत्ति वा शक्ति विशेष रखती

१—नीचे। २—तअल्लुक का अपभ्रंश—संसर्ग। चिंता।

है। यह अतर्वर्ती और बहिर्वर्ती एक ही है वा भिन्न है। बाहरी पदार्थों से ज्ञान उत्पन्न वा प्राप्त होता है वा सर्व बहिर्व्यापी सृष्टि केवल अंतर्व्यापी पदार्थ का ही कार्य्य वा आभास मात्र है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इस प्रकार चार भिन्न भिन्न पदार्थ हैं अथवा ये सब एक ही है केवल इनके व्यापार ही एक शक्ति को चार रूप में वर्ताते हैं इत्यादि अनेक विचार बाहुल्य शास्त्रों और विद्वानों में विविध रूप से चल रहे हैं। सुंदरदासजी के इन छंदों में इसी बड़ी शक्ति—मन—की कुछ बातें आई हैं। सुंदरदासजी का वचन कल्पवृक्ष के समान है, अधिकारी की वृत्ति, रुचि और योग्यता के अनुसार अर्थ दे देता है। साधारण कोटि के स्त्री बालक अपढ़ लोगों को भी एक प्रकार का आनंद मिलेगा तो पठित और रसादि-व्यवसायी को एक विलक्षण ही रस प्राप्त होगा, एवं उच्चतम ज्ञानकोटि के विचारशाली और ज्ञाननिष्ठ अंतर्द्रष्टा को एक अनिर्वचनीय आनंद प्राप्त होगा। यही महात्माओं के वचन का लक्षण होता है।]

मनहर छंद

हटकि हटकि मन राषत जु छिन छिन,
सटकि सटकि चहुँ ओर अब जात है।
लटकि लटकि ललचाइ लोल वार वार,
गटकि गटकि करि विष फल पात है॥
झटकि झटकि तार तोरत करम हीन,
भटकि भटकि कहुँ नैकु न अघात है।
पटकि पटकि सिर सुंदर जु मानो हारि,
फटकि फटकि जाइ सुधौ कौन वात है[1] ॥ १ ॥

१—किसी भांति सीधा और सरल नहीं है।

पलुही मैं मरि जाय पलुही मैं जीवतु है,
पलुही मैं पर हाथ देषत बिकानौ है ।
पलुही मैं फिरै नवखंड ब्रह्मंड सब,
देष्यौ अनदेष्यौ सु तौ यातैं नहि छानौ[1] है ॥
जातौ नहिं जानियत आवतौ न दीसै कछु,
ऐसौ सौ बलाइ अब तासौं परयौ पानौ है ।
सुंदर कहत याकी गति हूँ न लषि परै,
मन की प्रतीत कोऊ करै सु दिवानौ है ॥ २ ॥
घेरिए तो घेरयौ हू न आवत है मेरौ पूत,
जोई परमोधिए सु कान न धरतु है ।
नीति न अनीति देषै सुभ न असुभ पेषै,
पलुही मैं होती अनहोती हु करतु है ॥
गुरु की न साधु की न लोक वेदहू की शंक,
काहू की न मानै न तौ काहू तैं डरतु है ।
सुंदर कहत ताहि धीजिए सु कौन भांति,
मन कौ सुभाव कछु कह्यौ न परतु है ॥ ३ ॥
जिनि ठगे शंकर बिधाता इंद्र देवमुनि,
आपनौऊ अधिपति[2] ठग्यौ जिन चंद है ।
और योगी जंगम सन्यासी शेष कौन गनै,
सबही कौ ठगत ठगावै न सुछंद है ॥

१—योग की दृष्टि से सबही मन को प्रत्यच होते हैं । २—मन के देवता चंद्रमा हैं । मन ने ही चंद्रमा को गौतम नारी के सपर्क से पतित और कलंकित कराया ।

तापस ऋषीश्वर सकल पचि पचि गए,
काहू कैं न आवै हाथ ऐसो यापै बंद[1] है।
सुंदर कहत बसि कौन विधि कीजै ताहि,
मन सौ न कोऊ या जगत मांहि रिंद[2] है ॥ ७ ॥
रंक कौं नचावै अभिलाषा धन पाइवे की,
निसि दिन सोच करि ऐसेही पचत है।
राजा ही नचावै सब भूमिही कौ राज लैंव,
औरऊ नचावै जोई देह सौं रचत है ॥
देवता असुर सिद्ध पन्नग[3] सकल लोक,
कीट पशु पषी कहु कैसै कै बचत है।
सुंदर कहत काहू सत की कही न जाइ,
मन कैं नचाए सब जगत नचत है ॥ ८ ॥

इंदव छंद

दौरत है दशहू दिश कौ सठ वायु लगो तब तैं भयो ऐंडा[4] ।
लाज न कानि कछू नहिं राषत शील सुभाव की फारत मैंडा[5] ॥
सुंदर सोष कहा कहि देइ भिदै नहिं बान छिदै नहि गैंडा[6] ।
लालच लागि गयौ मन वोष[7]रि बारह बाट अठारह ँडा[8] ॥१०॥

१—दाव। २—पागल। 'रिंद' 'बंद' आदि से ठीक न्नानुप्रास नहीं है। ३—सर्प। ४—ऐंड—प्रबल वा उद्धत। ५—मेर—डोली खेत की। ६—गैंडा नाम का बड़ा चौपाया जिसकी ढाल अभेद्य होती है। ७-विखरना—छितरा जाना। ८—मुहाविरा है—तितर बितर। छिन्न भिन्न

ह्वै सब कौ सिरमौर ततच्छन जौ अभी-अंतर ज्ञान विचारै ।
जौ कछु और विषै सुख वंछत तौ यह देह अमोलिक हारै ॥
छाँडि कुबुद्धि भजै भगवतहि आपु तिरै पुनि औरहि तारै ।
सुंदर तोहि कह्यो कितनी बर तू मन क्यौं नहि आपु सँभारै॥१५॥

मनहर छंद

हाथी कौ सौ कान किधौं पीपर कौ पान किधौं,
ध्वजा कौ उड़ान कहौं थिर न रहतु है ।
पानी कौ सौ घेर किधौं पौन उरझेर किधौ,
चक्र कौ सौ फेर कोऊ कैसें कै गहतु है ॥
अरहट माल किधौं चरषा कौ ख्याल किधौ,
फेरी षात बाल कछु सुधि न लहतु है ।
धूम कौ सौ धाव ताकौं राषिवै कौ चाव ऐसौ,
मन कौ सुभाव सु तौ सुंदर कहतु है ॥ २० ॥

सुख मानै दुख मानै संपति विपति मानै,
हर्ष मानै शोक मानै मानै रंक धन है ।
घटि मानै वढ़ि मानै शुभहू अशुभ मानै,
लाभ मानै हानि मानै याही तें कृपन है ॥
पाप मानै पुन्य मानै उत्तम मध्यम मानै,
नीच मानै ऊँच मानै मानै मेरो तन है ।
स्वरग नरक मानै बंध मानै मोक्ष मानै,
सुंदर सकल मानै तातें नाम मन[1] है ॥ २१ ॥

१—'मन्यतेऽनेन' इति ।

जोई जोई देषै कछु सोई सोई मन आहि,
जोई जोई सुनै सोई मन ही कौ भ्रम है।
जोई जोई सूँघै जोई षाइ जौ सपर्श होइ,
जोई जोई करै सोऊ मन ही को क्रम है॥
जोई जोई ग्रहै जोई त्यागै जोई अनुरागै,
जहाँ जहाँ जाइ सोई मनही कौ भ्रम है।
जोई जोई कहै सोई सुंदर सकल मन,
जोई जोई कलपै सु मन ही को भ्रम है[1] ॥ २२ ॥

एक ही विटप विश्व ज्यौं कौ त्यौं ही देषियतु,
अति ही सघन ताकै पत्र फल फूल हैं।
आगिले झरत पात नये नये होत जात,
ऐसे याही तरु कौ अनादि काल मूल है॥
दश चारि लोक लौं प्रसर जहाँ तहाँ रह्यौ,
अध पुनि ऊरध सूक्षम अरु थूल है।
कोऊ तौ कहत सत्य कोऊ तौ कहै असत्य,
सुंदर सकल मन ही कौ भ्रम भूल है[2] ॥ २३ ॥

तौ सौ न कपूत कोऊ कतहूँ न देषियत,
तौ सौ न सपूत कोऊ देषियत और है।
तूँ ही आपु भूलि महा नीचहू तें नीच होइ,
तूँ ही आपु जाने तें सकल सिरमौर है॥

१—यह भी एक वेदांत का सिद्धांत है। यहाँ मन से महत्तत्त्व अभिप्रेत होगा। २—यह छंद चित्रकाव्य की रीति से वृत्तबंध का रूप पाता है।

तूँ ही आपु भ्रमै तब भ्रमत जगत देषै,
तेरै थिर भए सब ठौर ही कौ ठौर है।
तूँ ही जीवरूप तूही ब्रह्म है अकाशवत,
सुंदर कहत मन तेरी सब दौर है॥ २४॥
मनही के भ्रम तें जगत यह देषियत,
मनही कौ भ्रम गए जगत विलात है।
मनही के भ्रम जेवरी मैं उपजत साँप,
मन के विचारें साँप जेवरी समात है॥
मनही के भ्रम ते मरीचिका कौं जल कहै,
मनही के भ्रम सीप रूपौ सौ दिषात है।
सुंदर सकल यह दीसै मनही कौ भ्रम,
मनही कौ भ्रम गए ब्रह्म होइ जात है[1] ॥ २५॥

(१२) चाणक को अंग

['चाणक' कोड़ा, कमची वा ताजियाने को कहते हैं, और यह तो उस पशु वा मनुष्य पर फटकारा जाता है जो अन्य उपायों से कभी दब पर न आवे। उपदेश के तीखे "ताजणें" उन लोगों के लिये हैं जो तत्त्वज्ञान और ईश्वराराधन के मार्ग को तो छोड़ देते हैं, और अन्य आडंबर, दंभ, दिखावट, ढोंग के लिये जप, तप, दान, व्रत, तीर्थ, यज्ञ और पाखंड करते हैं। ज्ञान के अतिरिक्त अन्य सब उपाय, कर्म रूप होने से बंधन के कारण ही होते हैं। उनसे मुक्ति वा कर्मों से छूटना

१—भ्रम ही सब ज्ञान का आवरण और अवरोधक होता है। भ्रम, अविद्या वा उपाधि के हट जाने से शुद्ध आत्मा रह जाती है।

कैसे हो सकता है, कीच से कीच कैसे धुल सकता है। एक ज्ञान के बिना अन्य सब काम ढकोसले हैं। ऐसे वृथा और अनुपयोगी कामों की सुंदरदासजी ने विस्तृत मीमांसा की है।]

जोई जोई छूटिबे कौं करत उपाय अज्ञ,
सोई सोई दृढ़ करि बंधन परत है।
जोग जज्ञ तप जप तीरथ व्रतादि और,
झंपापात[1] लेत जाइ हिंवारै गरत है॥
कानऊ फराइ पुनि केशऊ लुचाइ अंग,
विभूति लगाइ सिर जटाउ धरत है।
बिन ज्ञान पाए नहिं छुटत हृदै की ग्रंथि[2],
सुंदर कहत यौंहीं भ्रमि कै मरत है॥ १॥
जप तप करत धरत व्रत जत सत,
मन वच क्रम भ्रम कपट सहत तन।
वलकल वसन असन फल पत्र जल,
कसत रसन रस तजत वसत वन॥
जरत मरत नर गरत परत सर,
कहत लहत हय गय दल बल धन।
पचत पचत भव भय न टरत सठ,
घट घट प्रगट रहत न लषत जन* ॥ २॥

१—कामना सिद्धि के अर्थ पहाड़ पर से या कुएं में गिरते एवं मोक्ष और सिद्धि के लिये भी। २—संशय और भ्रम की गांठ

* निर्मात्रिक छंद है सब अक्षर अकारांत हैं। यह चित्रकाव्य अलंकार का प्रकार होता है। यह 'डमरू' नाम का घनाक्षरी

तूँ ही आपु भ्रमैं तव भ्रमत जगत देपै,
तेरै थिर भए सब ठौर ही कौ ठौर है।
तूँ ही जीवरूप तूही ब्रह्म है अकाशवत,
सुंदर कहत मन तेरी सब दौर है॥ २४॥
मनही के भ्रम तें जगत यह देषियत,
मनही कौ भ्रम गए जगत विलात है।
मनही के भ्रम जेवरी मैं उपजत साँप,
मन के विचारें साँप जेवरी समात है॥
मनही के भ्रम ते मरीचिका कौं जल कहै,
मनही के भ्रम सीप रूपौ सौ दिषात है।
सुंदर सकल यह दीसै मनही कौ भ्रम,
मनही कौ भ्रम गए ब्रह्म होइ जात है[1] ॥ २५॥

(१२) चाणक को अंग

['चाणक' कोड़ा, कमची वा ताजियाने को कहते हैं, और यह तो उस पशु वा मनुष्य पर फटकारा जाता है जो अन्य उपायो से कभी ढब पर न आवे। उपदेश के तीखे "ताजणे" उन लोगों के लिये है जो तत्त्वज्ञान और ईश्वराराधन के मार्ग को तो छोड़ देते है, और अन्य आडंबर, दंभ, दिखावट, ढोंग के लिये जप, तप, दान, व्रत, तीर्थ, यज्ञ और पाखंड करते हैं। ज्ञान के अतिरिक्त अन्य सब उपाय, कर्म रूप होने से बंधन के कारण ही होते है। उनसे मुक्ति वा कर्मों से छूटना

१—भ्रम ही सब ज्ञान का आवरण और अवरोधक होता है। भ्रम, अविद्या वा उपाधि के हट जाने से शुद्ध आत्मा रह जाती है।

कोऊ नहिं पाहिं लौन कोऊ मुख गहै मौन,
सुंदर कहत योंही वृथा भुस कूट्यौ है।
प्रभु सौं न प्रीति मांहि ज्ञान सौं परिचै नाहि,
देखौ भाई आँधरनि ज्यौं बजार लूट्यौ है ॥ ७ ॥

[साधू वेष धारण कर जप तप की आड में वंचक लोग भोले स्त्री पुरुषों को ठगते हैं। आप डूबते हैं दूसरों को डुबाते हैं और जिनका यह अंध विश्वास है कि केवल शारीरिक काष्ठाओं से—यथा नीचे सिर और ऊपर पांव रखना, धूआं पीना, मेंह, शीत और घाम को तन पर सहना—सिद्धि प्राप्त होगी वे बड़ी भूल में हैं। सुंदरदासजी कहते हैं—]

वर बूड़त है अरु झांझड़[1] गावै ॥ ६ ॥

[क्योंकि वासना मिटे विना, विषय सुख की आशा रहते, क्या सिद्धि मिल सकती है। और कहते हैं।]

गेह तज्यौ अरु नेह तज्यौ पुनि षेह लगाइ कै देह सँवारी।
मेघ सहै सिर सीत सह्यो तनु धूप समै जु पंचाग निवारी ॥
भूष सह्यो रहि रूष तरै परि सुदरदास सहै दुख भारी।
डासन[2] छाँड़िकै कासन[3] ऊपर आसन मार्यौ पै आस न मारी ॥१०॥
आगै कछू नहिं हाथ पर्यो पुनि पीछै विगारि गए निज भौना।
ज्यौं कोउ कामिनि कंतहि मारि चली संग औरहि देष सलौना ॥
सोऊ गयौ तजि कै ततकाल कहै न बनै जु रही मुख मौना।
तैसैहि सुंदर ज्ञान विना सब छाँड़ि भए नर भांड़ के दौना ॥१६॥

१—झांझ वा झांझिणी एक वाद्यविशेष होता है। उसको बजाकर साधु लोग भजन गाते हैं। मजीरा के तद्वत् होता है। २—विछौना। ३—कास—डाभ—घास।

[सिद्धात यह है कि चाहे जैसे भी उत्तम कर्म करें तब भी वे कर्म रहेंगे और उनका फल अवश्य भोगना पड़ेगा। मुक्ति का हेतु केवल ज्ञान ही है और यह ज्ञान निजरूप की प्राप्ति है जो अतर्दृष्टि के अभ्यास से प्राप्त होता है। मन को दर्पणवत् समझे तो इसका मुँह उलटा करने से स्वरूप-ज्ञान नहीं होगा। यहीं कहते हैं]

सुंदर कहत मूंधो ओर दिश देपै मुख,
हाथ माहीं आरसी न फेरै मूढ करते ॥ ४ ॥

[ज्ञानोदय को सूर्य्य के प्रकाश समान कहते हैं जिसके सामने अन्य उपाय जुगनूँ के समान हैं जिससे अंधकार का नाश नहीं होता।]

सुंदर कहत एक रवि के प्रकाश बिन,
जैंगनै की जोति कहा रजनी विलात है ॥ ५ ॥

[जब तक अतरंग प्रीति प्रभु के स्वरूप मे उत्पन्न न हो और सत्य-ज्ञान का परिचय भी न हो तब तक जितने ऊपरी ढकोसले जप तप आदि के चाहे कितने भी करो वे सब निष्फल हैं। क्योंकि वास्तविक पदार्थ बहिर्दृष्टि को मिलता नहीं है जैसे बाजार मे अनेक उत्तम पदार्थ भरे रहें तो क्या अंधा उनको लूट सकता है।]

कोऊ फिरै नांगे पाइ कोऊ गूदरी बनाइ,
देह की दशा दिखाइ आइ लोग धूत्यौ[1] है।
कोऊ दूधाधारी होइ कोऊ फलाहारी तोय,
कोऊ अधोमुख झूलि झूलि धूम घूट्यौ[2] है॥

भेद है जिसमे सर्व लघु होते हैं और ३२ वर्ण होते हैं। जत = यती धर्म। क्रम = कर्म। वलकल = छाल, भोजपत्रादि। कसत = घटाता है।

१—धूतना—धूर्तपन करना—छलना। धूत्यो का रूपातर है। २—घूट लिया है। पिया है।

कोऊ नहिं पाहि लीन कोऊ मुख गहै मौन,
सुंदर कहत योंही वृथा भुस कूट्यौ है।
प्रभु सौं न प्रीति माँहि ज्ञान सौ परिचै नाहिं,
देखौ भाई आँधरनि ज्यौ बजार लूट्यौ है ॥ ७ ॥

[साधू वेष धारण कर जप तप की आड़ मे वंचक लोग भोले स्त्री पुरुषो को ठगते है। आप डूबते हैं दूसरों को डुबाते है और जिनका यह अध विश्वास है कि केवल शारीरिक काष्ठाओं से—यथा नीचे सिर और ऊपर पाँव रखना, धूआँ पीना, मेंह, शीत और घाम को तन पर सहना—सिद्धि प्राप्त होगी वे बडी भूल मे हैं। सुंदरदासजी कहते है—]

घर बूड़त है अरु झाझड[1] गावै ॥ ९ ॥

[क्योंकि वासना मिटे विना, विषय सुख की आशा रहते, क्या सिद्धि मिल सकती है। और कहते हैं।]

गेह तज्यौ अरु नेह तज्यौ पुनि षेह लगाइ कै देह सँवारी।
मेघ सहै सिर सीत सह्यो तनु धूप समै जु पंचाग निवारी ॥
भूष सही रहि रूष तरै परि सुदरदास सहै दुख भारी।
डासन[2] छाँड़िकै कासन[3] ऊपर आसन मारयौ पै आस न मारी ॥१०॥
आगै कछू नहिं हाथ परयो पुनि पीछै विगारि गए निज भौना।
ज्यों कोउ कामिनि कंतहि मारि चली संग औरहि देष सलौना ॥
सोऊ गयौ तजि कै ततकाल कहै न बनै जु रही मुख मौना।
तैसैहि सुंदर ज्ञान विना सब छाँड़ि भए नर भांड़ कै दौना ॥१६॥

१—झाँझ वा झाँझिणी एक वाद्यविशेष होता है। उसको बजाकर साधु लोग भजन गाते है। मजीरा के तद्वत् होता है। २—विछौना। ३—कास—डाभ—घास।

काहे कौं तू नर भेष बनावत काहे कौं तू दशहू दिश डूलै ।
काहे कौं तू तनु कष्ट करै अति काहे कौं तू मुख ते कहि फूलै ॥
काहे कौं और उपाइ करै अब आन क्रिया करिकैं मति भूलै ।
सुंदर एक भजै भगवंतहिं तौ सुखसागर में नित झूलै ॥ २३ ॥

---

(१३) विपरीत ज्ञानी को अंग

[जो मनुष्य अंत करण की शुद्धि तो साधनों द्वारा करते नहीं और केवल ज्ञानियों की सी ही बातें करते हैं वा संसार से त्यागी बन जाते हैं, कर्म छोड़ देते हैं, सो न तो इधर के ही रहते न उधर के। ऐसों की विपरीत दशा को दरसाते है ।]

मनहर छंद

एक ब्रह्म मुख सौं बनाइ करि कहत हैं,
अंतःकरण तौ विकारनि सौं भरयो है ।
जैसे ठग गोबर सौं कूपो भरि राखत है,
सेर पाँच घृत लैकै ऊपर ज्यौं करयो है ॥
जैसे कोऊ भांडे मांहि प्याज कौं छिपाइ राखै,
चीथरा कपूर कौ लै मुख बाँधि धरयो है ।
सुंदर कहत ऐसे ज्ञानी हैं जगत माहि,
तिनकौ तौ देषि करि मेरौ मन डरयो है ॥ २ ॥
मुख सौं कहत ज्ञान भ्रमैं मन इंद्री प्रान,
मारग के जल मैं न प्रतिबिंब लहिए ।

गाँठि मैं न* पैसा कोऊ भयौ रहै साहूकार,
बातनि हीं मुहर रुपैया गनि गहिए॥
स्वपनै मैं पंचामृत जीमि कै तृपति भयौ,
जागें तें मरत भूष षाइवे को चहिए।
सुंदर सुभट जैसे काइर मारत गाल,
राजा भोज सम कहा गांगौ तेली[1] कहिए॥३॥
संसार के सुखनि सौं आसक्त अनेक विधि,
इंद्रीहू लोलप मन कबहूँ न गह्यौ है।
कहत है ऐसैं मैं तो एक ब्रह्म जानत हौं,
ताही तें छोड़िकैं सुभ कर्मनि कौ रह्यौ है॥
ब्रह्म की न[2] प्रापति पुनि कर्म सब छूटि गए,
दुहूँन तें भ्रष्ट होइ अधबीच बह्यौ है।
सुंदर कहत ताहि त्यागिए स्वपच[3] जैसे,
याही भाँति ग्रंथ मे वशिष्ठजीहू कह्यौ है॥४॥

---

(१४) वचन विवेक कौ अंग

[वचन के भेद, वचन की चतुराई, वचन का प्रभाव इत्यादि का रोचक छंदों मे वर्णन किया है। इस अंग के छंद बड़े उपयोगी हैं।]

---

* पाठांतर—'पैका'। १—धार उज्जैन का महाविद्वान् विद्याप्रेमी प्रसिद्ध राजा भोज हुआ है। उसकी नगरी में गोंगा तेली भी प्रसिद्ध हुआ है जो राजा की स्पर्द्धा करता था। २—नहीं। ३—चांडाल।

मनहरन छंद

जाकै घर ताजी तुरकीन कौ तवेलो बँध्यो,
ताकै आगे फेरि फेरि टट्टुवा [1]नचाइए।
जाकै पासा[2] मलमल सिरी[3] साफ ढेर परे,
ताकैं आगे आनि करि चौसई[4] रपाइए॥
जाकौं पंचामृत षात षात सब दिन बीते,
सुंदर कहत ताहि राबरी चषाइए।
चतुर प्रवीन आगे मूरष उचार करै,
सूरज के आगै जैसैं जैगणा[5] दिषाइए॥ १॥
एक वाणी रूपवंत भूषन वसन अंग,
अधिक विराजमान कहियत ऐसी है।
एक वाणी फाटे टूटे अंबर उढाये आनि,
ताहू मांहि विपरीत सुनियत तैसी है॥
एक वाणी मृतकहि बहुत सिंगार किए,
लोकनि कौं नीकी लगै संतनि कौं भैसी[6] है।
सुंदर कहत वाणी त्रिविध जगत माहिं,
जानै कोऊ चतुर प्रवीन जाकै जैसी है॥ २॥

१—पाठांतर—'नषाइये'। २—बढ़िया वस्त्र लखनऊ का और दिल्ली का प्रसिद्ध है। ३—रेशमी महीन वस्त्र। साफ भी बढ़िया वस्त्र का एक प्रकार है। ४—मोटा वस्त्र—चौतई—गजी से भी मोटा। ५—जुगनूं, पटवीजणां। ६—भय के समान—यथा शृंगार रस—उपन्यास आदि गंदे लेख।

बोलिए तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ,
ना तौ मुख मौन करि चुप होइ रहिए।
जोरिएऊ तब जब जोरिबौऊ जानि परे,
तुक छंद अरथ अनूप जामै लहिए॥
गाइएऊ तब जब गाइबे कौ कंठ होइ,
श्रवण कै सुनत ही मन जाइ गहिए।
तुकभंग छंद भंग अरथ मिलै न कछु,
सुंदर कहत ऐसी बानी नहि कहिए॥ ४॥
एकनि के वचन सुनत अति सुख होइ,
फूल से झरत है अधिक मन भावने।
एकनि के वचन असम[1] मानौ वरषत,
श्रवण कै सुनत लगत अलषावने॥
एकनि के वचन कंटक कटु विष रूप,
करत मरम छेद दुख उपजावने।
सुंदर कहत घट घट मैं वचन भेद,
उत्तम मध्यम अरु अधम सुनावनें॥ ५॥
काक अरु रासभ[2] उलूक जब बोलत हैं
तिनके तौ वचन सुहात कहि कौन कौं।
कोकिला ऊसारौ[3] पुनि सूवा जब बोलत हैं,
सब कोऊ कान दै सुनत रव रौनकौं[4]।

१—पत्थर। २—गधा। ३—मैना। ४—सुंदर शब्द।

ताहीतें सुवचन विवेक करि वोलियत,
योंही आँकबाँक[1] बकि तोरिए न पौन[2] कौं।
सुंदर समुझि कैं वचन कौं उचारि करि,
नाहींतर चुप ह्वै पकरि बैठि मौन कौं ॥ ६ ॥

और तो वचन ऐसे बोलत हैं पशु जैसे,
तिनके तो बोलिवे मैं ढंग हू न एक है।
कोउ रात दिवस बकत हीं रहत ऐसैं,
जैसी विधि कूप मैं बकत मानौं भेक[3] है॥
त्रिविध प्रकार करि बोलत जगत सब,
घट घट मुख मुख वचन अनेक है।
सुंदर कहत तातें वचन विचारि लेहु,
वचन तौ उहै जामैं पाइए विवेक है ॥ ८ ॥

प्रथमहि गुरु देव मुख तें उचारि कह्यौ,
वे हीं तो वचन आइ लगे निज हीए हैं।
तिन कौं विवेक करि अंतहकरन माहि,
अति ही अमोल नग भिन्न भिन्न कीए हैं॥
आपुकौं दरिद्र गयौ पर उपकार हेत,
नग ही निगलि के उगलि नग दीए हैं।
सुंदर कहत यह बानी यौं प्रगट भई,
और कोऊ सुन करि रक जीव जीए हैं ॥ १० ॥

१—अकबक--वृथा बकवाद। २—पोन तोड़ना। हवा फाड़ना। मुहावरा है। ३—मेढक।

(१५) निर्गुन उपासना को अंग[1]

इंदव छंद

मंजन सो जु मनोमल मंजन सज्जन सो जु कहै गति गुज्झै[2] ।
गंजन सो जु इंद्री गहि गंजन रंजन सो जु बुझावु अबुज्झै[3] ॥
भंजन[4] सो जु रह्यौ रस माहिं विदुज्जन सो कतहूँ न अरुज्झै[5] ।
व्यंजन सो जु बढ़ै रुचि सुंदर अंजन सो जु निरंजन सुज्झै ॥३॥

जो उपज्यौ कछु आइ जहाँ लग सो सब नाश निरंतर होई ।
रूप धर्यौ सु रहै नहिं निश्चल तीनिहुँ लोक गनै कहा कोई ॥
राजस तामस सात्विक जे गुन देषत काल ग्रसै पुनि वोई ।
आपुहि एक रहै जु निरंजन सुंदर के मन मानत सोई ॥६॥

सेस महेस गनेस जहाँ लग विष्णु विरंचिहु कैं सिर स्वामी ।
व्यापक ब्रह्म अखंड अनावृत[6] बाहर भीतर अंतरयामी ॥
वोर न छोर अनंत कहैं गुनि याहि तैं सुंदर है घन[7] नामी ।
ऐसौ प्रभू जिनके सिर ऊपर क्यौं परिहै तिनकी कहि षामी ॥८॥

१—उपासना प्राय: सगुन की हो सकती है। परंतु निर्गुन की [उपा]सना ब्रह्म संप्रदाय का परम सिद्धांत है। ब्रह्म की प्राप्ति का साधन 'निर्गुणोपासना' है। २—गुह्य—गुप्त। ३—अबोधनीय—सहज ही [समझा] न जा सके। ४—भाजन—पात्र। ५—उलझे। ६—अनावृत = [व्यो]म। ७—त्रिवर्गमय। सर्वत्र गमन करनेवाला, मिलनेवाला।

(१६) पतिव्रत को अंग[1]

इंदव छंद

जो हरि कौं तजि आन उपासत सो मतिमंद फजीतहि होई ।
ज्यो अपने भरतारहि छाड़ि भई बिभचारिनि कामिनि कोई ॥
सुंदर ताहि न आदर मान फिरै विमुखी अपनी पति पोई ।
बूड़ि मरै किनि कूप मँझार कहा जग जीवत है सठ सोई ॥२॥

एक सही सबके उर अंतर ता प्रभु कौं कहि काहि न गावै ।
संकट माहिं सहाय करै पुनि सो अपनो पति क्यौं बिसरावै ॥
चारि पदारथ और जहाँ लग आठहु सिद्धि नवैं निधि पावै ।
सुंदर छार परौ तिनि कै मुख जौ हरि कौं तजि आन कौं ध्यावै ॥३॥

पूरन काम सदा सुख धाम निरंजन राम सिरज्जनहारौ ।
सेवक होइ रह्यौ सबकौ नित कुंजर कीटहि देत अहारौ ॥
भंजन दुःख दरिद्र निवारन चिंत करै पुनि संभ सँवारौ ।
ऐसे प्रभू तजि आन उपासत सुंदर है तिनिकौ मुख कारौ ॥४॥

होइ अनन्य भजै भगवंतहि और कछू उर मैं नहिं राषै ।
देविय देव जहाँ लग हैं डरिकैं तिनसौं कहुँ दीन न भाषै ॥
योगहु यज्ञ व्रतादि क्रिया तिनिकौं नहिं तौ सुपनै अभिलाषै[2] ।
सुंदर अमृत पान कियौ तब तौ कहि कौन हलाहल चाषै ॥५॥

मनहर छंद

पतिही सौं प्रेम होइ पति ही सौ नेम होइ,

१—पतिव्रत से द्वैत का भाव अवश्य आवेगा क्योंकि यहाँ भक्तिमय ज्ञान से अभिप्राय है । २—चाहै ।

पति ही सौं क्षेम होइ पतिही सौं रत[1] है ।
पतिही है यज्ञ योग पतिही है रस भोग,
पतिही है जप तप पतिही को यत[2] है ॥
पतिही है ज्ञान ध्यान पतिही है पुण्य दान,
पतिही तीरथ न्हान पतिही कौ मत है ।
पति बिन पति[3] नाहि पति बिन गति नाहिं,
सुंदर सकल विधि एक पतिव्रत है ॥ ७ ॥

जल कौ सनेही मीन बिछुरत तजै प्रान,
मणि बिन अहि जैसैं जीवत न लहिए ।
स्वाति बुंद के सनेही प्रगट जगत माहिं,
एक सीप दूसरौ सु चातकऊ कहिए ॥
रवि को सनेही पुनि कमल सरोवर मैं,
शशि कौ सनेहीऊ चकोर जैसैं रहिए ।
तैसैं ही सुंदर एक प्रभु सौं सनेह जोरि,
और कछु देषि काहू वोर नहिं बहिए ॥ ८ ॥

---

(१७) विरहिनि उराहने को अंग

[विरहिनी अर्थात् पतिवियोगिनी की ओर से उलाहना अर्थात् उपालंभ देना । यह भाव प्रीति की उत्कटता, दर्शनों की लालसा और विरह की उग्रता का द्योतक होता है । इसके प्रवाह को वे ही भली भाँति समझते है जिन पर ऐसी बीत चुकी हो । इन पाँच छंदों में

१–रति = अनुराग । २–जत । अथवा यतीत्व । ३–'पत' = प्रतिष्ठा ।

जो कुछ सुंदरदासजी ने कहा है उसका साधारण अर्थ जो दिखाई देता है उससे आगे रहस्य का अर्थ कुछ और है अर्थात ब्रह्मविद्या वा प्रगाढ भक्ति में घटता है।]

मनहर छंद

हमकौं तौ रैनि दिन शंक मन मांहि रहै,
उनकी तौ वातनि मैं ठीक हूँ न पाइए।
कबहूँ संदेसौ सुनि अधिक उछाह होइ,
कबहूँक रोइ रोइ आँसुनि बहाइए ॥
औरनि के रस बस होइ रहे प्यारे लाल,
आवन की कहि कहि हमकौं सुनाइए।
सुंदर कहत ताहि काटिए जु कौन भांति,
जुतौ रूष आपनेई हाथ सौं लगाइए ॥ २ ॥
हिएँ और जिएँ और लीए और दीए और,
कीएँ और कौनऊ अनूप पाटी पढे हैं।
मुख और बैन और सैन और नैन और,
तन और मन और जंत्र मांहि कढे हैं ॥
हाथ और पाँव और सीस हू श्रवन और,
नख सिख रोम रोम कलई सौं मढे हैं।
ऐसी तौ कठोरता सुनी न देषी जगत मे,
सुंदर कहत काहू वज्र ही के गढ़े हैं ॥ ४ ।

(१८) शब्दसार को अंग

[शब्दों का, पदार्थों का, कर्मों का और गुणों का उत्तम प्रयोग करना ही मनुष्य के चातुर्य्य का लक्षण होता है। इस शब्दसार के १० छंदों में सुंदरदासजी ने इस बात को कतिपय प्रधान शब्द लेकर दरसाया है यथा, कान क्या है? जो हरिगुण वा वेद वचन सुने। नेत्र क्या है? जो निज आत्मस्वरूप को देखे। बाण क्या है? जो मन को वेधे। वीर कौन है? जो मन को जीते इत्यादि।]

इंदव छंद

पान उहै जु पियूष पिवै नित दान उहै जु दरिद्र हि भानै।
कान उहै सुनिए जस केशव मान उहै करिए सनमानै॥
तान उहै सुरतान[1] रिझावत जान उहै जगदीसहि जानै।
बान उहै मन वेधत सुंदर ज्ञान उहै उपजै न अज्ञानै॥२॥

सूर उहै मन कौं वसि राषत कूर उहै रन[2] माहि लजैहै।
त्याग उहै अनुराग नहीं कहुँ भाग[3] उहै मन मोह तजै है॥
तज्ञ उहै निज तत्वहि जानत यज्ञ उहै जगदीस जजै[4] है।
रत्त[5] उहै हरि सो रत सुंदर गत्त उहै भगवंत भजै है॥३॥

चाप उहै कसिए रिपु ऊपर दाप[6] उहै दलकारि[7] हि मारै।
छाप उहै हरि आप दई सिर थाप उहै थपि औरन धारै॥

१—यहाँ सुलतान का बादशाह से भी प्रयोजन हो सकता है। वह सर्वेश्वर परमात्मा। २—विषयादि शत्रुओं से युद्ध। ३—भागना। ४—यजन करै। ५—अनुरक्त। ६—दाप = दर्प। रोबदाब। ७—ललकारकर।

जाप उहै जपिए अजपा नित थाप[1] उहै निज पाप विचारै।
बाप उहै सब को प्रभु सुंदर पाप हरै अरु ताप निवारै ॥४॥
श्रोत्र उहै श्रुतिसार सुनैं नित नैन उहै निज रूप निहारै।
नाक उहै हरिनाक[2] हि राखत जीभ उहै जगदीश उचारै ॥
हाथ उहै करिए हरि को कृत पाँव उहै प्रभु कै पथ धारै।
सीस उहै करि श्याम[3] समर्पन सुंदर यौं सब कारज सारै ॥८॥

---

(१९) सूरातन को अंग

[सुरासुर संग्राम वेद और शास्त्रों में विख्यात है। शरीर रूपी संसार वा क्षेत्र में काम क्रोध लोभ मोहादिक असुर वा शत्रुओं से ज्ञान, विवेक, सुबुद्धि, दया, शील, संतोषादि सुर, सुभट लड़ते रहते है। ये सब सुभट समष्टि रूप से व्यक्तिगत वीरता के द्योतक होते है। किसी एक पुरुष विशेष को ऐसे गुणों का धारण करनेवाला वीर मानकर उक्त शत्रुओं से लड़ने मे धीर गम्भीर और निर्भय शूर सामंत सा पाया तो उसको "सूरातन" अर्थात् सूरमा का सा शरीरवाला कहा गया। प्राय साधुओं की वाणी में "सूरातन" का वर्णन आया है, इसी प्रकार सुंदरदासजी ने भी इस अंग के १२ छंदों में शांत रस की भित्ति पर वीररस का मानों चित्र खींच दिया है। इन थोडे से छंदों के देखने से ही यह प्रतीत होता है कि वीर आदि रसों के वर्णन में भी स्वामीजी की बड़ी शक्ति थी। सच तो यह है कि इस संसार में उच्च कोटि का सच्चा सूरमा वही गिना

१—उत्पत्ति का संबंध। थाप = गोत्र, तड। शासन। अथवा अपना खपना = निस्तारा। २—भगवान् ही को अपनी नाक अथवा प्रतिष्ठा की परमावधि समझे। नाक = स्वर्ग, यह अर्थ भी। ३—भाषा में 'श्याम' स्वामी के अर्थ मे भी आता है।

जा सकता है जो काम-क्रोधादिक शत्रुओं को अपने यम, नियम, शील, संतोपादि शस्त्रों से दमन करता है क्योंकि ये घर के अंदर सदा रहनेवाले वैरी हैं इसलिये अधिक प्रबल और भयकर हैं।]

मनहर छंद

सुणत नगारै चोट बिगसै कवल मुख,
अधिक उछाह फूल्यो माइहू न तन मैं।
फिरै जब साँगि[१] तब कोऊ नहिं धीर धरै,
काइर कँपाइमान होत देषि मन मैं॥
टूटि कै पतंग जैसै परत पावक माँहि,
ऐसै टूटि परै बहु साव'त[२] के गन मैं।
मारि घमसांण करि सु'दर जुहारै[३] स्याम,
सोई सूरवीर रुपि रहै जाइ रन मैं॥ १ ॥
हाथ मैं गह्यौ है षड्ग मरिवे कौं एक[४] पग,
तन मन आपनौं समरपन कीनौ है।
आगैं करि मीच कौं पर्यौ है डाकि रन बीच,
टूक टूक होइ कैं भगाइ दल दीनौ है॥
खाइ लौंन स्याम कौ हरामषोर कैसै होइ,
नामजाद[५] जगत मैं जीत्यो पन तीनौं है।
सु'दर कहत ऐसो कोऊ एक सूरवीर,

१—लोहद'ड। भाला। बरछी। पतली गदा। २—साम'त। योद्धा। ३—सलाम करै। ४—यकर्सा। दृढ़। ५—नाम पाया हुआ। नाम पैदा हो गया जिसका। अथवा नामजद।

सीस को उतारि कैं सुजस जाइ लीनौ है ॥ २ ॥
पाँव रोपि रहै रन माँहि रजपूत कोऊ,
हय गय गाजत जुरत जहाँ दल हैं।
वाजत जुझाइ सहनाइ सिंधू राग पुनि,
सुनतही काइर की छूटि जात कल हैं ॥
झलकत वरछी तरछि तरवारि वहै,
मार मार करत परत पलभल हैं।
ऐसैं जुद्ध मैं अडिग्ग सुंदर सुभट सोई,
घर माहि सूरमा कहावत सकल हैं ॥ ३ ॥
असन बसन वहु भूषन सकल अंग,
संपति विविध भाँति भर्यो सब घर है।
श्रवण नगारौ सुनि छिनक मैं छोडि जात,
ऐसै नहिं जानै कछु आगै मोहि मर[1] है ॥
मन मैं उछाह रन मांहि टूक टूक होइ,
निरभै निशंक वाकै रंच हूँ न डर है।
सुंदर कहत कोऊ देह कौ ममत्व नाहिं,
सूरमा कै देषियत सीस बिन धर है ॥ ४ ॥
ज्ञान कौ कवच अंग काहू सौं न होइ भंग,
टोप सीस झलकत परम विवेक है।
तीन्है ताजी असवार लिए समसेर सार,[2]
आगै ही कौं पाँव धरै भागने की टेक[3] है ॥

१–म २–तत्त्व। ३–प्रण। सौगन्द।

छूटत बंदूक बाण बीचै जहाँ घमसाण,
देषि कैं पिशुन[1] दल मारत अनेक है।
सुंदर सकल लोक मांहि ताकौ जैजैकार,
ऐसौ सूर बीर कोऊ कोटिन मैं एक है ॥ ७ ॥
सूर वीर रिपु कौं निमूनौ देषि चोट करै,
मारै तब ताकि करि तरवारि तीर सौं।
साधु आठौं जाम बैठौ मन ही सौं युद्ध करै,
जाकै मुँह माथौ नहि देषिए शरीर मौं ॥
सूर वीर भूमि परै दौर करै दूरि लगैं,
साधु शून्य कौं पकरि राषै धरि धीर सौं।
सुंदर कहत तहाँ काहू कै न पाँव टिकैं,
साधु कौ संग्राम है अधिक सूर वीर सौं ॥ ८ ॥
काम सौं प्रबल महा जीतै जिनि तीनौं लोक,
सु तौ एक साधु कै विचार आगैं हारयौ है।
क्रोध सौं कराल जाकें देषत न धीर धरै,
सोउ साधु चमा के हथियार सौं विदारयौ है ॥
लोभ सौं सुभट साधु तोष[2] सौं गिराइ दियौ,
मोह सौं नृपति साधु ज्ञान सौं प्रहारयो है।
सुंदर कहत ऐसौ साधु कोऊ सूर वीर,
ताकि ताकि सब ही पिशुन दल मारयौ है ॥ १० ॥
मारे काम क्रोध जिनि लोभ मोह पीसि डारे,

१—शत्रु। २—संतोष।

इंद्रीऊ कतल करि कियौ रजपूतौ है।
मारयो मयमत्त[1] मन मारयौ अहंकार मीर,
मारे मद मच्छर[2] हू ऐसौ रन रूतौ[3] है॥
मारी आसा तृष्णा सोऊ पापिनी सापिनी दोऊ,
सबकौं प्रहारि निज पदइ पहूतौ[4] है।
सुंदर कहत ऐसौ साधु कोऊ सूर वीर,
वैरी सब मारि कै निचिंत होइ सूतौ[5] है॥ ११॥

---

(२०) साधु को अंग

[साधु संगति की महिमा, साधु का गुणानुवाद, साधु की गति और शक्ति, साधु की स्वतंत्रता, साधु के लक्षण तथा साधु की अलभ्यता ३० छंदो में वर्णित है।]

इंदव छंद

प्रीति प्रचंड लगै परब्रह्महि और सबै कछु लागत फीकौ।
शुद्ध हृदै मति होइ सुनिर्मल द्वैत प्रभाव मिटै सब जी कौ॥
गोष्टिरु ज्ञान अनंत चलै तहँ सुंदर जैसै प्रवाह नदी कौ।
ताहितें जानि करै निसिवासर साधु कौ संग सदा अति नीकौ॥१॥
ज्यौं लट भृंग करै अपने सम ता[6] सनि भिन्न कहै नहिं कोई।
ज्यौं द्रुम और अनेकहि भाँतिनि चंदन की ढिग चंदन बोई॥

१—मदमत्त अथवा अहंता (अभिमान) में मस्त। २—मत्सर। ३—आरूढ वा रूद्ध। ४—पहुँचा। ५—दूसरा अर्थ निजानंदमग्न वा समाधिस्थ है। ६—तासे = उससे।

ज्यौं जल क्षुद्र मिलै जब गंगहि होत पवित्र उहै जल सोई।
सुंदर जाति सुभाव मिटै सब साधु के संग तें साधुहि होई ॥३॥
जौ परब्रह्म मिल्यौ कोउ चाहत तौ नित संत समागम कीजै।
अंतर मेटि निरंतर ह्वै करि लै उनकौ अपनौ मन दीजै॥
वै मुख द्वार उचार करैं कछु सो अनयास सुधारस पीजै।
सुंदर सूर प्रकाशत है उर और अज्ञान सबै तम छीजै ॥५॥
सो अनयास तिरै भवसागर जो सत्संगति मैं चलि आवै।
ज्यौं कणिहार[1] न भेद करै कछु आइ चढ़ै तिहिं नाव चढ़ावै॥
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यहु शूद्र मलेछं चंडालहि पार लँघावै।
सुंदर वार कछु नहिं लागत या नर देह अमै पद पावै ॥८॥
कोउक निंदत कोउक वंदत कोउक आइकै देत है भच्छन।
कोउक आइ लगावत चंदन कोउक डारत धूरि ततच्छन॥
कोउ कहै यह मूरख दीसत कोउ कहै यह आहि विचच्छन।
सुंदर कोउ सों राग न द्वेष सु ये सब जानहु साधु के लच्छन ११
तात मिलै पुनि मात मिलै सुत भ्रात मिलै युवती सुखदाई।
राज मिलै गज बाजि मिलै सब साज मिलै मनवंछित पाई॥
लोक मिलै सुरलोक मिलै विधिलोक मिलै बइकुंठहु जाई।
सुंदर और मिलै सबही सुख दुर्लभ संत समागम भाई ॥१२॥

मनहर छंद

देवहू भए ते कहा इंद्रहू भए ते कहा,
विधिहू के लोक ते वहुरि आइयतु है।

१—कर्णधार = केवट।

मानुष भए ते कहा भूपति भए ते कहा,
द्विजहू भए ते कहा पार जाइयतु[1] है ॥
पशुहू भए ते कहा पच्छिहू भए ते कहा,
पन्नग भए ते कहा क्यौं अघाइयतु है।
छूटिवे को सुंदर उपाइ एक साधु संग,
जिनकी कृपा ते अति सुख पाइयतु है ॥ १३ ॥
धूल जैसो धन जाके सूल सो ससार सुख,
भूल जैसो भाग देपै अंत की सी यारी है।
आप जैसी प्रभुताई साप[2] जैसो सनमान,
बडाईहू वीछनी सी नागनी सी नारी है ॥
अग्नि जैसो इंद्रलोक विघ्न जैसो विधिलोक,
कीरति कलंक जैसी सिद्धि सींट डारी है।
वासना न कोऊ वाकी ऐसी मति सदा जाकी,
सुंदर कहत ताहि बंदना हमारी है ॥ १५* ॥
कामही न क्रोध जाके लोभही न मोह ताकै,
मदही न मच्छर कोऊ न विकारौ है।
दुखही न सुख मानै पापही न पुन्य जानै,
हरष न शोक आनै देहही तें न्यारौ है ॥

१—पार पड़ना = काम चलना। २—सर्प अथवा शाप। * यह १५ वाँ छंद वह है जिसको सुंदरदासजी ने जैन कवि बनारसीदासजी को लिखा था और १६ वें छंद के विषय मे भी यही बात कही जाती है।

निंदा न प्रशंसा करै रागही न दोष धरै,
लैनही न दैन जाकै कछु न पसारौ है।
सुंदर कहत ताकी अगम अगाध गति,
ऐसो कोऊ साधु सु तौ रामजी कौ प्यारौ है॥ १६॥
जैसैं आरसी कौ मैल काटत सिकल करि
मुख मैं न फेर कोऊ वहै वाकौ पोत[1] है।
जैसै वैद नैन मैं शलाका मेलि शुद्ध करै,
पटल[2] गएँ तें तहाँ ज्यौं की त्यौं ही जोत है॥
जैसैं वायु वादर वघेरि कै उड़ाइ देत,
रवि तौ अकाश माहिं सदा ही उदोत है।
सुंदर कहत भ्रम छन मैं विलाइ जात,
साधु ही कै संग तें स्वरूप ज्ञान होत है॥ १८॥
मृतक दादुर जीव सकल जिवाए जिनि,
वरषत[3] वानी मुख मेघ की सी धार कौं।
देत उपदेश कोऊ स्वारथ न लवलेश,
निस दिन करत हैं ब्रह्म ही विचार कौं॥
औरऊ संदेहनि मिटावत निमेष माँहि,
सूरज मिटावत है जैसै अंधकार कौं।
सुंदर कहत हंसवासी सुखसागर के,
"संत जन आए हैं सु पर-उपकार कौं" ॥ १९॥
प्रथम सुजस लेत सीलहू संतोष लेत,

१—धब्बा। २—मैल का परदा। ३—सकर्मक = वरपावन।

क्षमा दया धर्म लेत पाप तें डरत हैं।
इंद्रिन कौं घेरि लेत मनहूँ कौं फेरि लेत,
योग की युगति लेत ध्यान लै धरत हैं॥
गुरु कौ वचन लेत हरिजी कौ नाम लेत,
आत्मा कौ सोधि लेत भौजल तरत हैं।
सुंदर कहत जग[1] संत कछु लेत नाहिं,
"संत जन निसि दिन लैबोई करत हैं" ॥ २२ ॥
साँचौ उपदेश देत भली भली सीप देत,
समता सुबुद्धि देत कुमति हरत हैं।
मारग दिषाइ देत भाव हू भगति देत,
प्रेम की प्रतीति देत अभरा भरत हैं॥
ज्ञान देत ध्यान देत आतमा विचार देत,
ब्रह्म कौं बताइ देत ब्रह्म मैं चरत हैं।
सुंदर कहत जग संत कछु देत नाहिं,
"संत जन निसि दिन दैबोई करत हैं" ॥ २३ ॥
कूप मैं कौ मैंडुका तौ कूप कौं सराहत है,
राजहंस सौं कहै कितौक[2] तेरौ सर है।
मसका कहत मेरी सरभरि कौन उड़ै,
मेरै आगै गरुड़ की कितीयक जर है॥
गुबरैंडा[3] गोली कौं लुढाइ करि मानै मोद,

१—संसारी लोग। २—कितना। ३—गुबरैला=एक जंतु जो गोबर की गोली उलटे पाँव ले जाता है।

मधुप[१] कौ निंदत सुगंध जाको घर है।
आपुनी न जानै गति सवनि कौ नाम धरै[२],
सुंदर कहत देषौ ऐसौ मूढ़ नर है॥ २५॥
ताहो कै भगति भाव उपजिहै अनायास,
जाकी मति संतन सौं सदा अनुरागी है।
अति सुख पावै ताकै दुःख सब दूरि होइ,
औरऊ काहू की जिनि निंदा मुख त्यागी है॥
संसार की पासि काटि पाइहै परम पद,
सतसंगहो तैं जाकै ऐसी मति जागी है।
सुंदर कहत ताकौ तुरत कल्यान होइ,
"संतन कौ गुन गहै सोई बड़भागी है"॥ २६॥

---

(२१) भक्ति-ज्ञान-मिश्रित को अंग

इंदव छंद

बैठत रामहिं ऊठत रामहिं बोलत रामहिं राम रह्यौ है।
जीमत रामहिं पीवत रामहिं धोमत[३] रामहिं राम गह्यौ है॥
जागत रामहि सोवत रामहिं जोवत रामहिं राम लह्यौ है।
देतहु रामहिं लेतहु रामहिं सुंदर रामहिं राम कह्यौ है॥ १॥
श्रोत्रहु रामहि नेत्रहु रामहिं वक्त्रहु रामहिं रामहिं गाजै।

१– । । २–निंदादि करै। ३–ध्यावत = ध्यान करता है ('धीमहि' का रूपांतर है) अथवा 'चलते'।

क्षमा दया धर्म लेत पाप तें डरत हैं।
इंद्रिन कौं घेरि लेत मनहूँ कौं फेरि लेत,
योग की युगति लेत ध्यान लै धरत हैं॥
गुरु कौ वचन लेत हरिजी कौ नाम लेत,
आत्मा कौ सोधि लेत भौजल तरत हैं।
सुंदर कहत जग[1] संत कछु लेत नाहिं,
"संत जन निसि दिन लैबोई करत हैं" ॥ २२ ॥

साँचौ उपदेश देत भली भली सीष देत,
समता सुबुद्धि देत कुमति हरत हैं।
मारग दिषाइ देत भाव हू भगति देत,
प्रेम की प्रतीति देत अभरा भरत हैं॥
ज्ञान देत ध्यान देत आतमा विचार देत,
ब्रह्म कौं बताइ देत ब्रह्म मैं चरत हैं।
सुंदर कहत जग संत कछु देत नाहिं,
"संत जन निसि दिन दैबोई करत हैं" ॥ २३ ॥

कूप मैं कौ मैंडुका तौ कूप कौं सराहत है,
राजहंस सौं कहै कितौक[2] तेरौ सर है।
मसका कहत मेरी सरभरि कौन उडै,
मेरै आगै गरुड की कितीयक जर है॥
गुबरैंडा[3] गोली कौं लुढाइ करि मानै मोद,

१—संसारी लोग। २—कितना। ३—गुबरैला=एक जंतु जो गोबर की गोली उलटे पाँव ले जाता है।

मधुप[१] कौ निंदत सुगंध जाको घर है।
आपुनी न जानै गति संतनि कौ नाम धरै[२] ,
सुंदर कहत देषौ ऐसौ मूढ़ नर है॥ २५॥
ताही कै भगति भाव उपजिहै अनायास,
जाकी मति संतन सौं सदा अनुरागी है।
अति सुख पावै ताकै दुःख सब दूरि होइ,
और‌ऊ काहू की जिनि निंदा मुख त्यागी है॥
संसार की पासि काटि पाइहै परम पद,
सतसंगही तैं जाकै ऐसी मति जागी है।
सुंदर कहत ताकौ तुरत कल्यान होइ,
"संतन कौ गुन गहै सोई बड़भागी है"॥ २६॥

---

(२१) भक्ति-ज्ञान-मिश्रित को अंग

इंदव छंद

बैठत रामहिं ऊठत रामहिं बोलत रामहिं राम रह्यौ है।
जीमत रामहिं पीवत रामहिं धीमत[३] रामहिं राम गह्यौ है॥
जागत रामहिं सोवत रामहिं जोवत रामहिं राम लह्यौ है।
देवहु रामहिं लेवहु रामहिं सुंदर रामहिं राम कह्यौ है॥ १॥
श्रोत्रहु रामहिं नेत्रहु रामहिं वक्त्रहु रामहिं रामहिं गाजै।

१– । । २–निंदादि करै। ३–ध्यावत = ध्यान करता है ('धीमहि' का रूपांतर है) अथवा 'चलते'।

सीसहु रामहिं हाथहु रामहिं पावहु रामहि रामहिं साजै ॥
पेटहु रामहिं पीठहु रामहिं रोमहु रामहिं रामहिं वाजै ।
अंतर राम निरंतर रामहिं सुंदर रामहिं राम विराजै ॥ २ ॥
भूमिहु रामहिं आपुहु रामहिं तेजहु रामहि वायुहु रामैं ।
व्यौमहु रामहिं चंदहु रामहि सूरहु रामहि शीत न घामैं ॥
आदिहु रामहि अंतहु रामहि मध्यहु रामहि पुंसन वामैं ।
आजहु रामहिं काल्हिहु रामहि सुंदर रामहिं म्हा[1]महि थामैं[2] ।३।

---

(२२) विपर्यय शब्द को अंग

[महात्मा सुंदरदासजी ने ३२ सवैया छंदों मे विपर्यय अर्थ की बातें लिखी है । विपर्यय नाम उल्टे का है अथवा असभव का । जो बातें नित्य प्रति के व्यवहार मे देखने सुनने मे आती है उनसे नियम में विरुद्ध वा प्रतिकूल जो कुछ कहा जाय वही विपर्यय है । यथा मछली का बगुले को खाना, सुग्गे (सूवा) का बिल्ली को खाना, पानी में तुंबिका का डूबना, इत्यादि । परंतु अध्यात्म पक्ष में वा अतद्दृष्टिवाले महात्माओं के निकट इसका कुछ और ही अर्थ होता है । वह अर्थ उनकी समझ में यथार्थ है । इस "सार" ग्रंथ में केवल ४ छंद उदाहरणवत् देते है क्योंकि अधिक से जटिलता का भय है । कारण ऐसे छंदों की अनेक टीकाएँ है और हो सकती है । हमने तीन पुरानी टीकाओं के आधार पर (जो छद यहा लिखे है उनकी) टीका दी है ।]

१—म्हां महि = हमारे भीतर । २—थामैं = तुम्हारे भीतर ।

सवइया छंद

अंधा तीनि लोक कौं देषै बहिरा सुनै बहुत विधि नाद ।
नकटा बास कंवल की लेवै गूँगा करै बहुत संवाद ॥
टूँटा पकरि उठावै पर्वत पंगुल करै नृत्य अहलाद ।
जो कोउ याकौ अर्थ विचारै सुंदर सोई पावै स्वाद[1] ॥ २ ॥

१—" अंधा तीनि लोक " इत्यादि । (अंधा) बाह्य जगत् से मुँह मोड़ अंतर्मुखी जो हो गया वह ज्ञानी (तीनि लोक) स्थूल, सूक्ष्म और कारण अथवा भूर्भुवः स्व वा प्रसिद्ध तीन लोकों को, (देषै) बाह्य दृष्टि से असंग होने पर, अंतर्दृष्टि के बल से, हस्तामलकवत्, प्रत्यक्ष करे । (वहिरा) जगत् के वाद-विवाद से रहित होकर श्रोत्रेंद्रिय को वश करनेवाला योगी वा ज्ञानी (वहुत विधि नाद) दश प्रकार योग-विद्या में प्रसिद्ध अनाहत (अनहद) नाद—आवाजें वा वाजे—(सुने) सुनने की सामर्थ्य प्राप्त करे । (नकटा) ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होने से लोक-लाज कुलकान आदि तुच्छ व्यावहारिक भ्रमों को त्यागनेवाला, नासा इंद्रिय को वशवर्त्ती करनेवाला, ज्ञानी निःशंक निर्भय हो (कमल की वास लेवे) ब्रह्म कमल—सहस्र दलाकार, ब्रह्मचक्र वा विशुद्ध चक्र—की सुगंधि अर्थात् ब्रह्मानंद का रसास्वाद ले । यहाँ सात्विक वृत्ति भौरा और ब्रह्म-कमल सुवास का आधार माना गया है । (गूँगा) जगत् संबंधी वाणी—वैखरी और मध्यमा तथा श्रवणादि अभ्यास से आगे बढ़ा हुआ ज्ञानी वा मौनी (वहुत संवाद करे) अंतर्वृत्तियों को उत्कर्ष और उन्नति करता है, ब्रह्मनिरूपण मनन निदिध्यास से बढ़ता है । (टूटा) क्रिया रहित (पर्वत पकरि उठावै) पापादि कर्मजन्य संस्कारों के महान् बोझ को पुरुषार्थ से निष्फल करके मिटा दे । (पंगुल) त्रिगुणता रहित महात्मा (नृत्य आह्लाद करे) अति चतुरता से भगवत् का ध्यान करे और पर-मानंद पावे । (जो कोउ) इस विपर्यय के सवैया के वास्तविक

कुंजर कौं कीरी गिलि वैठी सिंघइ पाइ अघानौ स्याल ।
मछरी अग्नि माहिं सुख पायौ जल मैं हुती वहुत वेहाल ॥
पंगु चढ़्यो पर्वत कै ऊपर मृतकहि देषि डरानौ काल ।
जाकौ अनुभव होइ सु जानै सुंदर ऐसा उलटा ख्याल[1] ॥३॥

अध्यात्म गूढ़ अर्थ को जो मुमुक्षु-पुरुष समझ ले उसको परम ज्ञान का स्वाद वा चसका मिल जाय ।

१—"कुंजर ." इत्यादि। (कीरी) अति सूक्ष्म व्यवसायात्मिका बुद्धि (कुंजर को) मदोन्मत्त विवेकशून्यता रूपी अवस्था से ही काम रूपी हाथी महास्थूलकाय वा वली जिससे व्रह्मादि भी कांपें उसको (गिलि बैठी) छोटा मुँह होने पर भी वडे को निगल गई अर्थात् संपूर्ण को यों का यों अचक खा गई कि उसका नाम निशान तक पीछे न रहा। विवेक प्रबल होने पर काम का नाश होता ही है। (वैठी) जब शत्रु का दमन हो गया वा उसको भक्षण ही कर लिया तो तृप्त और शांत होकर स्वयं भी निष्क्रिय हो गई। (स्याल) यह जीव अपने स्वरूप को भूलकर उपाधियों के आवरण से आच्छादित रहकर कायरता और हीनता को प्राप्त होकर मानों स्याल (शृगाल) बना सा था। सो ही गुरु की कृपा और शास्त्र के श्रवण मननादि से साधन और पूर्व स्वरूप की स्मृति जागृत होने से ज्ञान को प्राप्त कर स्वस्वरूप को पुन. धारण कर सिंह हो गया और (सिंघहि पाय अघानो) संशय विपर्यय जो इस जीव को परंपरा के कर्मबंध के आवरण से सिंह के समान डरावना और पराक्रमी घातक प्रतीत होता था उसको आप सिंह है यह यथार्थ ज्ञान पाने से, खा गया अर्थात् मारकर मिटा दिया और उसके खाने से धाप गया, तृप्त हो गया। संशय की निवृत्ति से, निर्वात स्थान में रख दीप की शिखा की नाईं, आत्मा अचल और स्वस्वरूप में आनंद तृप्त हो गया। (मछली) मनसा वा मनोवृत्ति (जल में) जल-बिंदु से

बूँद हि मांहि समुद्र समानौ राई माहिं समानौ मेर।
पानी मांहि तुंविका डूवी पाहन तिरत न लागी वेर॥
तीनि लोक मैं भया तमासा सूरज कियौ सकल अंधेर।
मूरष होइ सु अर्थहि पावै सुंदर कहै शब्द मैं फेर ॥८॥

त्पन्न और उसी के आधार से स्थित रहनेवाली काया में ([illegible]
हुती) अत्यंत वेहाल, वुरे हाल में, दुखी रहती थी। [illegible] ([illegible]
महिं) ज्ञान रूपी आग में, जिससे यावत्कर्म, क्लेश [illegible]
"ज्ञानाग्निदग्धकर्म्माणं" इति गीता। (सुष पाये) [illegible]
जो ब्रह्मानद है उसको प्राप्त किया। (पगु पर्वत पर [illegible]
रहित मन वा ज्ञानी पुरुष, यावत् स्पद वा हलन [illegible]
विचार वा कामना से होती है और कामना ही [illegible]
हो, निर्विकल्पता की अवस्था को प्राप्त होकर [illegible]
सशक्त हो गया कि अति ऊँचे और कठिन अहंता [illegible]
चढ़ा अर्थात् उसको वश में किया वा विजय वा [illegible]
कहि दंड डराने काल) योगासिद्ध जीवन्मुक्त [illegible]
दंड देनेवाला कराल काल भी भय मानता है। [illegible]
काल को भी छेक जाती है, वह काल के वश [illegible]
अनुभव..) जिस ज्ञानी पुरुष का ऐसा अनुभव [illegible]
रहस्य को जान सकता है। क्योंकि स्थूल [illegible]
सा प्रतीत होता है, जब तत्त्व की प्राप्ति होने [illegible]
सुलटा दीख जाता है।

१—"बूँदहि मांहि"..इत्यादि। (बूँद [illegible]
जीव में वा विंदु बुदबुदा समान शरीर [illegible]
अनत और अति बृहत् ब्रह्म में समा गया [illegible]
ने भी अणु सूक्ष्म और व्यापक है, [illegible]

मछरी बगुला कौं गहि षायौ मूसै पायौ कारो साँप।
सूवै पकरि बिलइया पाई ताके मुएँ गयौ संताप॥

जीव को यह अनुभव हुआ। (राई माहिं) राई कहिए सूक्ष्म सुंदर भगवद्भक्ति में (मेर समानौ) अति विशाल विस्तृत होने की शक्ति रखनेवाला यह संकल्प-विकल्पात्मक मन, लीन हो गया अर्थात् वृत्ति-रहित होकर लुप्त हो गया। (पानी माहि) अति तरल सर्वरसशिरो-मणि तृप्तिकारण निर्मल प्रेम के अंदर (तुंबिका डूबी) शरीर जो, सांसारिक कर्म रूपी वायु के भरे रहने से ऊपर ही तिर रहा था सो रोम रोम में प्रेम भर जाने से वह हवा तो बाहर निकल गई और प्रेम रूपी जल सर्वत्र प्रवेश करने से उसी में निमग्न हो गया अथवा जो कड़वी तूँबड़ी समान है सो प्रेमामृत के भरने से अमृत समान मीठा और शुद्ध हो गया। (पाहन तिरत न लागी बेर) भक्तिहीन जनों का हृदय पत्थर सा कर्रा वा भारी होता है सो भक्ति पाने से परिवर्त्तित हो गया अर्थात् कोमल और फूल सा हलका हो गया अथवा राम नाम के प्रवाह से पत्थर का पानी पर तिरना रामायणादि ग्रंथों में प्रसिद्ध ही है। प्रयो-जन यह है कि भक्ति और ज्ञान के संसर्ग से जीव का स्थूल आवरण वा उपाधि निवृत्त होकर उसमें आत्मता की सूक्ष्मपरता आ जाती है, सो विषय वेदांत वा योग में प्रसिद्ध है। (तीन लोक अंधेर) तीनों लोकों में अर्थात् सर्वत्र, यह एक आश्चर्य की बात हुई कि सूर्य के प्रकाश से अँधेरा हो गया अर्थात् ज्ञानरूपी सूर्य्य से अथवा परमात्मा के साक्षात्-कार वा अपरोक्ष ज्ञान से विद्यमान सृष्टि वा प्रकृति का अभाव हो गया और "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" यह सिद्धांत अनुभव में सिद्ध हो गया। (मूरष होय सो अर्थहि जाने) जगत् के व्यवहार से जो विमुख हो गया अर्थात् संसार में जो व्यवहार-रहित (गुणातीत) हो चुका वही ज्ञानी अपने अनुभव में इसका गूढ़ अर्थ पा सकता है। (सुंदर कहै शब्द

बेटी अपनी मा गहि षाई बेटै अपनौ षायौ बाप।
सुंदर कहै सुनो रे सतहु तिनकौं कोउ न लागौ पाप[1] ॥ ५ ॥

में फेर) फेर कहिए चक्कर वा विपरीतता। "बोली ही में फेर, लाख टका की सेर"। जो वचन साधारण पुरुष को कुछ और अर्थ का द्योतक हो वही ज्ञानी को किसी सूक्ष्म रहस्य वा आत्मा संबधी महान् भावपूर्ण अर्थ का साधक बनता है।

१—"मछरी बगुला को" ..इत्यादि। (मछरी) सात्विक वृत्तिवाली मनसा जो ज्ञान वा प्रेम रूपी जल में निवास करती है, (बगुला को) ऊपर से उजला परंतु भीतर से मैला ऐसा दंभ वा कपट भाव, दिखावटी ज्ञान वा भक्ति (गहि खायो) को पकड़कर खा गई, अर्थात् मिटा दिया, निवारण कर दिया। पहले बाहरी कर्त्तव्य अतरंग वृत्तियों और शाति को उत्पन्न नहीं होने देते थे, परंतु अब गुरुकृपा के कारण वह विघ्न करनेवाला ही मिट गया। (मूसै कारो नागहि खायो) ज्ञान की शक्ति पाए हुए मन वा विवेक रूपी चूहे ने संशय, संदेह रूपी कालुष्यवाले काले सांप को खाया अर्थात् वह उस ही में लय हो गया। (सूवै बिलाई पकरि षाई...) अति चपल सुंदर प्राणात्मा (जो शरीर के पिंजरे में रहता है) सूवे ने ईर्ष्या द्वेष वा द्वंद्वता रूपी (मंजरी आंखोंवाली) बिलाई को खा लिया अर्थात् संत जन इस ईर्ष्या से विमुक्त होते हैं और इसके मिटने ही से अतर प्राणात्मा को शांति मिलती है। (बेटी अपनी मा गहि षाई) त्रिगुणात्म माया से बुद्धि और ममता अहंता से वासना, बनती उपजती हैं। इससे बेटी कही गई। वासनारहित बुद्धि ने माया वा ममता को ग्रस लिया, मिटा दिया। (बेटे अपनो बाप षायो) संशय वा जिज्ञासा से ज्ञान की उत्पत्ति होती है अथवा इस अनेक तत्त्वमय पुद्गल (शरीर) में ज्ञान प्रकट होता है।

(२३) आपुने भाव को अंग

मनहर छंद

जैसैं स्वान काच के सदन मध्य देषि और,
भूँकि भूँकि मरत करत अभिमान जू।
जैसे गज फटिक शिला[1] सौ अरि तोरे दंत,
जैसैं सिंघ कूप मांहि उझकि भुलान जू॥
जैसैं कोऊ फेरी पात फिरत देषै जगत[2],
तैसैं ही सुंदर सब तेरौई अज्ञान जू।
आपुही को भ्रम सु तौ दूसरौ दिषाई देत,
आपुकौं विचारैं कोऊ दूसरौ न आन जू॥ २॥
याही कै जागत काम याही कै जागत क्रोध,
याही कै जागत लोभ याही मोह माता है।
याकौ याही वैरी होत याकौं याही मित्र होत,
याकौं याही सुख देत याही दुखदाता है॥

इससे ज्ञान पुत्र और संशय वा शरीर पिता हुआ। ज्ञान के जन्मने से ही संशय रूपी पिता विलीयमान हो जाता है अथवा ज्ञान के उत्पन्न होने से यह शरीर फिर नहीं होता। जीवन मरण की पुनरावृत्ति ही नहीं होती। (सुंदर कहै न लागो पाप) मा बाप का मार खाना महा वज्रपाप है। सो इन पुत्र पुत्रियों को कुछ भी पाप नहीं लगा वरन् पुण्य हुआ क्योंकि ब्रह्मानंद की प्राप्ति और जीवन मरण की अप्राप्ति हो गई। इससे बढकर और क्या होगा ?

१—बिल्लौर वा चमकदार सफेद पत्थर। २—आप तो फिरे और जगत फिरता दीखै—जैसे ढोलरहींदा, रेल, जहाज मे।

याही ब्रह्मा याही रुद्र याही विष्णु देषियत,
याही देव दैत्य यक्ष सकल संघाता[१] है।
याही कौ प्रभाव सु तौ याही कौं दिषाई देत,
सुंदर कहत याही आतमा विख्याता है ॥ ४ ॥

इंदव छंद

अपुने भाव तें सूर[२] सौ दीषत आपुने भावतें चंद्र सौ भासै।
आपुने भाव तें तारे अनंत जु आपुने भाव तें विद्युलता सै ॥
आपुने भाव तें नूर है तेज है आपुने भाव तें ज्योति प्रकासै।
तैसौहि ताहि दिषावत सुंदर जैसौहि होत है जाहिकौ आसै[३] ॥८॥
आपुने भाव तें भूलि परयो भ्रम देह स्वरूप भयौ अभिमानी।
आपुने भाव तें चंचलता अति आपुने भाव ते बुद्धि थिरानी ॥
आपुने भाव तें आप विसारत आपुने भाव तें आतम ज्ञानी।
सुंदर जैसौहि भाव है आपुन तैसौहि होय गयौ यह प्रानी ॥१२॥

---

(२४) स्वरूप विस्मरण को अंग

इंदव छंद

जा घट की उनहार है जैसिहि ता घट चेतनि[४] तैसौहि दीसै।
हाथी की देह में हाथी सौ मानत चींटी की देह मैं चींटी कीरीसै[५] ॥

१—समवाय, समूह, सृष्टिक्रम। २—सूर्य। ३—आशय वा आश्रय। ४—चैतन्यशक्ति जिसकी सत्ता बिना कोई भी पदार्थ न हो सकता है न रह सकता है। ५—कीरी + सै = कीरी जैसा अथवा रीसै = होड़, अनुहार, समान हो।

सिंघ की देह में सिंघ सौ मानत कीश[1] की देह में मानत कीशै।
जैसि उपाधि भई जहाँ सुंदर तैसौहि दोइ रह्यौ नख शीशै ॥१॥
ज्यौं कोउ मद्य पिएँ अति छाकत नाहिं कछू सुधि है भ्रम ऐसौ।
ज्यौं कोउ षाइ रहै ठग मूरिहि जानै नहीं कछु कारन तैसौ॥
ज्यौं कोउ बालक शंक[2] उपावत कंपि उठै अरु मानत भैसौ।
तैसैंहि सुंदर आपुकौं भूलि सु देषहु चेतनि मानत कैसौ॥५॥
एकइ व्यापक वस्तु निरंतर विश्व नहीं यह ब्रह्म विलासै।
ज्यौं नट मंत्रनि सौं दिठ बाँधत है कछु औरइ औरइ भासै॥
ज्यौं रजनी महिं बूझि परै नहिं जौं लगि सूरज नाहिं प्रकासै।
त्यौं यह आपुहि आपु न जानत सुंदर ह्वै रह्यौ सुंदर दासै॥८॥

मनहर छंद

जैसैं शुक नलिका न छाड़ि देत चुगल तै,
जानैं काहू औरै मोहि बाँधि लटकायौ है।
जैसैं कपि गुंजनि[3] कौ ढेर करि मानै आगि,
आगै धरि तापै कछु शीत न गमायौ है॥
जैसैं कोऊ दिशा भूलि जात हुतौ पूरब कौ,
उलटि अपूठो फेरि पछिम कौं आयौ है।
तैसैंहि सुंदर सब आपुही कौं भ्रम भयौ,
आपुही कौ भूलि करि आपुही बँधायौ है॥१०॥

१—बंदर। २—शंका, वहम, हाऊ। ३—चिरमटी लाल रंग की। इनके ढेर का लाल रंग देख बंदर उसको आग समझ तापता है, ऐसा किम्वा प्रसिद्ध है।

[इसी प्रकार अनेक उत्तम उत्तम दृष्टांत देकर इस बात को समझाया है कि यह जगत् की विचित्र लीला और व्यवहार अपने ही अहंकार का विचार, भ्रम वा विकार है। जब ज्ञानप्राप्ति से यह निश्चय हो जाय कि यह अपना ही भ्रम है तत्क्षण भ्रम नाश हो जाता है—]

"तैसैं ही सुंदर यह भ्रम करि भूल्यौ आपु,
भ्रम कैं गएँ ते यह आतमा सदाई है" ॥ १४ ॥

[भ्रम जब तक आत्म स्वरूप की अपरोक्षता नहीं होती, देह स्वरूप का अभिमानी बनकर अपने को भूल जाता है मानो ब्रह्म अपने आप को भूलकर ब्रह्म को ढूँढ़ता है। हाथ कंकण को आप न देखकर काँच में देखता है।]

इंदव छंद

आपुहि चेतनि ब्रह्म अखंडित सो भ्रम तें कछु अन्य परेषै[१] ।
ढूँढ़त ताहि फिरै जित ही तित साधत योग बनावत भेषै ॥
औरउ कष्ट करै अति सै करि प्रत्यक[२] आतम तत्व न पेषै ।
सुंदर भूलि गयौ निज रूपहि है कर कंकण दर्पण देषै ॥१९॥
ज्यौं रवि कौं रात्रै ढूँढ़त है कहुँ तृप्ति मिलै तनु शीत गवाऊँ ।
ज्यौं शशि कौं शशि चाहत है पुनि शीतल ह्वै करि तृप्ति बुझाऊँ ॥
ज्यौं कोउ भ्राति[३] भये नर टेरत है घर मैं अपने घर जाऊँ ।
त्यौं यह सुंदर भूलि स्वरूपहि ब्रह्म कहै कब ब्रह्महि पाऊँ ॥२१॥
मैं सुखिया सुख सेज सुखासन है गए भूमि महा रजधानी ।
हौ दुखिया दिन रैनि भरौं दुख मोहि विपत्ति परी नहिं छानी ॥

१—दिखाई दे, प्रतीत हो। २—प्रत्यगात्मा—शुद्ध निर्मल चेतन स्वरूप आत्मा—निर्गुण ब्रह्म, माया से असम्बद्ध। ३—भ्रम, बावलापन।

हौं अति उत्तम जाति बडौ कुल है अति नीच क्रिया कुल हानी ।
सुंदर चेतन तान सँभारत देह स्वरूप भयौ[1] अभिमानी ।।२४।।

---

(२५) सांख्य ज्ञान को अंग

[सांख्य का वर्णन ज्ञानसमुद्र में भी सुंदरदासजी ने भले प्रकार किया है। यहाँ भी जो वर्णन है वह प्रक्रिया से तो है नहीं केवल काव्य रूप में इतस्ततः प्रसंगवश सांख्य विषय की जो रचना हुई उसी का संग्रह प्रतीत होता है अथवा सांख्य पर संगृहीत विचारों को इंदव आदि छंदों में सरल और साधारण रीति से समझाने के अर्थ अथवा दादू वाणी पर टीका रूप इन छंदों का निर्माण हुआ है । यह अंग भी सवैया ग्रंथ में उत्तम अंगों में से है। इसके कई छंदों में बड़ा ही चमत्कार है और सांख्य की बातों का अच्छा समीकरण किया है। प्रथम तीन चार छंदों में २४ तत्वों को गिनाया है। इंद्रियों के देवता और इंद्रियों के कर्म बताए हैं फिर आत्मा की इनसे भिन्नता दिखलाई है। फिर प्रश्नोत्तर रूप से सृष्टि का दिग्दर्शन किया है और उसी में आत्म और अनात्म का भेद और स्वस्वरूप का निरूपण भी कर दिया है।]

मनहर छंद

छिति जल पावक पवन नभ मिलि करि,
सबदरु सपरश रूप रस गंध जू।
श्रोत त्वक चक्षु घ्राण रसना रस को ज्ञान,
वाक्य पाणि पाद पायु उपसथ बंध जू ।।
मन बुद्धि चित्त अहंकार ये चौबीस तत्व,
पंचविंश जीव तत्व करत है धंध जू ।

१—होता हुआ, जब तक है तब तक ।

षड्विंश को है ब्रह्म सुंदर सुनिहै कर्म,
व्यापक अखंड एक रस निरसंध जू[1] ॥१॥
श्रोत्र दिक त्वक वायु लोचन प्रकासै रवि,
नासिका अश्विनी जिह्वा वरुण बषानिए।
वाक अग्नि हस्त इंद्र चरण उपेंद्र बल,
मेढ़ू प्रजापति गुदा मित्रहु कों ठानिए॥
मन चंद्र बुद्धि विधि चित्त वासुदेव आहि,
अहंकार रुद्र को प्रभाव करि मानिए।
जाकी सत्ता पाइ सब देवता प्रकाशत हैं,
सुदर सु आतमाहिं न्यारौ करि जानिए[2] ॥२॥

इंदव छंद

श्रोत्र सुनै दृग देषत हैं रसना रस घ्राण सुगंध पियारौ।
कोमलता त्वक जानत है पुनि बोलत है मुख शब्द उचारौ॥

१—सांख्य में प्रतिपादित २४ तत्व ये हैं। पंच महाभूत—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश। ५ ज्ञानेन्द्रिय—जिह्वा, कान, नाक, आँख और त्वचा। ५ विषय—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध। ५ कर्मेंद्रिय—वाणी, हाथ, पाँव, पायु और उपस्थ। ४ अंतःकरण—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये सब प्रकृति के अंतर्गत हैं। पचीसवां जीव और जीव ही प्रकृति से असंबद्ध हो तो यही छब्बीसवाँ पदार्थ ब्रह्म है। २—इस छंद में इंद्रियों और अंतःकरण-चतुष्टय के १४ देवताओं को दिया है। कान का दिक। त्वचा का वायु। आँख का सूर्य। नाक का अश्विनीकुमार। जीभ का वरुण। वाणी का अग्नि। हाथ का इंद्र। पाँव का उपेंद्र। मेढ़ू का प्रजापति। गुदा का मित्रदेव। मन का चंद्रमा। बुद्धि का ब्रह्मा। चित्त का विष्णु। अहंकार का शिव। इन सब देवताओं की शक्ति जिससे है वही सर्वेश परमात्मा है।

पानि ग्रहै पद गौन करै मल मूत्र तजै उभऊ अध द्वारौ।
जाकै प्रकाश प्रकाशत हैं सब सुंदर सोइ रहै घट न्यारौ[१] ॥३॥

मनहर छंद। प्रश्न

कैसैं कै जगत यह रच्यो है जगतगुरु,
मौसौं कहो प्रथम हिं कौन तत्व कीनौ है।
प्रकृति कि पुरुष कि महतत्व अहंकार,
किधौ उपजाएँ सत रज तम तीनौ है॥
किधौं व्यौम वायु तेज आपुकै अवनि कौन,
किधौं पंच विषय पसारि करि लीनौ है।
किधौं दश इंद्री किधौं अंतःकरण कौन,
सुंदर कहत किधौं सकल विहीनौं[२] है॥ ६ ॥

उत्तर

ब्रह्म तें पुरुष अरु प्रकृति प्रगट भई,
प्रकृति तें महत्तत्व पुनि अहंकार है।
अहंकार हूँ तें तीन गुन सत्व रज तम,
तम हूँ तें महाभूत विषय पसार है॥
रज हूँ तें इंद्री दश पृथक पृथक भई,
सत्व हूँ तें मन आदि देवता विचार है।

१—इसमें सब इन्द्रियों के गुण कर्म कहे हैं और वे सब परमात्मा की सत्ता से कर्म करती हैं। २—सकल विश्व मे परमात्मा पृथक् है अथवा उसके बिना ही बन गया है।

ऐसे अनुक्रम करि शिष्य सौं कहत गुरु,
सुंदर सकल यह मिथ्या भ्रम जार[1] है ॥ ७ ॥

प्रश्न

मेरौ रूप भूमि है कि मेरौ रूप आप है कि,
मेरौ रूप तेज है कि मेरौ रूप पौन है।
मेरौ रूप व्योम है कि मेरौ रूप इंद्री है कि,
अंतहकरण है कि बैठौ है कि गौन[2] है ॥
मेरौ रूप त्रिगुण कि अहंकार महत्तत्व,
प्रकृति पुरुष किधौं बोलै है कि मौन है।
मेरौ रूप स्थूल है कि शुन्य आहि मेरौ रूप,
सुंदर पूछत गुरु मेरौ रूप कौन है ॥ ८ ॥

उत्तर

तूँ तो कछु भूमि नाहिं आप तेज वायु नाहि,
व्योम पंच विषै नाहिं सो तो भ्रम कूप है।
तूँ तौ कछु इंद्री अरु अंतहकरण नाहिं,
तीनों गुणऊ तू नाहिं सोऊ छाँह धूप है ॥
तूँ तौ अहंकार नाहिं पुनि महत्तत्व नाहि,
प्रकृति पुरुष नाहिं तू तौ सु अनूप है।
सुंदर बिचारि ऐसे शिष्य सों कहत गुरु,
नाहिं नाहि[3] करतें रहसु तेरौ रूप है ॥ ९ ॥

१—जाल। २—गमन—गतिवाला। ३—नेति नेति का प्रयोग है। यह भी नहीं। इस प्रकार नहीं। वह वेदों का निश्चय है।

देहई नरक रूप दुःख कौ न वार पार,
देहई जू स्वर्ग रूप झूठौ सुख मान्यौ है।
देहई कौ बंध मोच्छ देहई अप्रोच्छ मोच्छ[1],
देहई के क्रिया कर्म सुभासुभ ठान्यौ है॥
देहई में और देह[2] खुसी ह्वै विलास करै,
वाही को समुझि विन आतमा बखान्यौ है।
दोऊ देह में अलिप्त दोऊ कौं प्रकाश कहै,
सुंदर चेतन रूप न्यारौ करि जान्यौ है॥ ११॥

प्रश्नोत्तर

देह यह कौन को है देह पंच भूतनि कौ,
पंच भूत कौन तें हैं तामसाहंकार तें।
अहंकार कौन तें है जासौं महत्तत्व कहैं,
महत्तत्व कौन है प्रकृति मँझार[3] तें॥
प्रकृति हू कौन तें हैं पुरुष[4] है जाकौ नाम,
पुरुष सों कौन तें हैं ब्रह्म निरधार तें।
ब्रह्म[5] अब जान्यौ हम जान्यौ है तो निश्चै करि,
निश्चै हम कियौ है तौ चुप मुखद्वार[6] तें॥ १४॥

१—अपरोच्छ=प्रत्यच्छ, साचात्। परोच्छ=छिपा हुआ। देह में परमात्मा है और नहीं प्रत्यच्छ होता और जिनको हुआ है उनको इस देह में ही अर्थात् अंतःकरण की खिड़की में होकर मिल गया। २—सूक्ष्म शरीर और उसमें कारण शरीर। ३—मध्य, बीच, भीतर। ४—ईश्वर, मायाविशिष्ट। ५—परमात्मा, मायारहित। ६—स्थूल वाणी से कहने का सामर्थ्य नहीं।

भूमि परै अप[1] अपहू कै परै पावक है,
पावक कै परै पुनि वायु हू वहतु है।
वायु परै व्योम व्योम हू कै परै इंद्री दश,
इंद्रीन कै परै अंत.करण रहतु है॥
अंत:करण परै तीनौं गुण अहंकार,
अहंकार परै महत्तत्व कौ लहतु है।
महत्तत्व परै मूल-माया माया परै ब्रह्म,
ताही तें परातपर सुंदर कहतु है॥ १६॥
देह जड़ देवल मैं आतमा चैतन्य देव,
याही कौं समुझि करि यासौं मन लाइए।
देवल कौं विनसत बार नहिं लागै कछु,
देव तौ सदा अभंग देवल मैं पाइए॥
देव की शकति करि देवल की पूजा होइ,
भोजन विविध भाँति भोग हू लगाइए।
देवल तें न्यारौ देव देवल मैं देपियत,
सुंदर विराजमान और कहाँ जाइए[2]॥ २०॥
प्रीति सी न पाती कोऊ प्रेम से न फूल और,
चित्त सौं न चंदन सनेह सौं न सेहरा।
हृदै सौं न आसन सहज सौं न सिंघासन,
भावसी न सौंज और शून्य सौं न गेहरा॥

१—पर शब्द—उत्कृष्टता, सूक्ष्मता और बलवत्तरता तथा परता का द्योतक है। २—अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है जब कि घट ही में विद्यमान है।

शील सौं सनान नाहि ध्यान सौं न धूप और,
ज्ञान सौं न दीपक अज्ञान तम केहरा[1] ।
मनसी न माला कोऊ सोऽहं सो न जाप और,
आतमा सौं देव नाहिं देह सौं न देहरा[2] ॥ २२ ॥
षीर नीर मिलि दोऊ एकठेई होइ रहे,
नीर छाड़ि हंस जैसै षीर कौं गहतु है ।
कंचन मैं और धात मिलि करि वान[3] परयौ,
शुद्ध करि कंचन सुनार ज्यौं लहतु है ॥
पावक हू दार[4] मध्य दार ही सो ह्वै है रह्यौ,
मथि करि काढ़ैं वाही दार कौं दहतु है ।
तैसैही सुंदर मिल्यो आतमा अनातमा जू,
भिन्न भिन्न करिए सुतौ सांख्य कहतु है ॥ २३ ॥
अन्नमय कोश सु तौ पिंड है प्रगट यह,
प्रानमय कोश पाँच वायुहू बषानिए ।
मनोमय कोश पंचकर्म इंद्रिय प्रसिद्ध,
पंच ज्ञान इंद्रिय विज्ञान कोश जानिए ॥
जाग्रत रु स्वप्न विषै कहिए चत्वार कोश,

१—हरनेवाला । २—यह छंद सुंदरदासजी ने बनारसीदासजी जैन कवि को लिख भेजा था । ३—मिला हुआ धातु । वान = खोटा सोना । यथा 'सोने की वह नार कहावै । बिना कसौटी वान किसावै' (सौदा कवि) । ४—काठ ।

सुषुप्ति माँहि कोश आनंद मय मानिए।
पंचकोश अन्म को जीव नाम कहियतु है,
सुंदर शंकर[1] भाष्य साष्य यह आनिए॥ २४॥
जाग्रत अवस्था जैसैं सदन मांहि वैठियत,
तहा कछु होइ ताहि भली भाँति देषिए।
स्वपन अवस्था जैसैं वोवरे[2] में वैठै जाइ,
रहैं रहैं उहाँऊ की वस्तु सब लेषिए॥
सुषुपति भौहरे[3] मैं वैठे ते न सूझि परै,
महा अंध घोर तहाँ कछुव न पेषिए।
व्योम अनसूत[4] घर वोवरे भैहरे माँहि,
सुंदर साचो स्वरूप तुरिया विशेषिए॥ २५॥

इंदव छंद

जाग्रत रूप लिए सब तत्वनि इंद्रिय द्वार करै व्यवहारौ।
स्वप्न शरीर भ्रमै नव[5] तत्व कौ मानत है सुख दु.ख अपारौ॥
लीन सवै गुन होत सुषोपति जानै नहीं कछु घोर अँधारौ।
तीनों को साचो रहे तुरियातत[6] सुंदर सोइ स्वरूप हमारौ॥२७॥

१—व्यासजी के वनाए वेदांत सूत्र पर, जिसको शारीरिक भी कहते हैं, शंकराचार्य्यजी ने टीका रची है उसको भाष्य वा वेदांत भाष्य भी कहते हैं। २—मिट्टी का कोठा वा लंवा कूंट वा कोठी अनाज आदि रखने की। ३—खदक, अँधेरा गढ़ा। ४—अनुस्यूत = भले प्रकार मिला हुआ, सर्वव्यापक। ५—सूक्ष्म शरीर में ५ ज्ञानेंद्रिय + अंत करण चतुष्टय ६—तुरीयावस्था में फैलनेवाला या तत्व वा अतीत।

भूमि तें सूक्ष्म आपको जानहु आप ते सूक्ष्म तेज को अंगा ।
तेज ते सूक्ष्म वायु वहै नित वायु तें सूक्ष्म व्योम उतंगा ॥
व्योम तें सूक्ष्म हैं गुन तीन तिहूँते अहं महत्तत्व प्रसंगा ।
ताहु तें सूक्ष्म मूल प्रकृति जु मूल ते सुंदर ब्रह्म अभंगा ॥२८॥
ब्रह्म निरंतर व्यापक अग्नि अरूप अखंडित है सब माहीं ।
ईश्वर पावक रासि प्रचंड जु संग उपाधि लिए बरताहीं ॥
जीव अनंत मसाल चिराग सुदीप पतंग अनेक दिषाहीं ।
सुंदर द्वैत उपाधि मिटै जब ईश्वर जीव जुदे कछु नाहीं ॥२९॥
ज्यौं नर पावक लोह तपावत पावक लोह मिले सु दिषाहीं ।
चोट अनेक परैं घन की सिर लोह बधै कछु पावक नाँहो ॥
पावक लीन भयौ अपनै घर शीतल लोह भयौ तब ताँही ।
त्यौं यह आतम देह निरंतर सुंदर भिन्न रहै मिलि माँही ॥३०॥
आतम चेतनि शुद्ध निरंतर भिन्न रहै कहुँ लिप्त न होई ।
है जड चेतन अंतहकर्ण जु शुद्ध अशुद्ध लिएँ गुन दोई ॥
देह अशुद्ध मलीन महा जड़[1] हालि न चालि सकै पुनि बोई ।
सुंदर तीनि विभाग किए बिन भूलि परै भ्रम तें सब कोई ॥३१॥

१—जड़ पदार्थ वह है जिसमें चेतन का स्पंद रूपी प्रादुर्भाव स्वयं चलनादि क्रियाओं से नहीं रहता। इससे उस जड़ में चेतन-सत्ता का अभाव नहीं समझना चाहिए किंतु सृष्टि का एक क्रम मात्र ही जानो। चेतनसत्ता तो जैसी जड़ में है वैसी ही जीवधारियों में है केवल क्रम और विकास का रूपांतर मात्र है।

सवइया छंद

देह सराव तेल पुनि मारुत[1] वाती अंतःकरण विचार ।
प्रगट जोति यह चेतनि दीसै जातैं भयो सकल उजियार ॥
व्यापक अग्नि मथन करि जोये दीपक बहुत भांति विस्तार ।
सुंदर अद्भुत रचना तेरी तूं ही एक अनेक प्रकार ॥३३॥
तिल मैं तेल दूध मैं घृत है दार मांहि पावक पहिचानि ।
पुहपु मांहि ज्यौं प्रगट वासना इक्षु मांहि रस कहत बषानि ॥
पोसत मांहि अफीम निरंतर वनस्पती मैं सहत प्रवानि ।
सुंदर भिन्न मिल्यौ पुनि दीसत देह मांहि यौं आतम जानि ॥

---

(२६) विचार को अंग

[मनुष्य को परमात्मा ने विचार-शक्ति दी इसी से मनुष्य इस लोक में सर्वश्रेष्ठ होता है। इस शक्ति की उन्नति ही से मनुष्य का गौरव बढ़ता है। तथा च परलोक में सद्गति भी इस विचार-शक्ति ही से प्राप्त होती है। विवेक का व्यापार ही आत्म और अनात्म की कक्षाओं से निकालकर आगे ले जाता है और सूक्ष्म परमात्म तत्व की धारणा के योग्य बनाता है। विवेक ही से उपाधि और भ्रम का नाश होकर सत्य वस्तु का ग्रहण होता है]। बुद्धि तक जो आवरण है वह

1—मारुत = पवन अर्थात् जीव वा प्राण ।

स्वव्यापार से खड़िया की नाईं घिसकर नष्ट होने से स्वस्वरूप प्रगट होता है। इस अंग मे कई दार्शनिक सूक्ष्म बातें श्रीस्वामीजी ने कही हैं।]

मनहर छंद

देषै तौ विचार करि सुनै तौ विचार करि,
बोलै तौ विचार करि करै तौ विचार है।
षाइ तौ विचार करि पीवै तौ विचार करि,
सोवै तौ विचार करि तौ ही तौ उवार है॥
बैठै तौ विचार करि उठै तौ विचार करि,
चलै तौ विचार करि सोई सत सार है।
देइ तौ विचार करि लेइ तौ विचार करि,
सुंदर विचार करि याही निरधार है॥ २॥

इंदव छंद

एक हि कूप के नीर तें सींचत इक्षु अफीम हि अंब अनारा।
होत उहै जल स्वाद अनेकनि मिष्ट कटूक षटा अरु षारा॥
त्यौंहि उपाधि संजोग ते आतम दीसत आहि मिल्यौ सौ विकारा।
काढ़ि लिए जु विचार विवस्वत[1] सुंदर शुद्ध स्वरूप है न्यारा॥७॥
रूप परा कौ न जानि परै कछु ऊठत है जिहिं मूल तें छानी।
नाभि विषै मिलि सप्त स्वरन्नि पुरुष संजोग पश्यंति वषानी॥
नाद संयोग हृदै पुनि कंठ जु मध्यमा याही विचार तें जानी।

१—सूर्य। उपाधि रहित होने से शुद्ध ब्रह्म आत्मा ही है जैसे सूर्य के आगे से बादल आदि विकार दूर होने से।

अत्तर भेद लिए मुख द्वार सु बोलत सुंदर वैषरि बानी[१] ॥८॥
कर्म शुभाशुभ की रजनी पुनि अर्द्ध तमोमय अर्द्ध उजारी।
भक्ति सु तौ यह है अरुणोदय अंत निसा दिन संधि विचारी॥
ज्ञान सु भान सदोदित बासर वेद पुरान कहैं जु पुकारी।
सुंदर तीन प्रभाव वषानत यौं निहचै समुझै विधि सारी[२] ॥११॥

मनहर छंद

आतमा कै विषै[३] देह आइ करि नाश होहि,
आतमा अखंड सदा एकई रहतु है।
जैसे साँप कंचुकी कौ लिए रहै कोऊ दिन,
जीरन उतारि करि नूतन गहतु है॥
जैसैं द्रुमहू कै पत्र फूल फल आइ होत,
तिनकै गएँ ते द्रुम औरउ लहतु है।
जैसैं व्योम माँहि अभ्र होइ कैं बिलाइ जात,
ऐसौ सौ विचार कछु सुंदर कहतु है॥ १२॥
षरी की डरी सौं अंक लिषि कैं विचारियत,
लिषत लिषत वहै डरी घसि जात है।

१—इसमें परा, पश्यंती, मध्यमा और वैखरी चारों प्रकार की वाणियों का वर्णन है जो स्थूल, सूक्ष्म, कारण और तुरीया अवस्थाओं में वर्तती हैं। २—कर्म, भक्ति और ज्ञान का रूप रात्रि, प्रभात और दिन के रूपक से बताया है। सबमें ज्ञान की प्रधानता है ३—विषै शब्द के कहने से आतमा का समुद्रवत् महान् होना है।

लेपौ समुझ्यौ है जब समुझि परी है तब,
जोई कछु सही भयौ सोई ठहरात है ॥
दार ही सौं दार मथि पावक प्रगट भयौ,
वह दार जारि पुनि पावक समात है।
तैसैं हि सुंदर बुद्धि ब्रह्म कौ विचार करि,
करत करत वह बुद्धि हूँ विलात है॥ १४ ॥
आपु कौं समुझि देषि आपु ही सकल माहि,
आपु ही मैं सकल जगत देषियतु है[1]।
जैसैं व्योम व्यापक अखंड परिपूरन है,
वादल अनेक नाना रूप लेषियतु है॥
जैसै भूमि घट जल तरंग पावक दीप,
वायु मैं बघूरा यौंहीं विश्व रेषियतु है।
ऐसैं ही विचारत विचार हू विलीन होइ[2],
सुंदर ही सुदंर रहत पेषियतु है॥ १५।
देह कौ संयोग पाइ जीव ऐसौ नाम भयौ,
घट के सयोग घटाकाश ज्यौं कहायौ है।

१–यह विचार सत्य है। वास्तविक ज्ञान तो जब अनुभव हो तब होता है। परंतु साधारण विचार से भी प्रतीति होती है। यथा सुख दु ख आदि का ज्ञान सब जीवों को समान सा है इससे जीव एक सा भासता है। इंद्रिय-गोचर जगत का ज्ञान जीवों को साधारणतः एक सा होता है इससे जगत् का आत्मा में होना एक प्रकार अनुमानित होता है। २–जैसे लिखते लिखते स्याही वा खड़ी चुक जाती है।

ईश्वर हू सकल विराट में विराजमान,
मठ के संयोग मठाकाश नाम पायौ है ॥
महाकाश माहि सब घट मठ देषियत,
बाहर भीतर एक गगन समायौ है।
तैसैं हो सुंदर ब्रह्म ईश्वर अनेक जीव,
त्रिविध उपाधि भेद ग्रंथनि मैं गायौ है[1] ॥ १८ ॥

पृथ्वी भाजन अंग कनक कटक पुनि,
जल हू तरंग दोऊ देषि कै वषानिए।
कारण कारज ये तौ प्रगट ही थूल रूप,
ताही तें नजर माहि देषि करि आनिए ॥
पावक पवन व्योम ये तौ नहिं देषियत,
दीपक वघूरा अभ्र प्रत्यच्छ प्रमानिए।
आतमा अरूप अति सूक्षम तें सूक्षम है,
सुंदर कारण तातें देह मैं न जानिए ॥ १९ ॥

---

(२७) ब्रह्मनि:कलंक को अंग

[परमात्मा नित्य शुद्ध और अलिप्त है यही निर्गुणता और कूटस्थता का संपादन है। ब्रह्म ही में सब सृष्टि समा रही है, परंतु वह सबसे निर्लिप्त है। जीवों के कर्म तो जीवों को ही उपाधि और अज्ञान से

१—घटाकाश दृष्टांत है जीव संज्ञा का, मठाकाश ईश्वर संज्ञा का और महाकाश ब्रह्म संज्ञा का। केवल स्वारोपित उपाधि का भेद जो घट और मठ से जाने।

बांधते हैं। आकाश की नाईं ब्रह्म सबमें रहकर सबसे पृथक् है। उस पर कलंक, दोष वा कोई गुणासंग का आरोपण नहीं हो सकता है। इन्हीं बातों को उदाहरणों से दरसाया गया है।]

मनहर छंद

जैसैं जलजतु जल ही मे उतपन्न होहिं,
जल ही में विचरत जल के आधार हैं।
जल ही में क्रीडत विविध विवहार होत,
काम क्रोध लोभ मोह जल में संहार हैं॥
जल कौं न लागै कछु जीवन के रोग दोष,
उनहीं के क्रिया कर्म उनहीं की लार[1] हैं।
तैसे ही सुंदर यह ब्रह्म मैं जगत सब,
ब्रह्म कौं न लागै कछु जगत विकार॥ ३॥
स्वेदज जरायुज अंडज उदभिज पुनि,
चारि षानि तिनके चौरासी लक्ष जंत हैं।
जलचर थलचर व्योमचर भिन्न भिन्न,
देह पंच भूतन की उपजी षपंत[2] हैं॥
शीत घाम पवन गगन मैं चलत आइ,
गगन अलिप्त जामैं मेघ हू अनंत हैं।
तैसैंही सुंदर यह सृष्टि एक ब्रह्म मांहि,
ब्रह्म निःकलंक सदा जानत महंत हैं॥ ४॥

१—लार = साथ। २—नाश होता है।

(२८) आत्मा अनुभव को अंग

[आत्मा का अनुभव वा अपरोक्ष ज्ञान जिसको योग में निर्विकल्प समाधि का आनंद कहते हैं वह विषय है जिसके जानने वा पाने के लिये सब शास्त्रों का समारोह है। और यह वह बात है कि जिसका कहना सुनना और समझना अनभ्यस्त और साधारण पुरुषों का काम नहीं। यही सब सत्य ज्ञान का आधार और वेदांत और योग का अत्यत प्रमाण है। व्यासजी ने सांख्यों का खंडन भी तो अंत में 'तद्दर्शणात्' से ही किया है। अर्थात् तुम्हारा भ्रम विना साक्षात्कार के नहीं जा सकता अथवा यह सब साक्षात् होता है इससे सिद्ध है। इस ही बात को सुंदरदासजी ने कई प्रकार से ऐसा उत्तम वर्णन किया है कि जैसा शायद ही किसी हिंदी काव्य ग्रंथ में मिल सके। आत्मानुभव गूँगे का सा गुड़ है। वह ऐसा पदार्थ है कि जिस प्रकार कहना चाहे उसी प्रकार कहने में नहीं आता इसीसे इससे हार माननी पड़ती है और कहते मानों लज्जा भी आती है। यही जीते हुए का मोक्ष है, मरने पर मोक्ष कहने-वाले भ्रम में हैं। जगत का भ्रम कहा जाना भी आत्मानुभव से ही प्रतीत हो सकता है। यह सापेक्षतया आत्मा अनात्मा के ज्ञान से सिद्ध होता है। इसकी प्राप्ति श्रवन-मनन-निदिध्यासन से है। फिर साक्षात् ज्ञान होता है। इन साधनो का कई दृष्टांतो से वर्णन है।]

इंदव छंद

है दिल में दिलदार सही अँखियाँ उलटी करि ताहि चितइए।
आब में खाक में बाद में आतस जान मैं सुंदर जानि जनइए ॥
नूर में नूर है तेज में तेज है ज्योति मे ज्योति मिलै मिलि जइए[1] ।
क्या कहिए कहतैं न बनै कछु जो कहिए कहतें ही लजइए ॥१॥

१–मिलने से मिल जाता है अथवा उसके मिलने से उसमें लीन हो जाना होता है।

जासौ कहूँ सबमें वह एक तौ सौ कह कैसौ है आँपि दिखइए ।
जौ कहूँ रूप न रेप तिसै कछु तौ सब झूठ कै माने[1] कहइए ॥
जौ कहूँ सुंदर नैननि माँझि तौ नैन हू बैन गए पुनि[2] हइए ।
क्या कहिए कहतै न बनै कछु जो कहिए कहते ही लजइए ॥२॥
होत विनोद जु तौ[3] अभि अंतर सो सुख आप मैं आपुहि पइए ।
बाहिर कौं उमग्यौ पुनि आवत कंठ ते सुंदर फेरि पठइए ॥
स्वाद निवेरे निवेर्यौ न जात मनौ गुर गूँगे ही ज्यों नित षइए ।
क्या कहिए कहतै न बनै कछु जो कहिए कहतै ही लजइए ॥३॥
एक कि दोइ न एक न दोइ उहीं कि इहीं[4] न उहीं न इहीं है ।
शून्य कि थूल न शून्य न थूल जहीं की तहीं[5] न जहीं न तहीं है ॥
मूल कि डाल न मूल न डाल वहीं कि महीं[6] न वहीं न महीं है ।
जीव कि ब्रह्म न जीव न ब्रह्म[7] तौ है कि नहीं कछु है न नहीं है ॥५॥
एक कहूँ तौ अनेक सौं दीषत एक अनेक नहीं कछु ऐसो ।
आदि कहूँ तिहि अंतहु आवत आदि न अंत न मध्य सु कैसो ॥
गोपि कहूँ तौ अगोपि कहा यह गोपि अगोपि न ऊभौ न वैसो ।
जोइ कहूँ सोइ है नहिं सुंदर है तौ सही परि जैसे कौ तैसो[8] ॥६॥

१—झूठा करके माना जायगा ऐसा कहना चाहिए । २—नेत्रों के वाणी नहीं है—"गिरा अनैन नैन बिनु बानी" । "अदृश्य भावना नास्ति दृश्यमानो विनश्यति ।" ३—जो कुछ वा जो तुझमें । ४—यहाँ वा कहाँ—देश वा दिक् से अभिप्राय है। ५—तब वा जब काल से प्रयोजन है । ६—वही = बाहर, मही = माँही, अंदर। ७—जीव कहने से तो बनै नहीं और ब्रह्म ही कहैं तो जीव माया आदि का विचार उठेगा । ८—जैसी जिस पुरुष के भावना होती है उसको वैसा ही सिद्ध हो जाता है यह सिद्धांत सत्य है ।

मनहर छंद

इंद्री नहि जानि सकै अल्प ज्ञान इंद्रिन कौ,
प्रान हू न जानि सकै स्वास आवै जाइहै।
मनहू न जानि सकै संकल्प विकल्प करै,
वुद्धिहू न जानि सकै सुन्यौ सु वताइहै॥
चित्त अहंकार पुनि एऊ नहिं जानि सकै,
शव्द हू न जानि सकै अनुमान पाइहै।
सुंदर कहत ताहि कोऊ नहि जानि सकै,
दीवा करि देषिए सु ऐसी नहीं लाइहै[1] ॥ ६ ॥

ंदव छंद

सूर के तेज तें सूरज दीसत चंद के तेज तें चंद उजासै।
तारे के तेज में तारेउ दीसत विज्जुल तेज तें विज्जु चकासै॥
दीप के तेज तें दीपक दीसत हीरे के तेज तें हीरोउ भासै।
तैसैहिं सुंदर आतम जानहु आपके तेज में आप प्रकासै॥११॥
कोउ कहै यह सृष्टि सुभाव तें कोउ कहै यह कर्म तें सृष्टी।
कोउ कहै यह काल उपावत कोउ कहै यह ईश्वर तिष्टी[2] ॥
कोउ कहै यह ऐसेहि होत है क्यौं करि मानिय वात अनिष्टो[3]।
सुंदर एक किए अनुभौ विनु जानि सकै नहिं वाहिज दृष्टी॥१२॥

१–लाइ = लाय, अग्नि प्रज्वलित। २–काल, कर्म, स्वभाव, कारण यह चार सृष्टि के पृथक् पृथक् सिद्धांत प्रकरण है। ३–वौद्धों और जैनियों ने ऐसा ही माना है। अनिष्टी = वुरी, असमीचीन।

मूए तें मोक्ष कहै सब पंडित मूए तें मोक्ष कहै पुनि जैना ।
मूए तें मोक्ष कहै ऋषि तापस मूए तें मोक्ष कहै शिव सैना[१] ॥
मूए तें मोक्ष मलेछ कहै तेउ थोपे हि थोपै वषानत वैना ।
सुंदर आतम कौ अनुभौ सोइ जीवत मोक्ष सदा सुख चैना ॥१४॥

मनहर छंद

पाव जिनि गह्यौ सुतौ कहत है ऊषर[२] सौ,
पूँछ जिनि गही तिन लाव सौ सुनायौ है ।
सूँड जिनि गही तिन दगला[३] की वाँह कह्यौ,
दांत जिनि गह्यौ तिनि मूसर दिषायौ है ॥
कान जिनि गह्यौ तिनि सूपसौ[४] बनाइ कह्यौ,
पीठि जिनि गही तिनि विटोरा[५] बतायौ है ।
जैसौ है सु तैसौ ताहि सुदर सयाँखौ[६] जानै,
आँधरनि[७] हाथी देषि ऊगरा[८] मचायौ है ॥१७॥
न्याय शास्त्र कहत है प्रगट ईश्वरवाद,
मीमांसक शास्त्र महि कर्मवाद कह्यौ है ।
वैशेषिक शास्त्र पुनि कालवादी है प्रसिद्ध,
पातंजलि शास्त्र महिं योग वाद लह्यौ है ॥
सांख्य शास्त्र माहिं पुनि प्रकृति पुरुषवाद,

१—संप्रदाय, शैव अथवा शिव मतवाले जो रहस्य वाममार्ग में बताते हैं । २—धान कूटने की लकड़ी की ऊषल (उलूपली) । ३—अँगरखा, प्राय रुईदार । ४—छाजला । ५—ऊपले वा छानो के संग्रह को गोबर लीपकर ढलाऊ कर देते हैं । ६—सुआँखा, सूझता, जो अंधा न हो । ७—कई अंधों ने । ८—टटोलकर ।

वेदांत शास्त्र तिनहि ब्रह्मवाद गह्यौ है।
सुंदर कहत षट् शास्त्र महि भयौ वाद,
जाकै अनुभव ज्ञान वाद में न वह्यौ है॥ १८॥
प्रज्ञानमानंद ब्रह्म ऐसैं ऋग्वेद कहत,
अहं ब्रह्म अस्मि इति यजुर्वेद यौं कहै।
तत्वमसि इति सामवेद यौं बषानत है,
अयमात्माहि ब्रह्म वेद अथर्व्वन लहै॥
एक एक वचन मैं तीन पद है प्रसिद्ध,
तिनकौं विचार करि अर्थ तत्व कौं गहै।
चारि वेद भिन्न भिन्न[1] सबकौ सिद्धांत एक,
सुंदर समुझि करि चुपचाप ह्वै रहै॥ १९॥
छिति भ्रम जल भ्रम पावक पवन भ्रम,
व्योम भ्रम तिनकौ शरीर भ्रम मानिए।
इंद्री दश तेऊ भ्रम अंतहकरण भ्रम,
तिनहू के दैवता सु भ्रम तें बषानिए॥
सत्व रज तम भ्रम पुनि अहंकार भ्रम,
महत्तत्व प्रकृति पुरुष भ्रम भानिए।

१—चारों वेदों के उपनिषदों में ये महावाक्य आए हैं। प्रज्ञाघन आनद स्वरूप ही ब्रह्म है। मै नाम मेरा आत्मा ही ब्रह्म है। वह तू है—वह तू (तेरी आत्मा) है। यह आत्मा (जो तेरी वा तेरे अंदर है) सो ही ब्रह्म है। इन चारो के अर्थ को विचारने से प्रयोजन एक ही, जीव व आत्मा का अभेद, निकलता है।

जोई कछु कहिए सु सुंदर सकल भ्रम[1],
अनुभौ किए तै एक आतमाही जानिए ॥ २५ ॥
माया की अपेक्षा ब्रह्म रात्रि की अपेक्षा दिन,
जड की अपेक्षा करि चैतन्य बपानिए।
अज्ञान अपेक्षा[2] ज्ञान बंध की अपेक्षा मोक्ष,
द्वैत की अपेक्षा सुतौ अद्वैत प्रवानिए॥
दुःख की अपेक्षा सुख पाप की अपेक्षा पुन्य,
झूठ की अपेक्षा ताहि सत्य करि मानिए।
सुंदर सकल यह बचन विलास भ्रम,
वचन अवचन रहित सोई जानिए॥ २६ ॥
आतमा कहत गुरु शुद्ध निरवध नित्य,
सत्य करि मानै सुतौ सवद प्रमाण है।
जैसै व्योम व्यापक अखंड परिपूरन है,
व्योम उपमा तें उपमान सो प्रमाण है।
जाकी सत्ता पाइ सब इंद्रिय चेतनि होइ,
याही अनुमान अनुमान हू प्रमाण है।
अनुभव जानै तब सकल संदेह मिटं,
सुंदर कहत यह प्रत्यक्ष प्रमाण है॥ २७ ॥
एक तो श्रवन[3] ज्ञान पावक ज्यों देषियत,

१—माया अनिर्वचनीय भ्रम रूप पदार्थ है। उसके अंश वा भाग भी भ्रम ही हैं। २—ज्ञान और सृष्टि सापेक्षतया आभासित होते हैं। ब्रह्म का अपरोक्ष ज्ञान होने से माया नहीं रहती, इत्यादि। ३—श्रवण,

माया जल वरषत वेगि बुझि जात है।
एक है मनन ज्ञान विज्जुल ज्यौं घन मध्य,
माया जल्ल वरषत तामें न वुझात है॥
एक निदिध्यास ज्ञान वडवा अनल सम,
प्रगट समुद्र माहिं माया जल षात है।
आतमा अनुभव ज्ञान प्रलय अग्नि जैसे,
सुंदर कहत द्वैत प्रपंच विलात है॥ २९॥

भोजन की बात सुनि मन में मुदित होत,
मुख में न परै जौलौं मेलिए न ग्रास है।
सकल सामग्री आनि पाक कौं करन लाग्यौ,
मनन करत कब जीऊँ यह आस है॥
पाक जब भयौ तब भोजन करन बैठौ,
मुख में मेलत जाइ उहै निदिध्यास है।
भोजन पूरन करि तृपत भयो है जब,
सुंदर साच्छातकार अनुभौ प्रकाश है॥ ३२॥

काहू कौं पूछत रंक धन कैसैं पाइयत,
कान दैकैं सुनत श्रवन सोई जानिए।
उन कह्यो धन हम देखौ है फलानी ठौर,
मनन करत भयौ कब घरि आनिए॥

मनन, निदिध्यासन तथा आत्मानुभव—ये चार ज्ञान क्रम साधन हैं जो वेदांत में अधिकारी होने के लिये मुख्य गिने जाते हैं। इनको दृष्टांत से भिन्न भिन्न कर वर्णन किया गया है।

फेरि जब कह्यो धन गड़्यौ तेरे घर माहिं,
पोदन लग्यौ है तब निदिध्यास ठानिए।
धन निकस्यो है जब दरिद्र गयौ है तब,
सुंदर साक्षातकार नृपति बपानिए॥ ३४॥

---

(२८) ज्ञानी को अंग

[ज्ञानी की क्या पहिचान है, वह कैसा होता है, क्या उसकी क्रिया है, कैसी रहन सहन, कैसे विचार, कैसी उसकी धुन होती है, ज्ञानी संसार को कैसे मानता है और उसे कैसे निवाहता है, इसमें रहकर भी कैसे न्यारा हो जाता है, ज्ञानी व अज्ञानी का भेद क्या है, इत्यादि ज्ञानी के संबंध की बाते बडी उत्तमता से वर्णित है। ज्ञान का भक्ति कर्म उपासना से भेद दिखाकर ज्ञान की उत्कृष्टता भी दरसा दी है।]

इंदव छंद

जाकै हृदै माहिं ज्ञान प्रकाशत ताकौ सुभाव रहै नहिं छानौ।
नैन मैं बैन मैं सैन मैं जानिए ऊठत बैठत है अलसानौ॥
ज्यौं कछु भच्छ किए उदगारत कैसेहुँ राषि सकै न अघानौ।
सुंदरदास प्रसिद्ध दिषावत धान कौ षेत पयार[1] तें जानौ॥१॥
बोलत चालत बैठत ऊठत पीवत खातहु सूँघत स्वासै।
ऊपर तौ व्यवहार करै सब भीतर स्वप्न समान सौ भासै॥
लै करि तीर पताल कौं सोंधत मारत है पुनि फेरि अकासै।
सुंदर देह क्रिया सब देषत कोउ न पावत ज्ञानी को आसै[2]॥३॥

१—पराल घास। २—आशय, प्रयोजन।

देषत है पै कछु नहिं देषत बोलत है नहिं बोल बषानै ।
सूंघत है नहि सूंघत घ्राण सुनै सब है न सुनै यह मानै ॥
भक्ष करै अरु नाहिं भषै कछु भेंटत है नहि भेटत प्रानै[1] ।
लेत है देत है देत न लेत है सुंदर ज्ञानी की ज्ञानी ही जानै ॥५॥
देषत ब्रह्म सुनै पुनि ब्रह्महिं बोलत है सोउ ब्रह्महि बानी ।
भूमिहु नीरहु तेजहु वायुहु व्योमहु ब्रह्म जहाँ लगि प्रानी ॥
आदिहु अंतहु मध्यहु ब्रह्महि है सब ब्रह्म इहै मति ठानी ।
सुंदर ज्ञेय रु ज्ञानहु ब्रह्म सु आपहु ब्रह्महि जानत ज्ञानी ॥७॥
आदिहु तौ नहिं अंतर है नहि मध्य शरीर भयौ भ्रमकूपं ।
भासत है कछु औार कौ औारइ ज्यौ रजु मैं अहि सीप सुरूपं ॥
देषि मरीचि[2] उठ्यौ विचि विभ्रम जानत नाहिं उहै रवि धूपं ।
सुंदर ज्ञान प्रकाश भयौ जब एक अखंडित ब्रह्म अनूपं ॥१०॥

मनहर छंद

सबसौं उदास होइ काढि मन भिन्न करै,
ताकौ नाम कहियत परम वैराग है ।
अंतहकरण हू वासना निवरत होंहि,
ताकौ मुनि कहत है उहै बड्यौ त्याग है ॥
चित्त एक ईश्वर सौं नेकहू न न्यारो होइ.
उहै भक्ति कहियत उहै प्रेममार्ग है ।

१—प्राणों तक पहुंचता है अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म बुद्धि हो जाता है। २—मृगतृष्णा का जल जिसको मरुस्थल वा अन्य स्थलों मे मृग देखकर जल ही मान लेता है।

आप ब्रह्म जगत कौ एक करि जानै जब,
सुंदर कहत वह ज्ञान भ्रम भाग[1] है ॥ १४ ॥
कोऊ नृप फूलन की सेज पर सूतौ आइ,
जब लग जाग्यौ तौलौं अतिसुख मान्यो है।
नींद जब आई तब वाही कौ सुपन भयौ,
जाइ परयौ नरक से कुंड मैं यौं जान्यौ है॥
अति दुख पावै परि निकस्यौ न क्यौंहो जाइ,
जागि जब परयौ तब सुपन बषान्यौ है।
इह झूठ वह झूठ जाग्रत स्वप्न दोऊ[2],
सुंदर कहत ज्ञानी सब भ्रम मान्यौ है ॥ १५ ॥
कर्म न विकर्म करै भाव न अभाव धरै,
शुभहू अशुभ परै यातैं निधरक है।
वस तीन[3] शून्य जाकै पापही न पुन्य ताक,
अधिक न न्यून वाके स्वर्ग न नरक है॥
सुख दुख सम दोऊ नीच हो न ऊँच कोऊ,
ऐसी विधि रहे सोऊ मिल्यौ न फरक है।
एक हो न दोइ जानै बंध मोक्ष[4] भ्रम मानै,
सुंदर कहत ज्ञानी ज्ञान मैं गरक[5] है ॥ २० ॥

१—भ्रम भाग जाता है। २—जैसे स्वप्न के पदार्थ जाग्रत में असत्य प्रतीत होते हैं वैसे ज्ञानी के अनुभव में जाग्रत के पदार्थ असत्य भासते हैं। ३—त्रिगुण। ४—ज्ञान का महत्त्व इतना है कि मोक्ष भी भ्रम ही है। ५—मग्न, डूबा हुआ।

कामी है न जती है न सूम है न सखी[1] है न,
राजा है न रंक है न तन है न मन है।
सोवै है न जागै है न पीछे है न आगे है न,
ग्रहै है न त्यागै है न घर है न बन है॥
थिर है न डोलै है न मौन है न बोलै है न,
बंधै है न खोलै है न स्वामी है न जन है।
वैसौ कोऊ होइ जब वाकी गति जानै तब,
सुंदर कहत ज्ञानी सुद्ध ज्ञानघन है[2] ॥ २१ ॥

ज्ञानी लोक संग्रह कौं करत व्यवहार विधि,
अंतहकरण मैं सुपन की सी दौर है।
देत उपदेश नाना भाँति के वचन कहि,
सब कोउ जानत सकल सिरमौर है॥
हलन चलन पुनि देह सौं करावत है,
ज्ञान मैं गरक नित लिए[3] निज ठौर है।
सुंदर कहत जैसैं दंत गजराज मुख,
षाइवे के औरई दिषाइवे को और हैं॥ २२ ॥

एक ज्ञानी कर्मनि मैं ततपर देषियत,
भक्ति कौ प्रभाव नांहिं ज्ञान मैं गरक है।
एक ज्ञानी भक्ति कौ अत्यंत प्रभाव लिए,

१—दातार। २—कामी आदि कहने से यह प्रयोजन है कि निषिद्ध कर्मों को साधन भूमिका में त्याग कर दिया और शुद्ध का आचरण कर कर्मफल का त्याग कर दिया। ३-निज वा परमात्मरूपा को धारण किए हुए।

ज्ञान माहिं निश्चै करि कर्म सौं तरक[1] है ॥
एक ज्ञानी ज्ञान ही में ज्ञान कौ उचार करै,
भक्ति अरु कर्म इनि दुहूँ ते फरक है ।
कर्म भक्ति ज्ञान तीनों वेद में वपानि कहे,
सुंदर वतायौ गुरु ताही में लरक[2] है ॥ २७ ॥

दोइ जने मिलि चौपरि पेलत सारि धरैं पुनि ढारत पासा ।
जीतत है सु खुसी मन मे अति हारत है सु भरै जु उसासा ॥
एक जनौ दुहुँ ओरहि खेलत हारि न जीति करै जु तमासा ।
तैसै अज्ञानी के द्वैत भयौ भ्रम सुंदर ज्ञानी के एक प्रकासा॥३०॥

सवइया छंद

जीव नरेश अविद्या निद्रा सुख सज्या सोयौ करि हेत ।
कर्म्म खवास पुटपरी[3] लाई तातैं वहु विधि भयौ अचेत ॥
भक्ति प्रधान जगायौ कर गहि आलस भरयौ जँभाई लेत ।
सुंदर अव निद्रा वस नाही ज्ञान जागरन सदा सचेत ॥३

---

(३०) निरसंधे को अंग

[सत्य वस्तु का निश्चित ज्ञान हो जाने पर देह का ममत्व और जीवन मरण का मोह, शोक, कुछ नहीं रहता है । देहाभिमान ही जब न रहा तो मृत्यु किसी भी देश किसी काल में हो, थोड़ा जीओ चाहे अधिक जीओ इत्यादि वातों का कुछ अपने अंदर बखेड़ा नहीं रहता ।]

१—त्याग वा अभाव करनेवाला । २—सुंदर को गुरु ने जो विलक्षण ज्ञानशैली वा सैन बताई उस ही में तत्पर है । लरक = सहज सुख साधन । ३—मूठी देना, पाँव दवाना ।

मनहर छंद

भावै[1] देह छूटि जाहु काशी माहिं गंगा तट,
भावै देह छूटि जाहु चेत्र मगहर[2] मैं।
भावै देह छूटि जाहु विप्र के सदन[3] मध्य,
भावै देह छूटि जाहु स्वपच[4] के घर मैं॥
भावै देह छूटौ देश आरज[5] अनारज मैं,
भावै देह छूटि जाहु वन मैं नगर मैं।
सुंदर ज्ञानी क कछु संशै नहिं रह्यौ कोई,
स्वर्ग नरक सब भाजि गयौ भर[6]मैं॥ १॥
भावै देह छूटौ जाहु आज ही पलक माहिं,
भावै देह रहौ चिरकाल जुग अंत जू।
भावै देह छूटि जाहु ग्रीषम पावस रितु,
सरद शिशिर शीत छूटत बसंत जू॥
भावै दच्छनायन हू भावै उत्तरायन[7] हू,
भावै देह सर्प सिंघ बिज्जुली हनंत जू[8]।

१—चाहे, अथवा। २—मगधदेश जिसमें मरने से गति नहीं होती। ३—घर, भवन। ४—चांडाल, भंगी। ५—आर्य्य—आर्य्यावर्त्त पुण्यभूमि। अनारज—जैसे म्लेच्छदेश, यवनदेश अंग कलिंगादि। ६—भ्रम थे सो भाग गए। ७—उत्तरायण सूर्य में मरने से सद्गति होती है; जैसे भीष्मजी की। गीता में भी ऐसा आया है तथा कई पुराणादि में भी। उत्तम ऋतु काल वा मुहूर्त्त की ज्ञानी को कुछ शंका नहीं रहती। ८—अकाल मृत्यु—आधिभौतिक आदि दैविक कुयोगों से।

सुंदर कहत एक आतमा अखंड जानि,
याही भाँति निरसंशै भए सब संत जू ॥ २ ॥

---

(३१) प्रेमपरा ज्ञान ज्ञानी को अंग

[परात्पर ब्रह्म मे निष्ट और परा भक्ति के रसास्वादन से मत्त हुए ज्ञानी से मुख के ब्रह्मानद का उद्गार और "वड" जैसे निकलती है वही इस अंग में है।]

इंदव छंद

ज्ञान दियौ गुरु देव कृपा करि दूरि कियौ भ्रम पोलि किवारौ।
और क्रिया कहि कौन करै अब चित्त लग्यौ परब्रह्म पियारौ ॥
पाव बिना चलि कैं तहि ठाहर पगु भयौ मन मित्त हमारौ।
सुंदर कोउ न जानि सकै यह गोकुल गाँव कौ पैंड़ौहि न्यारौ[1]॥२॥
एक अखंडित ज्यों नभ व्यापक बाहिर भीतर है इकसारौ।
दृष्टि न मुष्टि[2] न रूप न रेष न सेत न पीत न रक्त न कारौ ॥
चक्रित होइ रहै अनुभौ बिन जौं लग नाहिंन ज्ञान उजारौ।
सुंदर कोउ न जानि सकै यह गोकुल गाँव कौ पैंड़ौ हि न्यारौ॥३॥
लच्च अलच्च अदच्च न दच्च[3] न पच्च अपच्च न तूल न भारौ।
झूठ न साँच अवाच न वाच न कंचन काँच न दीन उदारौ ॥

१—यह कहावत प्रसिद्ध है। ब्रह्म-प्राप्ति का मार्ग न्यारा है अर्थात् साधारण धर्म मर्यादा से भिन्न है, वह रहस्य ही निराला है जिसको पराभक्ति और परम ज्ञान के पहुँचे हुए महात्मा ही जानते हैं। २—स्थूल सूक्ष्म। ३—पूर्ण वा सर्वशक्तिमान्।

जान अजान न मान अमान न शान गुमान न जीत न हारौ।
सुंदर कोउ न जानि सकै यह गोकुल गाँव कौ पैंडोहि न्यारौ ॥५॥

---

(३२) अद्वैत ज्ञान को अंग

इंदव छंद

उत्तम मध्यम और शुभाशुभ भेद अभेद जहाँ लग जोहै।
दीसत भिन्न तवो अरु दर्पन वस्तु विचारत एक हि लोहै[1] ॥
जो सुनिए अरु दिष्टि परै पुनि वा बिन और कहो अब को है।
सुंदर सुंदर व्यापि रह्यौ सब सुंदर ही महिं सुंदर सोहै ॥३॥
ज्यौं बन एक अनेक भए द्रुम नाम अनंतनि जातिहु न्यारी।
वापि तडागरु कूप नदो सब है जल एक सुदेषौ निहारी ॥
पावक एक प्रकाश बहू विधि दोप चिराग मसालहु वारी।
सुंदर ब्रह्म विलास अखंडित खंडित भेद की बुद्धि सुटारी ॥ ४ ॥

मनहर छंद

तोही मैं जगत यह तूँही है जगत माहिं,
तो मैं अरु जगत मैं भिन्नता कहाँ रही।
भूमि ही तें भाजन अनेक भाँति नाम रूप,
भाजन विचारि देषैं उहै एक है मही ॥
जल मैं तरंग भई फैन बुद्‌बुदा अनेक,
सोऊ तौ विचारें एक बहै जल है सही।

१-लहा।

महा पुरुष जेते हैं सबको सिद्धांत एक,
सुंदर खल्विद ब्रह्म[1] अंत वेद है कहो ॥ १४ ॥
ब्रह्म मैं जगत यह ऐसी विधि देपियत,
जैसी विधि देपियत फूलरी महीर[2] मैं ।
जैसी विधि गिलम[3] दुलीचे[4] मैं अनेक भाँति,
जैसी विधि देपियत चूँनरीऊ चीर मैं ॥
जैसी विधि काँगरे ऊ कोट पर देषियत,
जैसी विधि देपियत बुदबुदा नीर मैं ।
सुंदर कहत लीक हाथ पर देपियत,
जैसी बिधि देपियत शीतला शरीर मैं ॥ १८ ॥
ब्रह्म अरु माया जैसै शिव अरु शक्ति पुनि,
पुरुष प्रकृति दोऊ करि कैं सुनाए हैं ।
पति अरु पतनी ईश्वर अरु ईश्वरी ऊ,
नारायण लक्ष्मी द्वै वचन कहाए हैं ॥
जैसै कोऊ अर्द्धनारी नाटेस्वर[5] रूप धरै,
एक बीज ही तें दोइ डालि नाम पाए हैं ।

१—"सर्वं खल्विद ब्रह्म"—यह सब (जगत्) निश्चय ही ब्रह्म है ।
२—महीर = महीरुह, वृक्ष । फूलरी = फूल अथवा महीर = महियर वा मही, मट्ठा, छाछ । फूलरी = छाछ के फूल, घृत मिला मट्ठा जो ऊपर आता है । ३—एक प्रकार का बढ़िया मखमल जैसा कपड़ा जो बादशाह अमीरों के काम में आता था । ४—गलीचा । ५—महादेव जी का एक ऐसा स्वरूप जिसमें वामांग तो उसी में पार्वती और दक्षिणांग उसी में शिव रूप ।

तैसे ही सुंदर वस्तु ज्यौंहै त्यौं ही एक रस,
उभय प्रकार होइ आप ही दिषाए हैं ॥ १९ ॥

इंदव छंद

आदि हुतौ सोइ अंत रहै पुनि मध्य कहा कछु और कहावै ।
कारण कारय नाम धरे जुग कारय कारण माहि समावै ॥
कारय देषि भयौ विचि विभ्रम कारण देषि विभ्रम्म विलावै ।
सुंदर या निहचै अभिअंतर द्वैत गए फिरि द्वैत न आवै ॥२२॥

मनहर छंद

द्वैत करि देषै जब द्वैत ही दिषाई देत,
एक करि देषै तब उहै एक अंग है ।
सूरज को देषै जब सूरज प्रकाश रह्यो,
किरण कौ देषै तौ किरण नाना रंग है ॥
भ्रम जब भयौ तब माया ऐसो नाम धर्यौ,
भ्रम कै गए ते एक ब्रह्म सरवंग हैं ।
सुंदर कहत याकी दृष्टि ही कौ फेर भयौ,
ब्रह्म अरु माया कै तौ माथै नहिं श्रृंग है[1] ॥ २३ ॥

---

(३३) जगन्मिथ्या को अंग

मनहर छंद

ऐसोई अज्ञान कोऊ आइ कै प्रगट भयौ,

१—अर्थात् कोई विशेष चिह्न ऐसा नहीं है कि सहज ही में पहिचान मे आ जाय, जैसे पशु सींग से । 'श्रृंग' शब्द यहाँ 'अंग' ऐसा उच्चारण होगा, अनुप्रास के लिये ।

दिव्य दृष्टि दूर गई देष चर्मदृष्टि[1] कौं।
जैसे एक आरसी सदाई हाथ मांहि रहै,
सामैं[2] ही न देषै फेरि फेरि देषै पृष्ठि कौं॥
जैसे एक व्योम पुनि बादर सौं छाइ रह्यौ,
व्योम नहिं देखत देखत बहु वृष्टि कौं।
तैसे एक ब्रह्म विराजमान सुंदर है,
ब्रह्म कौ न देषै कोऊ देषै सब सृष्टि कौं॥ ३॥

मृतिका समाइ रही भाजन के रूप मांहि,
मृतिका कौ नाम मिटि भाजनई गह्यौ है।
कनक समाइ त्यौं ही होइ रह्यौ आभूषन,
कनक न कहै कोऊ आभूषन कह्यौ है॥
बीजऊ समाइ करि वृच्छ होइ रह्यौ पुनि,
वृच्छ ही कौं देषियत बीज नहिं लह्यौ है।
सुंदर कहत यह यों ही करि जानै सब,
ब्रह्मई जगत होइ ब्रह्म दुरि[3] रह्यौ है॥ ४॥

कहत है देह मांहिं जीव आइ मिलि रह्यौ,
कहाँ देह कहाँ जीव[4] बृथा चौंकि पर्यौ है।
बूडवे के डर तें तिरन कौ उपाइ करै,
ऐसे नहिं जानै यह मृगजल भर्यो है॥

१–चर्मदृष्टि, स्थूल इंद्रिया। २–सामने, दर्पण का वह अंग जिसमें मुँह दिखाई देवै। ३–छिपा, अप्रगट। ४–यह द्वैतवादी न्यायवालों पर कटाक्ष है जो जीव को नाना और निरवयव परमाणुवत् मानते हैं।

जेवरे कौं साँपु जैसै सीप विषै रूपौ जानि,
और कौ औरइ देषि यौंही भ्रम कर्यौ है।
सुंदर कहत यह एकई अखंड ब्रह्म,
ताही कौ पलिटि कैं जगत नाम धर्यो है[1] ॥ ५ ॥

---

(३४) आश्चर्य्य को अंग

[परमात्म तत्व की दुर्लभता अनिर्वचनीयता आदि का कथन ।]

मनहर छंद

वेद कौ विचार सोई सुनि कैं स्रवनि मुख,
आपु हू विचार करि सोई धारियतु है।
योग की युगति जानि जग तें उदास होइ,
शून्य मैं समाधि लाइ मन मारियतु है॥
ऐसैं ऐसैं करत करत केते दिन बीते,
सुंदर कहत अजहूँ विचारियतु है।
कारौ ही न पीरौ न तौ तातौ ही न सीरौ कछु,
हाथ न परत तातैं हाथ झारियतु है॥ १ ॥
भूमि ही न आप न तौ तेज ही न ताप न तौ,
वायु हू न व्योम न तौ पंच कौ पसारौ है।

१—इस सवैये और ऊपर कई स्थलों में जहाँ सृष्टि को ब्रह्म से बना वा ब्रह्म ही बताया है वहाँ ब्रह्म जगत् का उपादान और निमित्त कारण दोनों साथ ही समझना। यह विषय उपनिषदादि मे भी प्रतिपादित है। शंकर स्वामी का विवर्त्तवाद इससे कुछ भिन्न है परंतु व्यास सूत्रों की समझ इसी प्रकार भासती है।

हाथ ही न पाव न तो नैन वैन भाव न तो,
रंक ही न राव न तो वृद्ध ही न वारौ[1] है ॥
पिंड हो न प्रान न तौ जान न अजान न तौ,
बंध निरवान न तौ हरकौ न भारौ है।
द्वैत न अद्वैत न तौ भीत न अभीत तातैं,
सुंदर कह्यौ न जाइ मिल्यौ ही न न्यारौ है ॥ ५ ॥

इदव छंद

तत्व अतत्व कह्यौ नहिं जात जु शून्य अशून्य उरै न परै है।
ज्योति अज्योति न जानि सकै कोउ आदि न अंत जिवै न मरै है॥
रूप अरूप कछू नहि दीसत भेद अभेद करै न हरै है।
शुद्ध अशुद्ध कहै पुनि कौन जु सुंदर बोल न मौन धरै है ॥ ७ ॥
पिंड मैं है परिपिंड लिपै नहिं पिंड परै[2] पुनि त्यौंहि रहावै।
श्रोत्र मैं है परिश्रोत्र सुनै नहिं दृष्टि मैं है परि दृष्टि न आवै॥
बुद्धि मैं है परि बुद्धि न जानत चित्त मैं है परि चित्त न पावै।
शब्द मैं है परि शब्द थक्यौ कहि शब्द हू सुंदर दूरि बतावै ॥९॥
एक हि ब्रह्म रह्यौ भरपूर तौ दूसर कौन बताव निहारौ।
जौ कोउ जीव करै जु प्रमान तौ जीव कहा कछु ब्रह्म तें न्यारौ॥
जौ कहै जीव भयौ जगदोस तें तौ रवि माहि कहाँ कौ अँधारौ[3]।
सुंदर मौन गही यह जानि कैं कौनहुँ भाँति न होत निधारौ[4] ॥११॥

१—बालक। २—गिरै, नाशै। शरीर के नाश से आत्मा का कुछ भी बिगाड़ नहीं। ३—जब जीव ब्रह्म से वा ब्रह्म ही है तो जीव में अल्पज्ञता, प्रतिबद्धता, अज्ञानता आदि न होनी चाहिए थी। ४—निर्धार का तुक वा गणमान के कारण रूपातर है।

वेद थके कहि तंत्र थके कहि ग्रंथ थके निश वासर गातैं[1] ।
सेस थके शिव इंद्र थके पुनि षोज कियौ वहु भाँति विधातैं ॥
पीर थके अरु मीर थके पुनि धीर थके बहु बोलि गिरा तैं ।
सुंदर मौन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख वातैं ॥१४॥
योगी थके कहि जैन थके ऋषि तापस थाकि रहे फल षातैं ।
न्यासी थके बनवासी थके जु उदासी थके बहु फेर फिरातैं ॥
शेष मसाइक[2] औार उलाइक[3] थाकि रहे मन मैं मुसकातैं ।
सुंदर मौन गहो सिध साधक कौन कहै उसकी मुख वातैं ॥१५॥



१—विधाता (ब्रह्मा) ने। २—मशाइख—शेख (धर्माचार्य्य) मुसल्मान धर्म का होता है, उसका बहुवचन। ३—औलिया = महात्मा। स्यात् यह शब्द मलाइक (फरिश्ते वा देवता) को बिगाड़कर लिखा है अथवा उ = और + लाइक (लायक) योग्य, इनसे बना है।

(४) साखी

[दादूजी की रचना वा वचन के 'साखी' और 'शब्द' दो भाग हैं। इसी प्रकार उनके ५२ शिष्यो ने भी प्राय साखी और शब्द बनाए हैं, और साधारणत: महात्माओ में ऐसी ही चाल है। सुंदरदासजी की साखी १३११ संख्या में और ३१ अगों में विभक्त है। इस साखीसंग्रह में बडे बडे उत्तम दोहे है। इनमें बहुत से तो नवीन विचार हैं जो इनके अन्य ग्रंथों से पृथक् ही प्रतीत होते हैं, परंतु शेष में तो इनके ग्रंथों में जैसे विचार है तदनुसार ही है। बबई के 'तत्त्वविवेचक' आदि प्रेसो ने १०६ साखी को "ज्ञानविलास" नाम से छापा है। मिलान से ये सब मूल ग्रंथ से किसी ने छाँटी हों ऐसा प्रतीत होता है परंतु छाँट कुछ उत्तम नहीं हुई है। इसी लिये हमको भिन्न छाँट करनी पडती है। परंतु स्थानाभाव से साखियो की अधिक संख्या हम नहीं ला सके, कई उत्तम उत्तम साखियाँ रह गईं। परंतु हमने उन्हें सब अगों से ले लिया है। 'तत्त्वविवेचक' प्रेस आदि वालों ने केवल २० ही अंगों से साखिया ली हैं। 'सवैया' (सुंदर विलास) के ३४ अगों में से २३ अंगों के नाम तो 'साखी' के अंगों के नामों से मिलते हैं। कहीं कहीं विचारों की समानता भी है, शेष में भिन्नता है। परंतु अन्य इनके ग्रंथों में साखी के कहे विचार आ गए हैं। यह पढ़नेवाले स्वयं विचारें।]

---

(१) गुरु देव को अंग

दोहा छंद

दादू सद्गुरु वंदिए, सो मेरे सिरमौर।
सुंदर बहिया जाय था, पकरि लगाया ठौर ॥ १ ॥

सुंदर सद्गुरु सारिषा[1], कोऊ नहीं उदार।
ज्ञान षजीना षोलिया, सदा अटूट भँडार ॥ २८ ॥

परमातम सों आतमा, जुदे रहे बहु काल।
सुंदर मेला करि दिया, सद्गुरु मिले दलाल ॥ ४६ ॥

सुंदर समझे एक है, अनसमझे को द्वीत[2]।
उभै रहित सद्गुरु कहै, सोहै वचनातीत ॥ ५६ ॥

सुंदर सद्गुरु हैं सही, सुंदर शिक्षा दीन्ह।
सुंदर वचन सुनाइकै, सुंदर सुंदर कीन्ह ॥१०२॥ (५)

---

(२) सुमरण को अंग

हृदये में हरि सुमिरिए, अंतरजामी राइ।
सुंदर नीके जत्न सौं, अपनौं वित्त छिपाइ[3] ॥ ४ ॥

लीन भया विचरत फिरै, छीन भया गुन देह।
दीन भई सब कलपना, सुंदर सुमिरन एह ॥ २५ ॥

प्रीतिसहित जे हरि भजै, तब हरि होहि प्रसन्न।
सुंदर स्वाद न प्रीति विन, भूष विना ज्यौं अन्न ॥ ३८ ॥

१—समान। २—द्वैत। ३—अपने इष्ट को गोप्य रखने से अंतरात्मा की सिद्धि शीघ्र होती है, जैसे कृपण अपने प्यारे धन को छिपा रखता है।

एक भजन तन सो करे, एक भजन मन होय ।
सुंदर तन मन कै परे, भजन अखंडित सोय ॥ ४२ ॥
जाही कौ सुमिरन करै, ह्वै ताही कौ रूप ।
सुमिरन कीए ब्रह्म के, सुंदर ह्वै चिद्रूप[1] ॥ ५६ ॥ (१०)

---

(३) विरह को अंग

मारग जोवै विरहिनी, चितवे पिय की ओर ।
सुंदर जियरै जक नहीं, कल न परत निशि भोर ॥ १ ॥
सुंदर विरहिनी अधजरी, दुःख कहै मुख रोइ ।
जरि बरि कै भस्मी भई, धुवाँ न निकसै कोइ ॥ १८ ॥
लालन मेरा लाडिला, रूप बहुत तुझ माँहि ।
सुंदर राषै नैन मैं, पलक उघारै नाँहि ॥ ४८ ॥ (१३)

---

(४) बंदगी को अंग

जिस बंदे का पाक दिल, सो बंदा माकूल ।
सुंदर उसकी बंदगी, साँई करै कबूल ॥ ३ ॥
उलटि[2] करै जो बंदगी, हरदम अरु हर रोज ।
तै। दिल ही मैं पाइए, सुंदर उसका षोज ॥ ७ ॥
मुख सेती बंदा कहै, दिल मैं अति गुमराह ।
सुंदर सो पावे नहीं, साँई की दरगाह ॥२०॥ (१६)

१—चित् जो ब्रह्म ही, उसका रूप अर्थात् तदाकार । २—हृदय के अंदर ही वृत्ति लगावे जाहिरदारी न करै ।

(५) पतिव्रत का अंग

पतिव्रत[1] ही में योग है, पतिव्रत ही में याग ।
सुंदर पतिव्रत राम सै, वहै त्याग बैराग ॥८॥
जाचिक कौं जाचै कहा, सरै न कोई काम ।
सुंदर जाचै एक कौं, अलष निरंजन राम ॥२७॥
सुंदर पतिव्रत राम सौं, सदा रहै इकतार ।
सुख देवै तो अति सुखी, दुख तो सुखी अपार ॥३६॥
रजा राम की सीस पर, आज्ञा मेटै नाहिं ।
ज्यौं राषै त्यौंही रहै, सुंदर पतिव्रत माहिं ॥३७॥
ज्यौं प्रभु कौं प्यारौ लगै, सोही प्यारो मोइ ।
सुंदर ऐसै समुझि करि, यौं पतिव्रता होइ ॥४८॥(२१)

---

(६) उपदेश चितावनी का अंग

सुंदर मनुषा देह की, महिमा कहिए काहि ।
जाकौं छै देवता, तूं क्यौं षोवै ताहि ॥ २ ॥
सुंदर पंछी विरछ पर, लियो बसेरा आनि ।
राति रहे दिन उठि गए, त्यौं कुटंब सब जानि ॥२५॥
सुंदर यह औसर भलो, भज ले सिरजनहार ।
जैसैं ताते लोह कौं, लेत मिलाइ लुहार ॥३२॥
सुंदर योंही देषते, औसर बीत्यौ जाइ ।
अँजुरी मांही नीर ज्यौं, किती वार ठहराइ ॥३४॥

१–अनन्यता ।

दीया की वतियाँ कहै, दीया किया न जाइ ।
दीया करै सनेह करि, दीए ज्योति दिषाइ[1] ॥५१॥(२६)

---

(७) काल चितावनी को अंग

काल ग्रसत है बावरे, चेतत क्यों न अजान ।
सुंदर काया कोट में, होय रह्यो सुलतान ॥१॥
सुंदर काल महाबली, मारे मोटे मीर ।
तूं कोनै की गनति में, चेतत काहे न वीर ॥२॥
एक रहै करता पुरुष, महा काल को काल ।
सुंदर वहु विनसै नहीं, जाकौ यह सब ख्याल ॥३६॥
जो जो मन में कलपना, सो सो कहिए काल ।
सुंदर तूं निःकल्प हो, छाँड़ि कल्पना जाल ॥४६॥
काल ग्रसै आकार कौं, जामैं सकल उपाधि ।
निराकार निर्लेप है, सुंदर तहाँ न व्याधि ॥४७॥(३१)

१—इसमें "दीया" शब्द का श्लेष है तथा बतियाँ आदि का भी । दीया = (१) दीवा, दीप (२) दिया, देना, दान, बतियाँ = (१) बाती, (२) वार्त्ता, सनेह = (१) तेल (२) स्नेह, प्रेम । अर्थ—देने की बातें तो करता है परंतु दिया जाता नहीं । यदि प्रेम से दान दिया करे तो पुण्य बढ़ने से आत्मा निर्मल होकर प्रकाश वा तेजस्विता बढ़े अथवा (२) ज्योति स्वरूप प्रत्यक्ष न हो तो न हो उसका कीर्त्तन करता रहै । ज्ञान का तेल और जीभ की बाती कर उसे जलावे तो हृदय में प्रकाश हो जाय ।

(८) नारी पुरुष श्लेष[1] को अंग

नारी पुरुष सनेह अति, देखे जीवै सोइ।
सुंदर नारी बीछुरे, आपु मृतक तब होइ ॥१॥
नारी जाके हाथ में, सोई जीवत जानि।
नारी कै संग वहि गयौ, सुंदर मृतक बषानि ॥१३॥(३३)

---

(९) देहात्म विछोह को अंग

श्रवण नैन मुख नासिका, ज्यौं के त्यौं सब द्वार।
सुंदर सो नहिं देषिए, अचल चलावन हार ॥८॥
सुंदर देह हलै चलै, चेतन कै संजोग।
चेतनि सत्ता चलि गई, कौन करै रस भोग ॥१३॥
सुंदर आया कौन दिसि, गया कौन सी ओर।
या किन हू जान्यौ नहीं, भयो जगत में सोर ॥२५॥(३६)

---

(१०) तृष्णा को अंग

पल पल छीजै देह यह, घटत घटत घट जाय।
सुंदर तृष्णा ना घटै, दिन दिन नौतन[2] थाय[3] ॥१॥
तृष्णा कै वसि होइ कै, डोलै घर घर द्वार।
सुंदर आदर मान विन, होत फिरै नर ष्वार[4] ॥१३॥(३८)

१—नारी का दो अर्थों में प्रयोग है (१) स्त्री, (२) नाडी, हाथ की।
२—नया रूप अथवा नूतन। ३—(गुजराती में) होय। ४—(फारसी) खराब, दुर्दशाग्रस्त।

(११) अधीर्य उराहने को अंग

देह रच्यौ प्रभु भजन कौं, सुंदर नष सिष साज ।
एक हमारी बात सुन, पेट दियौ किहि काज ॥१॥
विद्याधर पंडित गुनी, दाता शूर सुभट्ट ।
सुंदर प्रभुजी पेट इनि, सकल किये पटपट्ट[1] ॥१६॥

(१२) विश्वास को अंग

चंच सँवारी जिनि प्रभू, चून देयगो आनि ।
सुंदर तूं विश्वास गहि, छाँड आपनी बानि ॥८॥
सुंदर जाकौं जो रच्यौ, सोई पहुँचै आइ ।
कीरी कौं कन देत है, हाथी मन भरि षाइ ॥२३॥(४२)

(१३) देह मलिनता गर्व प्रहार को अंग

सुंदर देह मलीन है, राख्यौ रूप सँवार ।
ऊपर तैं कलई करी, भीतरि भरी भँगार ॥
सुंदर मलिन शरीर यह, ताहू में बहु व्याधि ।
कबहूँ सुख पावै नहीं, आठौ पहरि उपाधि ॥१८॥

(१४) दुष्ट को अंग

सुंदर दुष्ट सुभाव है, औगुन देषै आइ ।
जैसे कीरी महल में, छिद्र ताकती जा ॥३॥

१–'खटपट' का अर्थ बखेड़ा वा लड़ाई का है, परंतु यहाँ बिगाड़ के अर्थ में है ।

सुंदर कबहुँ न धीजिए, सरस दुष्ट की बात।
मुख ऊपर मीठी कहै, मन मैं घालै[1] घात ॥६॥
दुर्जन संग न कीजिए, सहिए दु.ख अनेक।
सुंदर सब संसार में, दुष्ट समान न एक ॥१६॥
सुंदर दुख सब तौलिए, घालि तराजू माहिं।
जो दुख दुरजन संग तें, ता सम कोई नाहिं ॥२२॥
ज्यौं कोउ मरै बान भरि, सुंदर कछु दुख नाहिं।
दुरजन मारै बचन सौं, सालतु है उर माहि ॥२५॥(४६)

---

(१५) मन को अंग

मन कौं राषत हटकि करि, सटकि चहूँ दिशि जाइ।
सुंदर लटकि[2] रु लालची, गटकि विषै फल षाइ ॥१॥
झटकि तार कौं तोरि दे, भटकत साँझ रु भोर।
पटकि सीस सुंदर कहै, फटकि[3] जाइ ज्यौं चोर ॥२॥
सुंदर यह मन चपल अति, ज्यौं पीपर कौ पान।
बार बार चलिबो करै, हाथी को सौ कान ॥३१॥
मन बसि करने कहत हैं, मन कै वसि ह्वै जाहि।
सुंदर उलटा पेच है, समझ नहीं घट माहि ॥३४॥
तन कौ साधन होत है, मन कौ साधन नाहिं।
सुंदर बाहर सब करै, मन साधन मन माहिं ॥४०॥

१–रखै, घरै, डालै। २–निर्लज्ज, बेहया। ३–भाग जाय।

मन ही यह विस्तर[1] रह्यौ, मन ही रूप कुरूप ।
सुंदर यह मन जीव है, मन ही ब्रह्म स्वरूप ॥४६॥
सुंदर मन मन सब कहैं, मन जान्यौ नहि जाइ ।
जौ या मन कौ जानिए, तौ मन मनहि समाइ ॥४७॥
मन कौ साधन एक है, निशि दिन ब्रह्म विचार ।
सुंदर ब्रह्म विचार तें, ब्रह्म होत नहिं वार ॥४८॥
सुंदर निकसै कौन बिधि, होय रह्यो लैलीन[2] ।
परमानंद समुद्र में, मग्न भया मन मीन ॥५५॥(५८)

---

(१६) चाणक को अंग

छूट्यौ चाहत जगत सौं, महा अज्ञ मतिमंद ।
जोई करै उपाय कछु, सुंदर सोई फंद ॥ १ ॥
कूकस[3] कूटै कन बिना, हाथ चढै कछु नाहिं ।
सुंदर ज्ञान हृदै नहीं, फिरि फिरि गोते षाहिं ॥ ८ ॥
बैठौ आसन मारि करि, पकरि रह्यौ मुख मौन ।
सुंदर सैन बतावते, सिद्ध भयौ कहि कौन ॥ ९ ॥(६१)

---

(१७) वचन विवेक को अंग

सुंदर तब ही बोलिए, समुझि हिये मैं पैठि ।
कहिए बात विवेक की, नहितर चुप ह्वै बैठि ॥ १ ॥

१–विस्तृत, फैला हुआ । २–लयलीन, मग्न, गर्क । ३–थोथा अन्न, अन्नहीन कूँखी वा बाल बाजरे आदि की ।

सुंदर मौन गहे रहै, जानि सकै नहिं कोइ।
विन बोलै गुरवा कहै, वोलै हरवा होइ॥ २॥
सुंदर सुवचन तक्र तें, राषै दूध जमाइ।
कुवचन कांजी परत ही, तुरत फाटि करि जाइ॥१२॥
जा वाणी में पाइए, भक्ति ज्ञान वैराग।
सुंदर ताकौं आदरै, और सकल को त्याग॥२३॥(६५)

---

(१८) सूरातन को अंग

घर मैं सब कोइ वंकुडा[1], मारै गाल[2] अनेक।
सुंदर रण में ठाहरै, सूरवीर कौ एक[3]॥ ५॥
सुंदर सील सनाह[4] करि, तोष[5] दियो सिर टोप।
ज्ञान षड्ग पुनि हाथ लै, कीयौ मन परिकोप॥२२॥
मारै सब संग्राम करि, पिशुन[6] हुते घट माहिं।
सुंदर कोऊ सूरमा, साधु बराबर नाहिं॥२४॥(६८)

---

(१९) साधु को अंग

संत समागम कीजिए, तजिए और उपाइ।
सुंदर बहुते उद्धरे, सत संगति में आइ॥ १॥
सुंदर या सत्संग में, भेदाभेद न कोइ।
जोई वैठे नाव मैं, सो पारंगत होइ॥ २॥

१—बाँका, बलवंक, शूर वीर। २—गाल मारना, बकना, डींग मारना। ३—कोई एक, बहुत थोड़े। ४—कवच, बख्तर। ५—संतोष। ६—शत्रु, दुष्ट।

जन सुंदर सत्संग मैं, नीचहु होत उतग[1] ।
परै क्षुद्रजल गंग मैं, उहै होत पुनि गंग ॥ ५ ॥
संत मुक्ति के पोरिया, तिन सो करिए प्यार ।
कूंजी उनके हाथ है, सुंदर पोलहि द्वार ॥१०॥
सुंदर आए संतजन, मुक्त करन कौं जीव ।
सब अज्ञान मिटाइ करि, करत जीव तें शीव[2] ॥१७॥
सुंदर हरिजन एक हैं, भिन्न भाव कछु नाहिं ।
संतनि माहे हरि बसै, संत बसैं हरि मांहि ॥४८॥(७४)

---

(२०) विपर्यय को अंग

कीडी कुजर कौं गिल्यौ, स्याल सिंह कौं षाय ।
सुंदर जल तें माछली, दौरि अग्नि मैं जाय[3] ॥ ४ ॥
कमल मांहिं पाणी भयौ, पाणी मांहे भान ।
भान माहिं शशि मिलि गयौ, सुदर उलटौ ज्ञान[4] ॥६॥(७६)

१—ऊँचा । २—शिव, ब्रह्म । ३—देखो सवैया अग विपर्यय छंद । ४—पर फुटनोट सं० (२) । यह दोहा विपर्य्यय अग के सातवे अग के अनुसार है । इसका तात्पर्य यह है—कमल = हृदय । पाणी = परा-भक्ति । भानु = ज्ञानरूपी सूर्य्य । शशि = चंद्रमा, शाति या ब्रह्मानं की शीतलता । मिलि गयो = प्राप्त हुआ । उलटौ = विपर्यय, देख में विरुद्ध सा प्रतीत हो । अपने अंतःकरण में परमात्मा की भक्ति होने से प्रेम के प्रभाव से ज्ञान उत्पन्न होकर शाति सुख प्राप्त हुआ ।

(२१) समर्थाई आश्चर्य को अंग

सुंदर समरथ राम कौं, करत न लागै वार।
पर्वत सौं राई करै, राई करै पहार ॥६॥
जड़ चेतन संयोग करि, अद्‌भुत कीयौ ठाट[1]।
सुंदर समरथ रामजी, भिन्न भिन्न करि घाट[2] ॥१४॥
पलक माहिं परगट करै, पल मैं धरै उठाइ।
सुंदर तेरे ख्याल की, क्यों करि जानी जाइ ॥३६॥
वाजीगर वाजी रची, ताको आदि न अंत।
भिन्न भिन्न सब देखिए, सुंदर रूप अनंत ॥५०॥
किन हुँ अंत न पाइयौ, अब पावै कहि कौन।
सुंदर आगे होहिंगे, थाकि रहे करि गौन ॥५६॥
लौन पूतरी उदधि मैं, थाह लैन कौं जाइ।
सुंदर थाह न पाइए, विचि ही गई बिलाइ ॥६०॥(८२)

---

(२२) अपने भाव को अंग

सुंदर अपनो भाव है, जे कछु दीसै आन।
बुद्धि योग विभ्रम भयो, दोऊ ज्ञान अज्ञान ॥ १ ॥
काहू सौं अति निकट है, काहू सौं अति दूर।
सुंदर अपनो भाव है, जहाँ तहाँ भरपूर ॥२५॥(८४)

१—सृष्टि की रचना। २—प्रकार, बनावट।

(२३) स्वरूप विस्मरण को अंग

सुंदर भूलौ आपकौं, पोई अपनी ठौर ।
देह मांहि मिलि देह सों, भयौ और का और ॥ १ ॥
जा घट की उनहारि[1] है, जैसो दीसत आहि ।
सुंदर भूलौ आपही, सो अब कहिए काहि ॥ २ ॥
सुंदर जड़ के संग ते, भूलि गयौ निज रूप ।
देपहु कैसो भ्रम भयौ, बूडि रह्यौ भव कूप ॥११॥
ज्यौं मनि कोऊ कंठ थौं, भ्रम तें पावै नाहिं ।
पूछत डोलै और कौं, सुंदर आपुहि माहिँ ॥२६॥
रवि रवि कौ ढूँढत फिरै, चंदहि ढूंढै चंद ।
सुंदर हूवौ जीव सो, आप इहै गोविंद ॥५०॥(८६)

---

(२४) सांख्य ज्ञान को अंग

पंच तत्व कौ देह जड़, सब गुन मिलि चौवीस ।
सुदर चेतन आतमा, ताहि मिलैं पच्चीस ॥ ३ ॥
छब्बीसों सु ब्रह्म है, सुंदर साची भूत[2] ।
यों परमातम आतमा, यथा बाप ते पूत ॥ ४ ॥
छुधा तृषा गुन प्रान कौ, शोक मोह मन होय ।
सुंदर साचो आतमा, जानै विरला कोय ॥ ८ ॥
जाकी सत्ता पाय करि, सब गुन ह्वै चैतन्य ।

१—सादृश्य, नकल । २—देखो सवैया सांख्य को अग छ्द १ और फुटनोट ।

सुंदर सोई आतमा, तुम जनि जानहु अन्य ॥ ९ ॥
सूक्ष्म देह स्थूल कौ, मिल्यौ करम संयोग।
सुंदर न्यारौ आतमा, सुख दुख इनको भोग ॥३९॥
जाग्रत स्वप्न सुषोपती, तीनि अवस्था गौन।
सुंदर तुरिय[1] चढ्यौ जबै, षरी[2] चढै तब कौन ॥६१॥(९५)

---

(२५) अवस्था को अंग

तीनि अवस्था मांहि है, सुंदर साक्षी भूत।
सदा एकरस आतमा, व्यापक है अनस्यूत[3] ॥ ४ ॥
तीनि अवस्था तें जुदो, आतम व्योम समान।
भींति चित्र पुनि घोंट तम, लिप्त नहीं यौं जान[4] ॥ ७ ॥
बाजीगर परदा किया, सुंदर बैठा मांहि।
षेल दिषावे प्रगट करि, आप दिषावै नांहि ॥११॥
है अज्ञान अनादि को, जीव पर्यौ भ्रम कूप।
श्रवण मनन निदिध्यास तें, सुंदर ह्वै चिद्रूप ॥४६॥ (९९)

१—तुरिय = चतुर्थ अवस्था साक्षात्कारता की। २—खरी = गधी। वहाँ श्लेष से तुरिय का अर्थ घोड़ी लेना। ३—खूब मिला हुआ। ४—जाग्रत अवस्था भीत के ऊपर चित्र के समान है। स्वप्न अवस्था ढँके हुए या लिपटे हुए चित्र के समान है। सुषुप्ति (गाढ़ निद्रा) अँधेरे के अंदर रखे चित्र के समान है। परंतु आत्मा तीनों अवस्थाओं से भिन्न है।

(२६) विचार को अंग

सुंदर या साधन बिना, दूजौ नहीं उपाइ ।
निशि दिन ब्रह्म विचार तें, जीव ब्रह्म ह्वै जाइ ॥ २ ॥
जैसे जल मांहि कमल है, जल तें न्यारौ सोइ ।
सुंदर ब्रह्म विचार करि, सब तें न्यारौ होइ ॥ ६ ॥
कीयौ ब्रह्म विचार जिनि, तिनि सब साधन कीन ।
सुंदर राजा के रहै, प्रजा सकल आधीन ॥१४॥
करत विचार विचारिया, एकै ब्रह्म विचार ।
सुंदर सकल विचार मैं, यह विचार निज सार ॥४६॥
ब्रह्म विचारत ब्रह्म ह्वै, और विचारत और ।
सुंदर जा मारग चलै, पहुँचै ताही ठौर ॥५०॥
याही एक विचार तें, आतम अनुभव होइ ।
सुंदर समुझै आपकौ, संशय रहै न कोइ ॥४७॥(१०५)

---

(२७) अक्षर विचार को अंग

उहै ऐन उहै गैन है, नुकता ही को फेर ।
सुंदर नुकता भ्रम लग्यौ, ज्ञान सुपेदा हेर[1] ॥ १ ॥

१—सूफियों में 'ऐन और गैन' का एक मसला है । 'ऐन' कहने से निर्गुण ब्रह्म । उस पर नुकता बिंदु धरने से गैन बनता है । गैन साकार ब्रह्म । नुकता गुण वा प्रकृति । ज्ञान का सुपेदा—उजाला । सुपेदा फस्त का सफेद काजल होता है । हरताल का काम अक्षर शोधन में होता है ।

ज्यौं अकार[1] अच्छरनि मैं, त्यौं आतम सब माहिं।
सुंदर एकै देषिए, भिन्न भाव कछु नाहिं ॥८॥(१०७)

---

(२८) आत्मानुभव को अंग

मुख तें कह्यौ न जात है, अनुभव को आनंद।
सुंदर समुझै आपको, जहाँ न कोई द्वंद ॥ १ ॥
सदा रहै आनंद में, सुंदर ब्रह्म समाइ।
गूंगा गुड़ कैसें कहै, मन ही मन मुसकाइ ॥ ५ ॥
सुंदर जिनि अमृत पियौ, सोई जानै स्वाद।
बिन पीयै करतौ फिरै, जहाँ तहाँ बकवाद ॥ १० ॥
षट दरशन[2] सब अंध मिलि, हस्ती देष्या जाइ।
अंग जिसा जिनि करि गहा, तैसा कहा बनाइ ॥ ३० ॥
सुंदर साधन सब करै, कहैं मुक्ति हम जाहिं।
आतम कै अनुभव बिना, और मुक्ति कहुं नाहिं ॥
पंच[3] कोष तें भिन्न है, सुंदर तुरीय स्थान।
तुरियातीत हि अनुभवै, तहाँ न ज्ञान अज्ञान ॥ ४२ ॥
है सो सुंदर है सदा, नहीं[4] सो सुंदर नाहिं।
नहीं सो परगट देषिए, है सो लहिए माँहि ॥ ५० ॥ (११४)

१–कोई व्यंजन अकार के बिना उच्चारित नहीं हो सकता अर्थात् व्यंजन की उत्पत्ति अकार के आधार पर है। व्यंजन प्रकृति। अ को आदि ले स्वर चेतन शक्ति। २–छ दर्शन शास्त्र प्रसिद्ध हैं। ३–अन्नमय आदि पाँच कोष। ४–होकर बिगड़े वा मिटे सो।

(२९) अद्वैत ज्ञान को अंग

सुंदर हूं नहिं और कछु, तूं कछु और न होइ।
जगत कहा कछु और है, एक अखंडित सोइ॥ १ ॥
सुंदर हू नहिं तू नहीं, जगत नहीं ब्रह्मंड।
हूँ पुनि, तूं पुनि जगत पुनि, व्यापक ब्रह्म अखंड॥ २ ॥
सुंदर मैं सुंदर जगत, सुंदर है जग माहि।
जल सु तरग तरग जल, जल तरंग द्वै नाहि॥ २१ ॥
आतम अरु परमात्मा, कहन सुनन कौं दोइ।
सुंदर तब ही मुक्ति है, जब हि एकता होइ॥ ३९ ॥
जगत जगत सब को कहै, जगत कहो किहिं ठौर।
सुंदर यह तो ब्रह्म है, नाम धरयौ फिरि और॥४१॥(११९)

---

(३०) ज्ञानी को अंग

काज अकाज भलो बुरो, भेदाभेद न कोइ।
सुंदर ज्ञानी ज्ञान मय, देह क्रिया सब होइ॥ ९ ॥
हर्ष शोक उपजै नहीं, राग द्वेष पुनि नाहिं।
सुंदर ज्ञानी देखिए, नरक ज्ञान कै माहि॥ १२ ॥
जलचर थलचर व्योमचर, जीवन की गति तीन।
ऐसै सुंदर ब्रह्मचर[1] जहाँ तहाँ लयलीन॥ २१ ॥

१—मछली आदि जल में, चौपाये आदि थल पै, पक्षी आदि आकाश में रहते सहते हैं और उनके तत्तत् निवासो के बिना उनका क्षण भर भी काम नहीं चलता। इसी प्रकार यह बुद्धि-सम्पन्न जीव (मनुष्य) स्वभाव,

घटाकाश ज्यौं मिलि गह्यौ, महदाकाश निदान ।
सुंदर ज्ञानी कै सदा, कहिए केवल ज्ञान ॥ २८ ॥
भावै तन काशी तजौ, भावै वागड[1] माहिं ।
सुंदर जीवनमुक्ति कै, संशय कोऊ नाहिं ॥ २९ ॥
अज्ञानी कौं जगत यह, दुख दायक भै त्रास ।
सुंदर ज्ञानी कै जगत, है सब ब्रह्म विलास ॥ ३२ ॥
सुंदर भाया आप कौं, आया अपुनी ठाम ।
गाया अपुने ज्ञान कौं, पाया अपना धाम ॥ ५२ ॥
रागी त्यागी शांति पुनि, चतुरथ घोर वषान ।
ज्ञानी च्यार प्रकार है, तिन्हें लेहु पहिचान ॥ ६२ ॥
रागी राजा जनक है, त्यागी शुक सम शेर ।
शांत जानि जमदग्नि कौं, दुर्वासा अति घोर ॥६३॥(१२८)

---

(३१) अन्योन्य भेद का अंग

रथ चौबीसहु तत्व कौ, कर्म सुभासुभ वैल ।
सुंदर ज्ञानी सारथी, करै दशौं दिशि सैल ॥ ३ ॥
देह तमूरा डाट जड़, जीभ तार तिहिं लाग ।

कर्म और अभ्यास से ब्रह्म ही को अपना आदिम निवासस्थल ऐसा बना ले कि क्षण भर भी विलग न हो, यदि हो तो नष्ट हो जाय। तब स्वयं तल्लीनता सम्भव है ।

१—राजस्थान में खंड-विशेष जहाँ के लोग गर्हित और असभ्य समझे जाते हैं ।

सुंदर चेतन चतुर विन, कौन वजावै राग ॥ ५ ॥
सत अरु चित आनंद मय, ब्रह्म विशेषण तीन ।
अस्ति भाति प्रिय आतमा, वहै विशेषण कीन ॥ १५ ॥
जीव भयौ अनुलोम[1] ते, ब्रह्म होइ प्रतिलोम[2] ।
सुंदर दारु जराइ कै, अग्नि होय निर्धोम[3] ॥ २५ ॥
कठिन वात है ज्ञान की, सुंदर सुनी न जाइ ।
और कहूँ नहिं ठाहरै, ज्ञानी[4] हृदै समाइ ॥ ३९ ॥(१३३)

१—सुलटा । २—उलटा । ३—धुआँरहित, शुद्ध । ४—अनुभववाला, पहुँचवान ज्ञानी

(५) पदसार

[सुंदरदासजी ने २७–२८ राग रागनियो मे २२६ पद वा भजन बनाए हैं। प्रायः पद बड़े अर्थ और प्रयोजन से भरे हैं। साधुओ मे 'साखी' और 'पद' (भजन) बनाने का मानों एक रवैया सा ही है। दादूजी और उनके सब ही शिष्यो ने ऐसा किया था। हम इनसे अति चमत्कारी और गभीर ४० (चालीस) पद छाँटकर यहाँ धरते हैं जो गाने और सुनने में मनोहर और प्रयोजन में मूल्यवान् प्रतीत होंगे।]

[पद के अंत में जो संख्या दी है वह राग के अतर्गत पद की गिनती है।]

---

(१) राग जकड़ी गौड़ी

पद ११

भया मैं न्यारा रे।

सतगुरु कै जु प्रसाद, भया मैं न्यारा रे।

श्रवण सुन्यौं जब नाद, भया मैं न्यारा रे।

छूट्यो वाद विवाद, भया मैं न्यारा रे ॥ टेक ॥

लोक वेद कौ संग तज्यौ रे, साधु समागम कीन्ह।

माया मोह जंजाल तें हम भाग किनारो दीन्ह ॥ १ ॥ भया० ॥

नाम निरंजन लेत हैं रे और कछू न सुहाई।

मनसा वाचा कर्मना सब छाडी आन उपाई ॥ २ ॥ भया० ॥

मन का भरम विलाइया रे भटकत फिरता दूरि।

उलटि समाना आपु में तब प्रगट्या राम हजूरि ॥ ३ ॥ भया० ॥

पिंड ब्रह्मांड जहां तहां रे, वा विन और न कोई ।
सुंदर ताका दास है, जाते सब पैदाइश होई ॥४॥
भया० ॥११॥ (१)

पद १२

काहे कौं तू मन आनत भै रे । जगत विलास तेरो भ्रम है रे ॥टेक॥
जन्म मरन देहनि कौ कहिए । सोऊ भ्रम जब निश्चय गहिए ॥१॥
स्वर्ग नरक दोऊ तेरी शंका । तू ही राव भयौ तूं रंका ॥२॥
सुख दुख दोऊ तेरे कीए । तैं ही बंधमुक्त करि लीए ॥३॥
द्वैत भाव तजि निर्भय होई । तब सुंदर सुंदर है सोई ॥४॥(२)

---

(२) राग माली गाडो

पद २

सतसंग नित प्रति कीजिए । मति होय निर्मल सार रे ।
रति प्रानपति सौं ऊपजै । अति लहै सुक्ख अपार रे ॥टेक॥
मुख नाम हरि हरि ऊचरै । श्रुति सुने गुन गोविंद रे ।
रटि ररंकार[1] अखंड धुनि । तहाँ प्रगट पूरन चंद रे ॥ १॥
सतगुरु बिना नहिं पाइए । इह अगम उलटा षेल रे ।
कहि दास सुंदर देषत । होइ जीव ब्रह्महिं मेल रे ॥२॥(३)

पद ५ *

जग तें जन न्यारा रे । करि ब्रह्म विचारा रे ।
ज्यौं सूर उज्यारा रे ॥ टेक ॥

१—अजपा जाप का एक भेद ।

* यह पद (५) रागिनी 'भीम पलासी' में भी गाया जाता है ।

जल अंबुज जैसे रे। निधि सीप सु तैसे रे।
मणि अहिमुख ऐसै रे ॥ १ ॥
ज्यौं दर्पन माहीं रे। दीसै परछाहीं रे।
कछु परसै नाहीं रे ॥ २ ॥
ज्यौं घृत हि समीपै रे। सब अंग प्रदीपै रे।
रसना नहिं छीपै रे ॥ ३ ॥
ज्यौं है आकाशा रे। कछु लिपै न तासा[1] रे।
यौं सुंदर दासा रे ॥ ४ ॥ (४)

---

(३) राग कल्याण

पद ५

तवथेई तवथेई, तवथेई ताधी।
नागऽधी नागऽधी, नागऽधी माधी ॥ टेक ॥
थुंग निथुग, निथुंग निथुंगा।
त्रिघट उघटि,तत तुरिय उतगा ॥ १ ॥
तननन तननन, तननन तन्ना।
गुप्त गगनवत्, आतम भिन्ना ॥ २ ॥
तत्त्वं तत्त्वं तत्, सोत्वं असि।
सामवेद यौं, वदत तत्त्वमसि ॥ ३ ॥

१—तासा = उससे वा उसमें।

अद्भुत निरतत, नाशत मोहं ।
सुंदर गावत, सोऽहं सोऽहं ॥ ४ ॥ (५) *

---

(४) राग कानडो

पद ५

सब कोऊ आप कहावत ज्ञानी ।
जाकौं हर्ष शोक नहिं व्यापै ब्रह्म ज्ञान की ये नीसानी ॥टेक॥
ऊपर सब व्यवहार चलावै अंत.करण शून्य करि जानी ।
हानि लाभ कछु धरै न मन मैं इहिं विधि विचरै निर अभिमानी॥१॥
अहंकार की ठौर उठावै आतम दृष्टि एक उर आनी ।
जीवनमुक्त जानि सोइ सुदर और बात की बात बषानी ॥२॥ (६)

---

(५) राग विहागड़ो

पद ३

हमारे गुरु दीनी एक जरी ।
कहा कहौं कछु कहत न आवै अमृत रसही भरी ॥ टेक ॥
ताकौ मरम संतजन जानत वस्तु अमोल षरी ।
यातें मोहि पियारी लागत लै करि सीस धरी ॥ १ ॥
मन भुजंग अरु पंच नागनी सूँघत तुरत मरी ।
डायनि एक षात सब जग कौं सो भी देष डरी ॥ २ ॥
त्रिविध विकार ताप तन भागी दुर्मति सकल हरी।

---

* इस पद में प्रत्येक शब्द का अध्यात्म अर्थ नृत्यार्थ से भिन्न भी है ।

ताकौ गुन सुनि मीच[1] पलाई[2] और कवन बपुरी[3] ॥ ३ ॥
निसिवासर नहिं ताहि बिसारत पल छिन आध घरी।
सुंदरदास भयौ घट निरविष सबही व्याधि टरी ॥ ४ ॥ (७)

---

(६) राग केदारो

पद २

देषहु एक है गोविंद।
द्वैत भावहि दूर करिए होइ तब आनंद ॥ टेक ॥
आदि ब्रह्मा अंत कीटहु दूसरो नहिं कोइ।
जो तरंग विचारिए तो वहै एकै तोइ ॥ १ ॥
पंचतत्त्व अरु तीन गुन कौ कहत है संसार।
तऊ दूजो नाहिं एकै बीज कौ विस्तार ॥ २ ॥
अतत निरस न कीजिए तौ द्वैत नहिं ठहराइ।
नहीं नहिं करते रहै तहाँ वचन हू नहिं जाइ ॥ ३ ॥
हरि जगत मैं जगत हरि मैं कहत हैं यौ वेद।
नाम सुंदर धर्यौ जबहीं भयौ तबही भेद ॥ ४ ॥ (८)

---

(७) राग मारू

पद ५

जुवारी जूवा छाड़ौ रे।
हारि जाहुगे जन्म कौ मति चौपड़ि मांडौ रे ॥टेक॥

१—मौत। २—भागी। ३—बेचारी।

चौपड़ अंतहकरण की तीनौं गुन पासा रे।
सारि कुबुद्धी धरत हौ यौं होइ विनासा रे॥ १॥
लष चौरासी घर फिरे अव नरतन पायौ रे।
याकी काची सारि ह्वै जौ दाव न आयौ रे॥ २॥
झूठी वाजी है मंडी तामैं मति भूलौ रे।
जीव जुवारी वापडा काहे कौ फूलौ रे॥ ३॥
सारि समझि कै दीजिए तौ कवहुं न हारौ रे।
सुंदर जीतौ जन्म कौं जौ राम सँभारौ रे॥४॥ (९)

---

(८) राग भैरूं

पद ६

ऐसा ब्रह्म अखंडित भाई।
बार बार जान्यौ नहिं जाई॥ टेक॥
अनल पख उड़ि छड़ि अकासा।
थकित भई कहुँ छोर न तासा॥ १॥
लोन पूतरी थागै दरिया।
जात जात ता भीतरि गरिया॥ २॥
अति अगाध गति कौन प्रमानै।
हेरत हेरत सबै हिरानै॥ ३॥
कहि कहि संत सबै कोउ हारा।
अब सुंदर का कहै बिचारा॥ ४॥ (१०)

पद ७

सोवत सोवत सोवत आयो। सुपनै ही मैं सुपनौ पायौ ॥टेक॥
प्रथम हि सुपनौ आयौ येह। आपु भूलि करि मान्यौ देह।
ताकै पीछै सुपनौ और। सुपनै ही मैं कीनी दौर ॥ १ ॥
सुपना इंद्री सुपना भोग। सुपना अंतहकरन वियोग।
सुपनै ही मैं बाँध्यो मोह। सुपनै ही मैं भयौ बिछोह ॥ २ ॥
सुपनै स्वर्ग नरक मैं बास। सुपने ही मैं जंम की त्रास।
सुपनै मैं चौराशी फिरै। सुपनै ही मैं जन्मै मरै ॥ ३ ॥
सतगुरु शब्द जगावन हार। जब यह उपजै ब्रह्म विचार।
सुंदर जागि परै जे कोई। सब संसार सुप्न तब होई ॥४॥ (११)

---

(८) राग ललित

पद २

अब हूँ हरि कौं जाँचन आयौ।
देषे देव सकल फिरि फिरि मैं दारिद भजन कोऊ न पायौ ॥टेक॥
नाम तुम्हारौ प्रगट गुसांईं, पतित उधारन वेदनि गायौ।
ऐसी साषि सुनी सतन मुख, देत दान जाचिक मन भायौ ॥१॥
तेरे कौन बात कौ टोटौ, हूं तौ दुख दरिद्र करि छायो।
सोई देहु घटै नहि कबहूं, बहुत दिवस लग जाइ न पायौ ॥२॥
अति अनाथ दुर्वल सबही विधि, दीन जानि प्रभु निकट बुलायौ।
अंतहकरण उमगि सुंदर कौं, अभैदान दै दुःख मिटायौ ॥३॥ (१२)

---

(१०) राग काल्हेडा

[यह राग और इसके पद गुजराती के हैं, इससे यहाँ नह लिखे गए।]

---

(११) राग देवगंधार

पद २

अब तो ऐसे करि हम जान्यौ ।
जौ नानात्व प्रपंच जहां लौं मृगतृष्णा कौ पान्यौ[१] ॥ टेक ॥
रजु कौं सर्प देषि रजनी मैं भ्रम तें अति भय आन्यो ।
रवि प्रकाश भयौ जब प्रातहि रजु कौ रजु पहिचान्यो ॥ १ ॥
ज्यौं बालक बेताल देषि कै योंही वृथा डरान्यो ।
ना कछु भयौ नहीं कुछ ह्वै है यह निश्चय करि मान्यो ॥ २ ॥
ससाशृंग वंध्यासुत भूलै मिथ्या बचन बषान्यौ ।
तैसे जगत काल त्रय नाहीं समझि सकल भ्रम भान्यौ ॥ ३ ॥
ज्यौं कछु हुतौ रह्यौ पुनि सोई दुतिया[२] भाव विलान्यौ ।
सुंदर आदि अंत मधि सुंदर सुंदर ही ठहरान्यौ ॥४॥ (१)

---

(१२) राग विलावल

पद २

सोइ सोइ सब रैनि बिहानी ।
रतन जन्म की षबरि न जानी ॥ टेक ॥

१—फैलाव । अथवा पाया । अथवा पानी, जल । २—द्वैत ।

पहिलै पहर मरम नहिं पावा । मात पिता सौं मोह बँधावा ।
षेलत षात हँस्या कहुँ रोया । बालापन ऐसैंही षोया ॥ १ ॥
दूजै पहर भया मतवाला । परधन परत्रिय देषि पुसाला ।
काम अंध कामिनि सँग जाई । ऐसैं ही जोवन गयौ सिराई ॥२॥
वीजै पहरि गया तरनापा । पुत्र कलत्र का भया सँतापा ।
मेरै पीछै कैसा होई । घरि घरि फिरिहैं लरिका जोई ॥३॥
चौथे पहरि जरा तन व्यापी । हरि न भज्यौ इहि मूरष पापी ।
कहि समुझावै सुंदरदासा । राम विमुख मरि गया निरासा ॥४॥

पद ९

है कोई योगी साधै पौना ।
मन थिर होई विंद नहि डोलै, जितेंद्री सुमिरै नहिं कौना ॥टेक॥
'यम अरु नेम धरै दृढ़ आसन प्राणायाम करै मन मौना ।
प्रत्याहार धारणा ध्यानं लै समाधि लावै ठिक ठौना ॥ १ ॥
इडा पिंगला सम करि रापै सुषमन करै गगन दिशि गौना ।
अह निश ब्रह्म अग्नि परजारै[1] सापनि[2]द्वार छाड़ि दै जौना ॥२॥
वहुदल षटदल दशदल षोजै द्वादशदल तहाँ अनहद भौना ।
षोडशदल अमृत रस पीवै ऊपरि द्वै दल करै चतौना ॥३॥
चढ़ि अकाश अमर पद पावै ताकौं काल कहै नहिं षौना[3] ।
सुंदरदास कहै सुनिअवधू महा कठिन यह पंथ अलौना ॥४॥(१५)

पद १५

जाकै हृदै ज्ञान है ताहि कर्म न लागै ।

१—जलावै । प्रकाशित वनी रखे । २—कुंडिनी । ३—खावै ।

(१०) राग काल्हेडा

[यह राग और इसके पद गुजराती के हैं, इससे यहाँ नह लिखे गए ।]

---

(११) राग देवगंधार

पद २

अब तो ऐसे करि हम जान्यौ ।

जौ नानात्व प्रपंच जहां लौं मृगतृष्णा कौ पान्यौ[१] ॥ टेक ॥

रजु कौं सर्प देषि रजनी मैं भ्रम तें अति भय आन्यो ।

रवि प्रकाश भयौ जब प्रातहि रजु कौ रजु पहिचान्यो ॥ १ ॥

ज्यौं बालक बेताल देषि कै यौंही वृथा डरान्यो ।

ना कछु भयौ नहीं कुछ ह्वै है यह निश्चय करि मान्यो ॥ २ ॥

ससाशृंग बंध्यासुत भूलै मिथ्या बचन बषान्यौ ।

तैसे जगत काल त्रय नाहीं समझि सकल भ्रम भान्यौ ॥ ३ ॥

ज्यौं कछु हुतौ रह्यौ पुनि सोई दुतिया[२] भाव विलान्यौ ।

सुंदर आदि अंत मधि सुंदर सुंदर ही ठहरान्यौ ॥४॥ (१)

---

(१२) राग विलावल

पद २

सोइ सोइ सब रैनि बिहानी ।

रतन जन्म की षवरि न जानी ॥ टेक ॥

१—फैलाव । अथवा पाया । अथवा पानी, जल । २—द्वैत ।

पहिलै पहर मरम नहिं पावा । मात पिता सौं मोह बँधावा ।
षेलत षात हँस्या कहुँ रोया । वालापन ऐसैही षोया ॥ १ ॥
दूजै पहर भया मतवाला । परधन परत्रिय देषि षुसाला ।
काम अंध कामिनि सँग जाई । ऐसैं ही जोवन गयौ सिराई ॥२॥
तीजै पहरि गया तरनापा । पुत्र कलत्र का भया सँतापा ।
मेरै पीछै कैसा होई । घरि घरि फिरिहैं लरिका जोई ॥३॥
चौथे पहरि जरा तन व्यापी । हरि न भज्यौ इहि मूरष पापी ।
कहि समुझावै सुंदरदासा । राम विमुख मरि गया निरासा ॥४॥

पद ६

है कोई योगी साधै पौना ।
मन थिर होई विंद नहि डोलै, जितेंद्री सुमिरै नहिं कौना ॥टेक॥
म अरु नेम धरै दृढ़ आसन प्राणायाम करै मन मौना ।
त्याहार धारणा ध्यानं लै समाधि लावै ठिक ठौना ॥ १ ॥
इडा पिंगला सम करि राषै सुषमन करै गगन दिशि गौना ।
अह निश ब्रह्म अग्नि परजारै[1] सापनि[2] द्वार छाड़ि दै जौना ॥२॥
वहुदल षटदल दशदल षोजै द्वादशदल तहाँ अनहद भौना ।
षोडशदल अमृत रस पीवै ऊपरि द्वै दल करै चतौना ॥३॥
चढ़ि अकाश अमर पद पावै ताकौं काल कहे नहिं षौना[3] ।
सुंदरदास कहै सुनिअवधू महा कठिन यह पंथ अलौना ॥४॥(१५)

पद १५

जाकै हृदै ज्ञान है ताहि कर्म न लागै ।

१—जलावै । प्रकाशित वनी रहे । २—कुंडिनी । ३—खावे ।

(१०) राग काल्हेडा

[यह राग और इसके पद गुजराती के हैं, इससे यहाँ नह लिखे गए ।]

---

(११) राग देवगंधार

पद २

अब तो ऐसे करि हम जान्यौ ।
जो नानात्व प्रपंच जहाँ लौं मृगतृष्णा कौ पान्यौ[1] ॥ टेक ॥
रजु कौं सर्प देषि रजनी मैं भ्रम तें अति भय आन्यो ।
रवि प्रकाश भयौ जब प्रातहि रजु कौ रजु पहिचान्यो ॥ १ ॥
ज्यौं बालक बेताल देषि कै योंही वृथा डरान्यो ।
ना कछु भयौ नहीं कुछ ह्वै है यह निश्चय करि मान्यो ॥ २ ॥
ससाशृंग बंध्यासुत भूलै मिथ्या बचन बषान्यौ ।
तैसे जगत काल त्रय नाहीं समझि सकल भ्रम भान्यौ ॥ ३ ॥
ज्यौं कछु हुतौ रह्यौ पुनि सोई दुतिया[2] भाव बिलान्यौ ।
सुंदर आदि अंत मधि सुंदर सुंदर ही ठहरान्यौ ॥४॥ (१)

---

(१२) राग बिलावल

पद २

सोइ सोइ सब रैनि बिहानी ।
रतन जन्म की षवरि न जानी ॥ टेक ॥

१—फैलाव । अथवा पाया । अथवा पानी, जल । २—द्वैत ।

पद ७

मेरौ धन माधो माई री, कबहूँ बिसरी न जाऊँ।
पल पल छिंन छिन घरि घरि तिहि विन देषै न रहाऊँ॥ टेक॥
गहरी ठौर धरौं उर अंतर काहू कौ न दिषाऊँ।
सुंदर को प्रभु सुदर लागत लै करि गोपि छिपाऊँ॥१॥(१९)

---

(१४) राग आसावरी

पद ६

कोई पीवै राम रस प्यासा रे।
गगन मंडल में अमृत सरवै उनमनि कै घर वासा रे॥टेक॥
सीस उतारि धरै धरती पर करै न तन की आसा रे।
ऐसा महँगा अमी विकावै छह रितु वारह मासा रे॥ १ ॥
मोल करै सौ छकै दूर तें तौलत छूटै वासा रे।
जौं पीवै सो जुग जुग जीवै कबहुँ न होइ विनासा रे॥ २ ॥
या रस काजि भए नृप जोगी छाड़े भोग विलासा रे।
सेज सिंघासन वैठे रहते भस्म लगाइ उदासा रे॥ ३ ॥
गोरषनाथ भरथरी रसिया सोइ कवीर अभ्यासा रे।
गुरु दादू परसाद कछू इक पायो सुंदरदासा रे॥४॥ (१९)

पद ९

मुक्ति तो धोपै की नीसानी।
सो कतहूँ नहि ठौर ठिकाना जहाँ मुक्ति ठहरानी॥ टेक॥
को कहै मुक्ति व्योम के ऊपर को पाताल के मांही।

सब परि बैठे मच्छिका पावक तैं भागै ॥ टेक ॥
जहाँ पाहरू[1] जागहीं तहाँ चोर न जाहीं ।
आँपिन देषत सिंह कौं पशु दूरि पलाहीं ॥ १ ॥
जा घर मांहि मंजार ह्वै तहाँ मूषक नासै ।
शब्द सुनत ही मोर का अहि रहै न पासै ॥ २ ॥
ज्यौं रवि निकट न देषिए कबहूँ अँधियारा ।
सुंदर सदा प्रकाश में सब ही तैं न्यारा ॥३॥ (१६)

---

(१३) राग टोडी

पद ३

राम नाम राम नाम राम नाम लीजै ।
राम नाम रटि रटि राम रस पीजै ॥टेक॥
राम नाम राम नाम गुरु तें पाया ।
राम नाम मेरै हिरदै आया ॥ १ ॥
राम नाम राम नाम भजि रे भाई ।
राम नाम पटतरि[2] तुलै न काई ॥ २ ॥
राम नाम राम नाम है अति नीका ।
राम नाम सब साधन का टीका ॥ ३ ॥
राम नाम राम नाम अति मोहि भावै ।
राम नाम सुंदर निशि दिन गावै ॥ ४ ॥ (१७)

१—पहरेवाला । २—समान ।

पद ७

मेरौ धन माधो माई री, कबहूँ बिसरी न जाऊँ।
पल पल छिन छिन घरि घरि तिहि विन देषै न रहाऊँ॥ टेक॥
गहरी ठौर धरौं उर अंतर काहू कौ न दिषाऊँ।
सुंदर को प्रभु सुंदर लागत लै करि गोपि छिपाऊँ॥१॥(१६)

---

(१४) राग आसावरी

पद ६

कोई पीवै राम रस प्यासा रे।
गगन मंडल मे अमृत सरवै उनमनि कै घर वासा रे॥टेक॥
सीस उतारि धरै धरती पर करैं न तन की आसा रे।
ऐसा महँगा अमी विकावै छह रितु वारह मासा रे॥ १ ॥
मोल करै सौ छकै दूर तें तौलत छूटै वासा रे।
जौ पीवै सो जुग जुग जीवै कबहुँ न होइ विनासा रे॥ २ ॥
या रस काजि भए नृप जोगी छाडै भोग विलासा रे।
सेज सिंघासन वैठे रहते भस्म लगाइ उदासा रे॥ ३ ॥
गोरषनाथ भरथरी रसिया सोइ कबीर अभ्यासा रे।
गुरु दादू परसाद कछू इक पाया सुंदरदासा रे॥४॥ (१६)

पद ६

मुक्ति तो धोषै की नीसानी।
सो कतहूँ नहि ठौर ठिकाना जहाँ मुक्ति ठहरानी॥ टेक॥
को कहै मुक्ति व्यौम के ऊपर को पाताल के माँही।

कौ कहै मुक्ति रहे पृथ्वी पर ढूँढै तो कहुँ नाहीं ॥ १ ॥
वचन विचार न कीया किनहूँ सुनि सुनि सब उठि धाए।
गोदंडा[1] ज्यौं मारग चालै आगे पोज विलाए ॥ २ ॥
जीवत कष्ट करै बहुतेरे मुये मुक्ति कहै जाई।
धोषै ही धोषै सब भूलै आगै ऊबा[2] बाई ॥ ३ ॥
निज स्वरूप कौं जानि अखंडित ज्यौं का त्यौं ही रहिए।
सुंदर कछू अहै नहिं त्यागै वह है मुक्ति पथ कहिए ॥४॥(२०)

पद ११

मन मेरे सोई परम सुख पावै।
जागि प्रपंच माहिं मति भूलै यह औसर नहिं आवै ॥ टेक ॥
सोवै क्यों न सदा समाधि मैं उपजै अति आनंदा।
जौ तूँ जागै जग उपाधि में चीन होइ ज्यों चंदा ॥ १ ॥
सोइ रहै तें ह्वै अखंड सुख तौ तूं जुग जुग जीवै।
जौ जागै तौ परै मृत्युमुख वादि वृथा विष पीवै ॥ २ ॥
सोवै जोगी जागै भोगी यह उलटी गति जानी।
सुंदर अर्थ विचारै याकौ सोई पंडित ज्ञानी ॥ ३ ॥ (२१)

(१५) राग सिंधूड़ो

पद ३

द्वै दल आइ जुडे धरणी पर विच सिंधूडो बाजै रे।

१—गुबरैला जंतु जो भौंरे के बराबर होता है और गोबर व गोलियाँ बनाकर उलटे सिर पीछे हटाता ले जाता है। २—खर्चा व खेल वा हालरा। सोच विचार।

एक वेर कौं नृप विवेक चढ़ि एक मोह नृप गाजै रे ॥टेक॥
प्रथम काम रन माहिं गल्यारौ को हम ऊपरि आवै रे ।
महादेव सरषा मैं जीत्या नर की कौन चलावै रे ॥ १ ॥
आइ विचार वोलियो वाणी मुख पर नीकै डाट्यौ रे ।
ज्ञान षडग लै तुरत काम कौ हाथ पकड़ि सिर काट्यौ रे॥ २ ॥
क्रोध आइ वोल्यौ रन,माहीं हौं सबहिन कौं काला रे ।
देव दयंत मनुष पशु पंखी जरैं हमारी ज्वाला रे ॥ ३ ॥
षिमा आइकैं हँसनै लागी सीस चरन कौ नायौ रे ।
चूक हमारी बकसहु स्वामी इतनैं क्रोध नसायौ रे ॥ ४ ॥
तबहि लोभ रन आइ पचारयो मैं तौ सबही जीते रे ।
जौ सुमेर घर भीतरि आवे तौ पेट सवन कै रीते रे ॥ ५ ॥
इत संतोष आइ भयौ ठाढ़ौ वौलै वचन उदासा रे ।
होनहार सौ ह्वै है भाई कियौ लोभ कौ नासा रे ॥ ६ ॥
महा मोह कौं लगी चटपटी अति आतुर सौ आयौ रे ।
मेरे जोधा सब ही मारे ऐसौ कौन कहायौ रे ॥ ७ ॥
तापर राइ विवेक पधारयौ कीनी वहुत लराई रे ।
इततैं उततैं भई उड़ाउड़ि काहू सुद्धि न पाई रे ॥ ८ ॥
वहुत वार लग जूझै राजा राइ विवेक हँकारयो रे ।
ज्ञान गदा की दई सीस मैं महामोह कौं मारयो रे ॥ ९ ॥
फीटौ तिमिर भान तब ऊगौ अंतर भयौ प्रकासा रे ।
युग युग राज दियौ अविनाशी गावै सुंदरदासा रे ॥१०।

च्यारि पानी जीव तिनकी और औरे जाति ।
एक एक समान नाहि करी ऐसी भांति ॥ १ ॥
देव भूत पिशाच राक्षस मनुप पशु अरु पंपि ।
अगिन जलचर कीट कृमि कुल गनैं कौन असंपि ॥ २ ॥
भिन्न भिन्न सुभाव कीये भिन्न भिन्न अहार ।
भिन्न भिन्न हि युक्ति रापी भिन्न भिन्न विहार ॥ ३ ॥
भिन्न बानी सकल जानी एक एक न मेल ।
कहत सुंदर माहिं वैठा करै ऐसा षेल ॥ ४ ॥ (२६)

पद ८

ऐसी भक्ति सुनहु सुखदाई ।
तीन अवस्था में दिन बीतै सो सुख कह्यो न जाई ॥ टेक ॥
जाग्रत कथा कीरतन सुमिरन स्वप्नै ध्यान लै लावै ।
सुषुपति प्रेम मगन अंतर गति सकल प्रपंच भुलावै ॥ १ ॥
सोइ भक्ति भक्त पुनि सोई सो भगवंत अनूपं ।
सो गुरु जिन उपदेश वतायो सुंदर तुरिय स्वरूपं ॥ २ ॥(२७)

पद ९

तूहीं राम हूंहीं राम । वस्तु विचारैं भ्रम द्वै नाम ॥ टेक ॥
तूहीं हूंहीं जब लगि दोइ । तब लगि तूंहीं हूहीं होइ ॥१॥
तूहीं हूहीं सोहं दास । तूंहीं हूंहीं बचन विलास ॥२॥
तूंहीं हूंही जब लग कहै । तब लग तूंहीं हूंहीं रहै ॥ ३
तूंहीं हूंहीं जब मिटि जाइ । सुंदर ज्यौं को त्यौं ठहराइ ॥ ४

---

(१६) राग वसंत

पद ५

हम देषि वसंत कियो विचार ।
यह माया षेलै अति अपार ॥ टेक ॥
यह छिन छिन माहिं अनेक रंग ।
पुनि कहुँ बिछुरे कहुँ करै संग ॥
यहु गुन धरि वैठी कपट भाइ ।
यहु आपुहि जन्मै आपु षाइ ॥ १ ॥
यहु कहुँ कामिनि कहुँ भई कंत ।
यहु कहुँ मारै कहुँ दयावंत ॥
यहु कहुँ जागै कहुँ रही सोइ ।
यहु कहुँ हँसै कहुँ उठै रोइ ॥ २ ॥
यहु कहुँ पाती कहुँ भई देव ।
पुनि कहूँ युक्ति करि करै सेव ॥
यहु कहुँ मालिनि कहुँ भई फूल ।
यहु कहुँ सूक्ष्म ह्वै कहूँ स्थूल ॥ ३ ॥
यहु तीन लोक में रही पूरि ।
भागी कहाँ कोई जाइ दूरि ॥
जो प्रगटै सुंदर ज्ञान अंग ।
तो माया मृगजल रजु-भुजग ॥ ४ ॥ (२६)

(२०) राग गौड

पद ४

लागी प्रीति पिया सो साँची । अब हूँ प्रेम मगन होइ नाची ॥टेक॥
लोक वेद डर रह्यौ न कोई । कुल मरजाद कदे की पोई ॥१॥
लाज छोड़ि सिर फरका डारा । अब किन हँसो सकल संसारा॥२॥
भावै कोई करहु कसौटी । मेरे तन की बोटी बोटी ॥३॥
सुंदर जब लग संका राषै । तब लग प्रेम कहाँ ते चापै ॥४॥

---

(२१) राग नट

पद २

बाजी कौन रची मेरे प्यारे ।
आपु गोपि ह्वै रहै गुसांई जग सबहीं सो न्यारे ॥ टेक ॥
ऐसौ चेटक कियौ चेटकी लोग भुलाए सारे ।
नाना बिधि के रंग दिषावै राते पीरे कारे ॥ १ ॥
पांष परेवा धूरि सुचावल लुक अंजन विस्तारे ।
कोई जान सकै नहीं तुमकौं हुन्नर बहुत तुम्हारे ॥ २ ॥
ब्रह्मादिक पुनि पार न पावैं मुनि जन षोजत हारे ।
साधक सिद्ध मौन गहि बैठे पंडित कहा बिचारे ॥ ३ ॥
अति अगाध अति अगम अगोचर च्यारौं वेद पुकारे ।
सुंदर तेरी गति तूँ जानै किनहूँ नहिं निरधारे ॥४॥(३१)

---

(२२) राग सारंग

पद ४

देषहु दुरमति या संसार की ।
हरि सो हीरा छाँडि हाथ तें बाँधत मोट बिकार की ॥ टेक ॥
नाना विधि के करम कमावत षवरि नहीं सिर भार की ।
झूठै सुख मैं भूलि रहे हैं फूटी आँष गँवार की ॥ १ ॥
कोइ षेती कोइ वनजी लागै कोई आस हथ्यार की ।
अंध धंध मैं चहुं दिशि ध्याए सुधि बिसरी करतार की ॥ २ ॥
नरक जानि कैं मारग चालै सुनि सुनि बात लवार की ।
अपने हाथ गले मैं वाही पासी माया जार की ॥ ३ ॥
बारंबार पुकार कहत हौं सौहै सिरजनहार की ।
सुंदरदास विनस करि जैहै देह छिनक मैं छार की ॥४॥(३२)

पद १४

पहली हम होते छौहरा ।
कोली वेच पेट निठि भरते अब तो हुए वोहरा ॥ टेक ॥
दे इकोतरा सई सबनि कौं ताही तें भए सौहरा ।
ऊँचौ महल रच्यौ अविनाशी तज्यौ परायौ नौहरा ॥ १ ॥
हीरा लाल जवाहर घर मैं मानिक मोती चौहरा ।
कौन बात की कमी हमारे भरि भरि राषै भौंहरा ॥ २ ॥
आगे विपति सही बहुतेरी वह दिन काटे दौहरा ।
सुंदरदास आस सब पूगी मिलियौ राम मनोहरा ॥३॥ (३३)

———

(२३) राग मलार

पद २

देषौ भाई आज भलौ दिन लागत ।
वरिषा रितु कौ आगम आयौ वैठि मलारहि रागत ॥ टेक ॥
राम नाम के वाद्ल उनए घोरि घोरि रस पागत ।
तन मन मांहि भई शीतलता गए विकार जु दागत ॥१॥
जा कारनि हम फिरत वियोगी निशि दिन उठि उठि जागत ।
सुंदरदास दयाल भए प्रभु सोइ दियौ जोइ मॉगत ॥२॥(४)

पद ५

करम हिंडोलना झूलत सब संसार ।
है हिंडोल अनादि कौ यह फिरत वारवार ॥टेक॥
दोई षंभ सुख दुख अडिग रोपै भूमि माया माहिं ।
मिथ्यात्व, ममता, कुमति, कुदया चारि डांडी आहिं ॥
पाप पटली पुन्य मरवा अधौ ऊरध जाहिं ।
सत्व रज तम देहिं कोटा सुत्र पैंचि झुलाहिं ॥ १ ॥
तहाँ शव्द सपरश रूप रस वन गंध तरु विस्तार ।
तहाँ अति मनोरथ कुसुम फूले लोभ अलि गुंजार ॥
चक्र (वाक) मोर चकोर चातक पिक ऋषीक उचार ।
तरला तृष्णा वहत सरिता महातीच्छ्ण धार ॥ २ ॥
यह प्रकृति पुरुष मचाइ राष्यौ सदा करम हिंडोल ।
सजि त्रिविध रूप विकार भूषन पहरि अंगनि चोल ॥
एक नत्तत एक गावत मिलि परसपर लोल ।

रति ताल मदन मृदंग बाजत दुदु दुंदुभि ढोल ॥ ३ ॥
यहि भाँति सबहि जगत भूलै छ हति बारह मास।
पुनि मुदित अधिक उछाह मन मैं करत विविध विलास ॥
यौं फूलवैं चिरकाल बीत्यौ होत जनम विनाश।
तिनि हारि कबहूँ नाहि मानी कहत सुंदरदास ॥४॥(३५)

---

(२४) राग काफी

पद १३

सहज सुन्नि का षेला अभि-अंबरि मेला।
अवगति नाथ निरंजना तहाँ आपै आप अकेला ॥टेक॥
यह मन तहाँ विलमाइए गहि ज्ञान गुरु का चेला।
काल करम लागै नहीं तहाँ रहिए सदा सुहेला ॥१॥
परम जोति जहाँ जगमगै अरु शब्द अनाहद भैला।
संत सकल पहुँचे तहाँ जन सुंदर वाही गैला ॥२॥ (३६)

---

२५) ऐराक

पद ४

रासा रे सिरजनहार कासौ मैं निस दिन गाऊँ।
कर जोरें विनती करौं क्यों ही दरसन पाऊँ ॥टेक॥
उतपति रे साँई तें किया प्रथमहि वो ओंकारा।
तिस तें तीन्यौं गुन भए पीछे पंच पसारा ॥ १ ॥

तिनका रे यह औजूद है सोते महल बनाया।
नव दरवाजे साजि के दसवें कपाट लगाया ॥ २ ॥
आपन रे बैठा गोपि ह्वै व्यापक सब घट माहीं।
करता हरता भोगता लिपै छिपै कछु नाहीं ॥ ३ ॥
ऐसी रे तेरी साहिबी सो तूंही भल जानै।
सिफिति तुम्हारी साँइयां सुंदरदास बषानै ॥ ४ ॥ (३७)

---

(२६) संकराभरन

पद २

मन कौन सौं लगि भूल्यौ रे।
इंद्रिनि के सुख देषत नीके जैसैं सैंवरि फूल्यौ रे ॥ टेक ॥
दीपक जोति पतंग निहारै जरि बरि गयौ समूल्यौ रे ॥ १ ॥
झूठी माया है कछु नाहीं मृगतृष्णा मैं भूल्यौ रे ॥ २ ॥
जित तित फिरै भटकतौ यौंही जैसें वायु घूल्यौ रे ॥ ३ ॥
सुंदर कहत समुझि नहिं कोई भवसागर मैं झूल्यौ रे ॥४॥(३८)

(२७) धनाश्री

पद ६

ब्रह्म विचार तें ब्रह्म रह्यौ ठहराइ।
और कछू न भयौ हुतौ भ्रम उपज्यौ थौ आइ ॥ टेक ॥
ज्यौं अँधियारी रैनि में कल्प लियौ रजु ब्याल।
जब नीकै करि देषियौ भ्रम भाग्यौ ततकाल ॥ १ ॥

ज्यौं सुपनै नृप रंक ह्वै भूलि गयौ निज रूप।
जागि पर्यो जब स्वप्न तें भयौ भूप को भूप ॥ २ ॥
ज्यौं फिरतैं फिरतौ दसै जगत सकल ही ताहि।
फिरत रह्यौ जब बैठि कै तब कछु फिरत न आहि ॥ ३ ॥
सुंदर और न ह्वै गयौ भ्रम तें जान्यौं आन।
अब सुंदर सुंदर भयौ सुंदर उपज्यौ ज्ञान ॥ ४ ॥ (३९)

---

(२८) आरती*

आरती परब्रह्म की कीजै। और ठौर मेरौ मन न पतीजै ॥टेक॥
गगन मंडल मैं आरति साजी। शब्द अनाहद झालरि बाजी ॥१॥
दीपक ज्ञान भया परकासा। सेवक ठाढै स्वामी पासा ॥२॥
अति उछाह अति मगलचारा। अति सुख विलसै बारंबारा ॥३॥
सुंदर आरति सुंदर देवा। सुंदरदास करै तहाँ सेवा ॥४॥(४०)

---

* 'आरती' विविध रागों में गाई जाती है। समय के अनुसार बिलावल, सारंग, धनाश्री, अथवा कल्याण आदि।